ACKNOWLEDGEMENT

We sincerely express our gratitude to **"Teerthadham Mangalayatan"** from where we have sourced **"Aatma-Saadhika"**.

"Teerthadham Mangalayatan" have taken due care, However, if you find any typographical error, for which we request all the reader to kindly inform us at info@vitragvani.com or to Info@mangalayatan.com

"Teerthadham Mangalayatan"

ॐ

॥ परमात्मने नमः ॥

आत्म-साधिका

[जैन सतियों की पौराणिक कथाओं का सङ्कलन]

सङ्कलन / सम्पादन

देवेन्द्रकुमार जैन

तीर्थधाम मङ्गलायतन

प्रकाशन सहयोग

स्वर्गीय पिताश्री सुन्दरलालजी

की पुण्य स्मृति में

सेठ गुलाबचन्द, सुभाषचन्द, अशोककुमार, सुनीलकुमार

सुभाष ट्रान्सपोर्ट, सागर

प्रकाशक :

तीर्थधाम मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट

सासनी-204216, हाथरस (उत्तरप्रदेश) भारत

प्रथम संस्करण : 1000 प्रतियाँ
द्वितीय संस्करण : 2000 प्रतियाँ
(**तीर्थधाम मङ्गलायतन** के सप्तम वार्षिकोत्सव
दिनाङ्क 01 फरवरी से 06 फरवरी 2010 के अवसर पर)

ISBN No. :

न्योछावर राशि : रुपये 20.00

Available At -

— **TEERTHDHAM MANGALAYATAN,**
Aligarh-Agra Road, Sasni-204216, Hathras (U.P.)
Website : www.mangalayatan.com; e-mail : info@mangalayatan.com

— **Pandit Todarmal Smarak Bhawan,**
A-4, Bapu Nagar, Jaipur-302015 (Raj.)

— **SHRI HITEN A. SHETH,**
Shree Kundkund-kahan Parmarthik Trust
302, Krishna-Kunj, Plot No. 30,
Navyug CHS Ltd., V.L. Mehta Marg,
Vile Parle (W), Mumbai - 400056
e-mail : vitragva@vsnl.com / shethhiten@rediffmail.com

— **Shri Kundkund Kahan Jain Sahitya Kendra,**
Songarh (Guj.)

टाइप सेटिंग :
मङ्गलायतन ग्राफिक्स, अलीगढ़

मुद्रक :
देशना कम्प्यूटर, जयपुर

प्रकाशकीय

(द्वितीयावृत्ति)

तीर्थधाम मङ्गलायतन द्वारा जैन सतियों की पौराणिक कथाओं का सङ्कलन **आत्म-साधिका** का मात्र एक माह में द्वितीय संस्करण प्रकाशित करते हुए, हमें अत्यन्त हर्ष का अनुभव हो रहा है। इस कृति में जैन पुराणों में उपलब्ध जैन सतियों की चौदह कथाएँ प्रकाशित की जा रही हैं, साथ ही आर्यिका माताजी के सत्सङ्ग से प्राप्त लाभ तथा धर्ममाता की धर्मचर्चा शीर्षक से एक भावनात्मक निबन्ध और तत्त्वचर्चा का प्रकाशन किया जा रहा है।

यह तो सर्व विदित है कि तीर्थधाम मङ्गलायतन अपने उद्भव काल से ही तीर्थङ्कर भगवन्तों, वीतरागी सन्तों एवं पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी द्वारा प्रचारित जिन-सिद्धान्तों को देश-विदेश में प्रचार-प्रसार करने हेतु प्रयासरत है।

वीतरागी तत्त्वज्ञान के प्रचार-प्रसार की विभिन्न योजनाओं के अन्तर्गत सत्साहित्य का प्रकाशन भी हमारी उल्लेखनीय गतिविधि है। जिसके अन्तर्गत अभी तक अनेक ग्रन्थों का प्रकाशन हम तत्त्वप्रेमी समाज को समर्पित कर चुके हैं। प्रकाशन की इसी शृङ्खला में संस्था द्वारा प्रकाशित 'धन्य मुनिराज हमारे हैं' (कथा संग्रह) खण्ड - 1 से 4 तक को सम्पूर्ण दिगम्बर समाज ने जिस आत्मीयता से अपनाकर हमें प्रोत्साहित किया है, उससे हमारे उत्साह में अभिवृद्धि हुई है। साथ ही यह भी अनुभव हुआ है कि कथा साहित्य के माध्यम से तत्त्वज्ञान को जन-जन तक प्रचारित करना एक सशक्त माध्यम है।

जैन पुराणों में अनेक वीतरागी सन्तों के आत्मसाधना की प्रेरणा

प्रदान करनेवाले प्रसङ्गों के साथ-साथ अनेक आत्मज्ञानी धर्म-माताओं की प्रेरक प्रसङ्ग भी प्राप्त होते हैं, जो पुण्य-पाप की अनेक विचित्र परिस्थितियों में भी तथा अनेक प्रकार की सङ्कट पूर्ण स्थितियों में भी उनके आत्मबल का परिचय प्रदान कराते हैं। इन प्रसङ्गों से प्रेरणा पाकर जहाँ हम अनेक विपरीत परिस्थितियों में भी वीतरागी तत्त्वज्ञान की अडिग आस्था से आत्मकल्याण के पथ पर लगे रहने की प्रेरणा प्राप्त करते हैं, वहीं संसार के इन चित्र-विचित्र प्रसङ्गों से सहज ही अन्तरङ्ग में वैराग्यभाव का बल ग्रहण करते हैं। इस तरह यह एक उपयोगी प्रयास है, जिसका लाभ सभी मुमुक्षु आत्मार्थी भाई-बहनों को लेना चाहिए।

इसी ग्रन्थ में 'धर्ममाता की धर्मचर्चा' आलेख बहिनश्री चम्पाबेन के स्वानुभूतिदर्शन ग्रन्थ से लिया गया है। जिससे प्रेरणा पाकर यदि आप स्वानुभूतिदर्शन एवं बहिनश्री के वचनामृत ग्रन्थ का आध्योपान्त स्वाध्याय करेंगे तो आपको विशेष लाभ प्राप्त होगा।

इस ग्रन्थ में प्रस्तुत जीवनचरित्रों के अतिरिक्त अन्य भी जीवन -चरित्र जैन पुराणों में उपलब्ध होते हैं, जिन्हें व्यवस्थितरूप से सङ्कलित -सम्पादित करके भविष्य में प्रकाशित किया जाएगा।

प्रस्तुत ग्रन्थ का सङ्कलन एवं सम्पादन कार्य देवेन्द्रकुमार जैन (बिजौलियांवाले) तीर्थधाम मङ्गलायतन द्वारा किया गया है तथा प्रकाशन सहयोग के रूप स्व० सुन्दरलालजी की स्मृति में उनके सुपुत्र गुलाबचन्द, सुभाषचन्द, अशोककुमार एवं सुनीलकुमार, सुभाष ट्रान्सपोर्ट, सागर द्वारा प्राप्त सहयोग के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं।

सभी साधर्मीजन इन कथाओं के माध्यम से आत्मसाधना की दिशा में अग्रसर हों - इसी भावना के साथ।

पवन जैन

तीर्थधाम मङ्गलायतन

सम्पादकीय

'आत्म-साधिका' नामक यह कृति प्रस्तुत करते हुए हमें अत्यन्त हर्ष का अनुभव हो रहा है। इस कृति में जैन पुराणों में प्राप्त उन ज्ञानी धर्म माताओं का जीवन वृतान्त कथारूप में प्रस्तुत किया गया है, जिन्होंने जगत् की अनेक प्रकार की प्रतिकूल परिस्थितियों में अपने आत्मबल को खण्डित किये बिना अपनी आराधना को निरन्तर गतिमान रखा है। बाह्य में शीलभङ्ग की अनेक परिस्थितियों में भी अपना शीलव्रत खण्डित नहीं होने दिया है। साथ ही इस कृति में वीतरागी देव-शास्त्र-गुरु की विराधना के फलस्वरूप जीवों पर कैसे-कैसे सङ्कट आते हैं ? – यह भी दर्शाया गया है।

इन कथाओं के अध्ययन से जहाँ अशुभकर्मोदयजन्य विषम परिस्थितियों में धैर्य धारण करने की पावन प्रेरणाएँ प्राप्त होती हैं, वहीं उन ज्ञानी धर्म माताओं के प्रति अहोभाव भी जागृत होता है, जिन्होंने इन परिस्थितियों को स्वयं भोगा है और फिर भी अपनी आत्मसाधना को सुरक्षित रखा है।

यह तो सर्व विदित है कि ***तीर्थधाम मङ्गलायतन*** द्वारा मुनिराजों के जीवन की प्रेरक कथाएँ **'धन्य मुनिराज हमारे हैं'** का प्रकाशन चार भागों में किया जा चुका है। सम्पूर्ण दिगम्बर जैन समाज में वे कृतियाँ इतनी प्रचारित हुई है कि दो वर्ष की अल्पावधि में उनके

चार-चार संस्करण प्रकाशित हुए हैं। समाज द्वारा प्राप्त इस प्रोत्साहन ने भी मुझे इस दिशा में कार्य करने हेतु प्रेरित किया है।

मुक्तिमार्ग में पूर्णदशा की प्राप्ति तो पुरुष पर्याय में ही सम्भव है परन्तु स्त्री पर्याय में भी मुक्तिमार्ग की साधना का निषेध नहीं है। वे भी आत्मसाधना पूर्ण करके आगामी भवों में मुक्ति प्राप्त कर सकती हैं। इस तथ्य से हमारी धर्मरुचिवन्त माता-बहिनों को परिचित कराना भी इस कृति का उद्देश्य है।

इन धर्मात्मा बहिनों के जीवन प्रसङ्ग भी हमारे प्रथमानुयोग में यत्र -तत्र उपलब्ध हैं, जो हमारे पथ-प्रदर्शन का कार्य करते हैं।

आज के भौतिकवादी युग में ऐसे प्रेरक प्रसङ्गों की आवश्यकता भी निर्विवाद सिद्ध है।

हमारे जीवनशिल्पी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी भी अपने मङ्गल प्रवचनों में वीतरागी भगवन्तों, निर्ग्रन्थ सन्तों का यशोगान करने के साथ इन आत्म-साधक धर्म माताओं के अनेक प्रसङ्ग, वैराग्यरस से सराबोर होकर सुनाते हैं एवं उनके साधनामय जीवन के प्रति अपना अहोभाव व्यक्त करते हैं। उनके वैराग्यमय प्रवचनों ने भी इस कृति के सृजन को बल प्रदान किया है।

धर्म माता बहिनश्री चम्पाबेन तो स्वयं इस युग में आत्म-साधिका के रूप में हमारे सन्मुख थी ही, उनका पवित्र आत्माराधनामय जीवन तो निश्चित ही अनेकों साधर्मी बहिनों के लिए पथ प्रदर्शक रहा है। अत: मन में यह भावना उदित हुई कि क्यों न मुनिराजों के प्रेरक प्रसङ्गों की तरह धर्मशील बहिनों के प्रेरक प्रसङ्ग भी सङ्कलित / प्रकाशित किये जाएँ! – यह कृति इसी भावना का साकाररूप है।

इस कृति में प्रकाशित कथाओं के अलावा अन्य भी प्रेरक प्रसङ्ग शेष रहते हैं, जिन्हें भविष्य में पुस्तक के रूप में प्रकाशित करने का सङ्कल्प है।

इस कृति के प्रकाशन में जिन कथाकारों द्वारा लिखित / सङ्कलित कथाएँ प्रकाशित की गयी है, उन सभी के प्रति हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ।

प्रकाशन कार्य के प्रति निरन्तर प्रेरणा एवं प्रोत्साहन हेतु अपने विद्यागुरु पण्डित कैलाशचन्द जैन, अलीगढ़; अग्रज श्री पवन जैन, एवं पण्डित अशोककुमार लुहाड़िया के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

इस अवसर पर समस्त साधर्मी भाई-बहिनों से यह अनुरोध भी करता हूँ कि अपनी पुत्री को विवाह प्रसङ्ग पर यह कृति अवश्य भेंट करें एवं सर्व साधारण में इसके प्रचार-प्रसार हेतु सहभागी बनें।

यदि आपके पास ऐसे जीवन-चरित्र उपलब्ध हों तो हमें अवश्य सूचित करें, जिससे उनका उपयोग आगामी प्रकाशनों में हो सके।

सभी बहिनें और भाई भी इन जीवन गाथाओं का अध्ययन कर अपना जीवन उज्ज्वल एवं पवित्र बनायें – इसी भावना के साथ।

देवेन्द्रकुमार जैन
तीर्थधाम मङ्गलायतन

अनुक्रमणिका

1. महासती अञ्जना 1
2. दृढ़ शीलवन्त : अनन्तमती 71
3. अमूढ़दृष्टिवन्त रेवती रानी 83
4. शील शिरोमणि नीलीसुन्दरी 91
5. कसौटी : धर्मश्रद्धा की 95
6. सीताजी मिथ्या आपेक्ष क्यों ? 104
7. देखो, देखो ! विराधना का फल 108
8. राजा कीचक एवं द्रोपदी की भवावली 113
9. धन-धन साधर्मी मिलन की घड़ी 118
10. युगप्रभाविका महासती चन्दना 123
11. चमत्कार चैतन्य का 176
12. महासती : राजुलमती 185
13. धर्म को न छोड़ दें ! 202
14. धर्म नहीं छोड़ा 205
15. आर्यिका माताजी के सत्सङ्ग से प्राप्त लाभ 210
16. धर्ममाता की धर्मचर्चा 225

1

महासती अञ्जना

(1)

प्रीति और अप्रीति –

यह बात उस समय की है, जब भगवान श्री मुनिसुव्रतनाथ का धर्मतीर्थ चल रहा था। अनन्तवीर्य केवली के द्वारा धर्मोपदेश का श्रवण कर हनुमान, विभीषण, इत्यादि ने व्रत अङ्गीकार किये, उनमें भी हनुमान का शील एवं सम्यक्त्व विशेष प्रशंसनीय है।

इस प्रकार भगवान महावीर की धर्मसभा में गौतम गणधर से हनुमान की प्रशंसा सुनकर राजा श्रेणिक ने प्रश्न किया —

'हे प्रभु! ये हनुमान किसके पुत्र थे? इनका जन्म कहाँ हुआ था? कृपा कर बतलाने का कष्ट करें।'

राजा श्रेणिक के इस प्रश्न को सुनकर 'जिन्हें सत्पुरुषों की कथाओं से विशेष अनुराग है' – ऐसे गौतम गणधर अपनी सुमधुर वाणी में इस प्रकार कहने लगे —

भरतक्षेत्र की दक्षिण दिशा में विद्याधर राजा महेन्द्र राज्य करते थे, उन्होंने एक महेन्द्रपुर नामक सुन्दर नगर की स्थापना की थी। राजा महेन्द्र की जीवनसङ्गिनी का नाम हृदयवेगा था, जिससे अरिन्दम आदि सौ पुत्र एवं अञ्जनासुन्दरी नामक एक महागुणवान कन्या का जन्म हुआ।

एक बार अञ्जनासुन्दरी की यौवनावस्था देखकर राजा महेन्द्र को उसके विवाह की चिन्ता उत्पन्न हुई; अत: उन्होंने अपने बुद्धिमान मन्त्रियों को बुलाकर उनसे अञ्जनासुन्दरी के वैवाहिक सम्बन्ध के सन्दर्भ में विचार-विमर्श किया कि पुत्री अञ्जना का शुभ विवाह किसके साथ करना उचित है ?

राजा द्वारा पूछे गये प्रश्न के प्रत्युत्तरस्वरूप किसी ने लंकाधिपति रावण के नाम का तो किसी ने इन्द्रजीत का तो किसी ने मेघनाथ के नाम का प्रस्ताव रखा।

प्राप्त प्रस्तावों को सुनकर धन्यमन्त्री कहने लगे – 'हे राजन्! दक्षिणश्रेणी में कनकपुर नामक नगर के राजा हिरण्यप्रभ एवं रानी सुमना का सुयोग्य पुत्र सौदामिनीकुमार (विद्युतप्रभ) है। वह गुणवन्त, यशवन्त तो है ही, साथ ही पराक्रमी भी ऐसा है कि सारे विद्याधर भी एक साथ युद्ध हेतु प्रस्तुत हों, तथापि उसे पराजित नहीं कर सकते; अत: मेरे विचार से तो राजकुमारी के लिए इससे उपयुक्त वर अन्य नहीं हो सकता।'

धन्यमन्त्री के उक्त प्रस्ताव को सुनकर सन्देहपराग नामक दूसरा मन्त्री अत्यन्त गम्भीर होकर कहने लगा – 'यद्यपि यह नि:सन्देह सत्य है कि कुमार विद्युतप्रभ महाभव्य है, किन्तु उनके

मन में सदैव संसार की अनित्यता-क्षणभंगुरता की विचार तरङ्गें प्रवाहित होती रहती हैं, इतना ही नहीं; वे वैरागी कुमार तो छोटी उम्र में ही इस असार संसार का परित्याग करके, मोक्षप्राप्ति हेतु अन्तर -बाह्य दिगम्बरदशा को अङ्गीकार कर लेंगे और विषयाभिलाषा विहीन वे कुमार, विकार एवं अपूर्णता का क्षय करके परिपूर्ण साध्यदशा को प्राप्त करेंगे। ऐसी स्थिति में उनके साथ राजकुमारी अञ्जना का विवाह करने से कन्या पतिविहीन हो जाएगी।'

सन्देहपराग की गम्भीरता को भङ्ग करते हुए राजा महेन्द्र ने कहा — 'मन्त्रीवर! क्या कोई अन्य राजकुमार आपको अञ्जना के लिए उपयुक्त प्रतीत होता है ?'

मन्त्री ने विनम्रतापूर्वक कहा —

हाँ, राजन्! भरतक्षेत्र के विजयार्द्धपर्वत की दक्षिणश्रेणी में आदित्यपुर नामक नगर है, वहाँ राजा प्रहलाद एवं रानी केतुमति के वायुकुमार (पवनञ्जय या पवनकुमार) नामक पुत्र है, जो कि महापराक्रमी, रूपवान, शीलवान एवं गुणवान है, वही सर्व प्रकार से कन्या के योग्य उत्तम वर है – ऐसा मेरा मानना है।

सन्देहपराग मन्त्री की बात सुनकर सबको अत्यन्त हर्ष हुआ और सभी ने इस सम्बन्ध में अपनी सहमति प्रदर्शित की।

✦ ✦ ✦

बसन्तऋतु एवं फाल्गुन मास की अष्टाह्निका का शुभागमन हुआ। फाल्गुन शुक्ला अष्टमी से पूर्णिमा तक चलनेवाला अष्टाह्निका पर्व महामङ्गलस्वरूप है। इस पावन अवसर पर इन्द्रादि देव तो नन्दीश्वर द्वीप में विराजमान शाश्वत् जिनबिम्बों के दर्शन-

पूजनार्थ जाते हैं और मानव समाज भी अपनी-अपनी शक्ति एवं भावनानुसार इस पर्व को उत्साहपूर्वक मनाता है।

उस समय महेन्द्रनगर निवासी विद्याधर भी पूजन-सामग्री लेकर कैलाशपर्वत पर पहुँचे। कैलाशपर्वत, भगवान ऋषभदेव की पवित्र निर्वाणस्थली होने से परम पावन है, पूज्यनीय है।

कुमारी अञ्जनासहित राजा महेन्द्र ने भी वहाँ पहुँचकर जिनप्रभु के दर्शन-पूजन किये, तत्पश्चात् गिरिराज के प्राकृतिक सौन्दर्य का अवलोकन करने के लिए राजा महेन्द्र एक स्वच्छ शिला पर बैठ गये।

उसी समय कुमार पवनञ्जयसहित राजा प्रहलाद भी चक्रवर्ती भरत द्वारा निर्मित जिनबिम्बों के दर्शन-पूजनार्थ वहीं पधारे हुए थे और दर्शन-पूजन से निवृत्त हो, गिरिराज पर ही घूम रहे थे कि अनायास राजा महेन्द्र की नजर उन पर पड़ी। राजा महेन्द्र ने प्राथमिक अभिवादन के पश्चात् उनसे कहा – 'हे राजन्! बहुत दिनों से एक विचार मन में चल रहा है कि अपनी प्रिय पुत्री अञ्जना का शुभ विवाह आपके सुपुत्र पवनकुमार के साथ कर दूँ, क्या आप मेरी इस विनम्र प्रार्थना को स्वीकार करने की कृपा करेंगे?'

इस बात को सुनकर राजा प्रहलाद बोले – 'हे राजन्! यह तो मेरे पुत्र का महान भाग्य है कि उसे अञ्जना जैसी सुशील जीवनसङ्गिनी प्राप्त हो रही है। आप इस सम्बन्ध को पक्का ही समझिये।'

इस प्रकार अञ्जना एवं पवनकुमार का सम्बन्ध तो निश्चित् हो ही गया, तीन दिन पश्चात् उसी मानसरोवर पर विवाह होना भी तय हो गया।

✦ ✦ ✦

अञ्जना के अद्भुत सौन्दर्य से कुमार पवन अपरिचित न थे; अत: वे उसे देखने के लिए अत्यन्त व्यग्र हो उठे, तीन दिन के विरह को भी सहन करने में वे अपने को असमर्थ पा रहे थे, यही चिन्तन उनके हृदय में चल रहा था कि कब अञ्जना को देखूँ?

अत्यन्त व्यग्र होकर उन्होंने यह बात अपने अन्तरङ्ग मित्र प्रहस्त से कही – ''हे मित्र! तुम्हारे अतिरिक्त यह बात मैं अन्य किससे कहूँ? जैसे बालक अपना दु:ख माता से; शिष्य, गुरु से; किसान, राजा से एवं रोगी, वैद्य से कहता है; उसी प्रकार बुद्धिमान अपने अन्तरङ्गभाव मित्र से कहता है – यही समझकर मैं अपने मन की बात तुमसे कहता हूँ – 'हे मित्र! राजा महेन्द्र की पुत्री अञ्जना को देखे बिना मुझे चैन नहीं है।''

कुमार की व्यग्रतापूर्ण बात सुनकर प्रहस्त मुस्कारा उठा। रात्रि होते ही दोनों मित्र विमान द्वारा अञ्जना के महल में पहुँच गये। झरोखे में छुपकर अञ्जना के सौन्दर्य को देखने से कुमार को अत्याधिक हर्ष हुआ।

उस समय सात मंजिले महल में अञ्जना अपनी सखियों सहित बैठी हुई थी, तब अञ्जना की बुद्धिमान सखी बसन्तमाला कहने लगी – 'हे सखी! तुम धन्य हो, तुम्हारा सौभाग्य है कि तुम्हारे पिता ने पवनकुमार जैसा जीवनसाथी तुम्हारे लिए चुना है। सुना है कि पवनकुमार महापराक्रमी और भव्यात्मा है।'

बसन्तमाला की इस बात को सुनकर कुमार आनन्दित हो उठे। तभी दूसरी सखी मिश्रकेशी इस प्रकार कहने लगी – 'तुम पवनकुमार को पराक्रमी बतलाती हो और इस सम्बन्ध का बड़े ही गौरवपूर्ण ढंग से बखान करती हो – यह तुम्हारा अज्ञान है। कुमारी का सम्बन्ध यदि विद्युतप्रभ के साथ होता तो बात ही कुछ और होती। अरे! कहाँ विद्युतप्रभ और कहाँ पवनकुमार – दोनों में जमीन-आसमान का अन्तर है। तुम्हें ज्ञात होगा कि सबसे पहला विचार विद्युतप्रभ के साथ सम्बन्ध करने का ही था, पर जब महाराज ने सुना कि वे तो कुछ समय पश्चात् मुनि होनेवाले हैं, तब इस प्रस्ताव को निरस्त कर दिया गया, किन्तु वास्तव में यह ठीक नहीं हुआ। अरे! अन्य क्षुद्र पुरुष के दीर्घकालीन संयोग की अपेक्षा विद्युतप्रभ जैसे महापुरुष का संयोग तो एक क्षणमात्र के लिए भी श्रेष्ठ है।'

सखी की अपमानजनक बात सुनते ही पवनकुमार क्रोधित हो उठे, वे विचारने लगे – 'अञ्जना को मुझसे किञ्चित् भी स्नेह नहीं है। लगता है विद्युतप्रभ से ही इसका स्नेह है, तभी तो सखी के ऐसे वचन सुनकर भी मौन है।'

— ऐसा विचारकर उन्होंने क्रोधित हो म्यान से तलवार निकाल ली, किन्तु तभी मित्र प्रहस्त ने उन्हें रोकते हुए कहा – 'मित्र! हम यहाँ गुप्तरूप से आये हैं और इसी तरह हमें वापस चलना चाहिए।' प्रहस्त के कथनानुसार कुमार ने क्रोधितदशा में ही वहाँ से प्रस्थान तो कर दिया, किन्तु वे अञ्जना के प्रति एकदम उदासचित्त हो गये; अत: उन्होंने उसके परित्याग का निर्णय कर लिया।

देखो परिणामों की विचित्रता! कुछ देर पूर्व जिसे देखे बिना चैन नहीं था, अब उसी का मुख देखना भी असहनीय प्रतीत होने लगा, रे संसार...!

अपने निवास पर आते ही पवनकुमार ने प्रहस्त से कहा – 'हे मित्र! अपना स्थान अञ्जना के निवास के अत्यन्त समीप है; अत: अब अपने को यहाँ नहीं रहना है, उससे स्पर्शित होकर आनेवाली हवा भी मुझे कष्टप्रद प्रतीत होती है; अत: चलो, यहाँ से चलें।'

कुमार की आज्ञा पाते ही उनके सम्पूर्ण संघ ने प्रस्थान की तैयारी प्रारम्भ कर दी; फलत: हाथी, घोड़े, रथ, पैदल आदि सेना में कोलाहल का वातावरण उत्पन्न हो गया।

पवनकुमार के संघ के लोग अचानक प्रस्थान का आदेश सुनकर अचम्भित हो उठे कि यह क्या? बिना कारण प्रस्थान की आज्ञा क्यों? कोई कहने लगा कि इसका नाम पवनञ्जय है, अत: इसका चित्त भी पवन के समान चञ्चल है।

अञ्जना का निवास निकट ही होने से कुमार की सेना के प्रस्थान का कोलाहल शीघ्र ही उनके कानों तक जा पहुँचा, उससे उनके हृदय पर मानों वज्रपात ही आ गिरा। वह विचारने लगी – 'हाय! क्या करूँ? अब क्या होगा? मेरा तो कोई अपराध भी दिखायी नहीं देता। लगता है मिश्रकेशी द्वारा कथित निन्दापूर्ण वचनों की भनक कुमार को लग गयी है – यही कारण है कि मेरे प्राणनाथ मुझ पर कृपारहित होकर मेरा परित्याग कर प्रस्थान कर रहे हैं। यदि मेरे प्राणनाथ मेरा परित्याग कर देंगे तो मैं भी अन्न -जल का परित्याग कर शरीर त्याग दूँगी।' इस प्रकार विचार करते-करते कुमारी अञ्जना बेहोश होकर भूमि पर गिर पड़ी।

अञ्जना के पिता राजा महेन्द्र को जब कुमार के प्रस्थान के समाचार विदित हुए तो वे अपने बन्धुजनों सहित राजा प्रहलाद के निकट आये और दोनों ने कुमार को समझाया – 'हे शूरवीर! प्रस्थान के विचार को निरस्त कर हम दोनों के मनोरथ की सिद्धि करो, गुरुजनों की आज्ञा आनन्ददायिनी होती है; अत: हमारी आज्ञा स्वीकार करो।'

— ऐसा कहकर उन्होंने प्रेमपूर्वक कुमार का हाथ पकड़ लिया।

पिता एवं पितातुल्य राजा महेन्द्र के वचनों द्वारा कुमार विनम्र हो गये और गुरुजनों की गुरुता का उल्लङ्घन करने में अपने आपको असमर्थ अनुभव करने लगे; अत: प्रस्थान की आज्ञा को तो उन्होंने निरस्त कर दिया, पर मन ही मन यह निश्चय कर लिया कि अञ्जना से विवाह करके, उसका परित्याग कर दूँगा।

राजकुमार के प्रस्थान न करने के समाचार सुनते ही अञ्जना का हृदय प्रसन्न हो गया और फिर मानसरोवर के किनारे शास्त्रोक्त विधि-विधानपूर्वक पवनकुमार एवं कुमारी अञ्जना का शुभ-विवाह सम्पन्न हुआ। अञ्जना को तो कुमार के प्रति पूर्ण प्रीतिभाव था, किन्तु कुमार का भाव अञ्जना के प्रति अप्रीतिरूप था, किन्तु इस बात का परिज्ञान अञ्जना को नहीं था।

विवाह कार्य सम्पन्न हो जाने पर यथासमय सभी ने अपने -अपने देशों को प्रस्थान किया।

यहाँ पर गौतम गणधर राजा श्रेणिक से कहते हैं – **'हे श्रेणिक! जो जीव, वस्तुस्वरूप को न समझकर अज्ञानतावश पर के दोष ग्रहण करते हैं, उन्हें मूर्ख समझना चाहिए और दूसरों के**

द्वारा किए गये दोष अपने ऊपर आ पड़े तो उसे अपने पापकर्म का फल समझना चाहिए।'

✦ ✦ ✦

संयोग एवं वियोग –

पवनकुमार ने तो कुमारी अञ्जना से विवाह कर उसका इस प्रकार त्याग कर दिया कि वे कभी उससे बात तक नहीं करते। अञ्जना, पति के इस निष्ठुर व्यवहार से परम दु:ख का अनुभव करती थी। वह रात्रि को नींद भी नहीं ले पाती थी, उसकी आँखों से निरन्तर आँसुओं की धारा बहती रहती थी एवं शरीर अत्यन्त मलिन हो गया था। पति के प्रति है अपार प्रेम जिसका – ऐसी उस सुन्दरी को पति का नाम भी प्रिय लगता था, उस ओर से आनेवाली हवा भी आनन्ददायिनी प्रतीत होती थी।

पति का रूप तो विवाहरूप वेदी पर ही देखा था, निरन्तर उसी का चिन्तन करती थी। निश्चलरूप से सर्व चेष्टाविहीन हो बैठी रहती थी। मन में पति के रूप का चिन्तन एवं बाह्य में उनके दर्शन की अभिलाषा युक्त होने पर भी दर्शन नहीं हो पाते थे। तब शोक –सन्तप्त होकर चित्रपट पर पति का चित्र बनाने हेतु प्रयत्नशील होती, किन्तु हाथ काँपने लगते और कलम गिर पड़ती। ऐसी दशा हो जाने से अञ्जना का सर्वाङ्ग सुन्दर शरीर भी दुर्बल हो गया, आभूषण ढीले हो गये एवं शरीर पर वस्त्राभूषण भी भाररूप प्रतीत होने लगे।

ऐसी करुणदशा में बारम्बार निज अशुभकर्मोदय की निन्दा करती हुई, वह माता–पिता का स्मरण करती। शरीर अत्यधिक

शिथिल हो जाने से बार-बार बेहोश हो गिर पड़ती अथवा रो-रोकर कण्ठ रुँध जाता था, उस समय उस संतप्त हृदय को शान्तिदायिनी शीतल चन्द्र-किरणें भी दाहरूप प्रतीत होती थी।

बेचारी! विकल्प की मारी, नाना प्रकार विचार करती हुई मन ही मन में पति से अनुरोध करती – 'हे नाथ! आप सदैव मेरे हृदयकमल पर विराजमान होने पर भी मुझे आताप क्यों देते हैं? जब मैंने आपका कोई अपराध नहीं किया, तब बिना कारण मुझ पर कोप क्यों? हे नाथ! अब तो प्रसन्न होइये, मैं तो आपकी दासी हूँ, मेरे चित्त के शोक का हरण कीजिए। जैसे अन्तर में दर्शन होते हैं, वैसे ही बाहर से भी दर्शन दीजिए – यही मेरी करबद्ध प्रार्थना है।'

इस प्रकार निज चित्त में स्थापित पति से बारम्बार मनुहार करती और आँखों से मोती के समान आँसू गिराती रहती थी।

सखी बसन्तमाला, अञ्जना की सेवार्थ अनेक प्रकार की सामग्री लाती, पर उसे तो कुछ रुचिकर नहीं लगता। उसका चित्त तो पति-वियोग में चक्र की भाँति भ्रमित हो गया था। पति-वियोग से दु:खित वह न तो अच्छी तरह स्नान करती, न बाल सँवारती; सर्व क्रियाओं से उदास – ऐसी हो गयी मानो पाषाण ही हो; निरन्तर अश्रु-प्रवाह के बहने से मानो जल ही हो; हृदयदाह से संतप्त मानो अग्नि ही हो; सदा ही पति के विकल्प में रहने के कारण मानो हवा ही हो, और चित्त की शून्यता से मानो वह आकाशरूप ही हो गयी हो।

मोह के कारण उसका ज्ञान भी आच्छादित हो गया था। सर्व अङ्ग इतने दुर्बल हो गये थे कि उठना-बैठना भी दूभर हो गया था।

बोलने की अभिलाषा करती, पर शब्द नहीं निकलते; पक्षियों से कलोल करने की भावना होती, पर वह भी दुष्कर था – इस प्रकार बेचारी सबसे न्यारी गुमसुम बैठी रहती। उसका चित्त तो पति में ही लगा था, उसको निष्कारण पति-वियोग के कारण एक-एक पल भी एक-एक वर्ष के समान प्रतिभासित होता था।

उसे दु:ख से दु:खित देखकर व्याकुलित हुए परिजन भी ऐसा चिन्तन करते थे – 'इसे ऐसा दु:ख किस कारण से हुआ? यह तो इसके द्वरा पूर्वोपार्जित पापकर्मों का ही फल है, अवश्य ही इसने पूर्व जन्म में किसी देव या गुरु की विराधना की होगी, उसी का यह फल है। पवनकुमार तो इस दशा में निमित्तमात्र हैं। अरे! बेचारी भोली-भाली से विवाह करके क्यों इसका परित्याग कर दिया? जिसने कभी पिता के घर में रञ्चमात्र दु:ख नहीं देखा, वही आज अथाह दु:ख को प्राप्त हुई है!'

सभी इसी तरह विचार करते – 'हम क्या उपाय करें? अरे! हम तो भाग्यहीन हैं, यह कार्य हमारे यत्नसाध्य नहीं है। यह तो इसके किसी अशुभकर्म का फल है। हे प्रभु! कब वह शुभ दिन आयेगा, जब यह अपने प्रीतम की कृपादृष्टि प्राप्त करेगी।'

सभी की यही अभिलाषा रहा करती थी।

ऐसे प्रतिकूल प्रसङ्ग के समय अञ्जना, देव-शास्त्र-गुरु की आराधना करते हुए, इन दु:ख के दिनों को व्यतीत कर रही थी। उसकी प्रिय सखी बसन्तमाला उसे प्रसन्न करने के लिए हर सम्भव प्रयत्न करती थी। वे कभी तो आत्मानुभवरूप सम्यग्दर्शन की चर्चा करती तो कभी देव-गुरु-धर्म की भक्ति करती; कभी

वीतरागी सन्तों का स्मरण करते हुए उनकी वैराग्यपूर्ण कथा-वार्ता करतीं, उस समय अञ्जना का दु:ख कुछ कम हो जाता था।

इस प्रकार सखीसहित अञ्जना का समय व्यतीत हो रहा था।

✦ ✦ ✦

बाईस वर्ष बाद...

जिस समय की यह कथा है, उस समय राजाओं पर लंकाधिपति महाराज रावण की आज्ञा चलती थी, किन्तु राजा वरुण ही एकमात्र ऐसा राजा था, जो रावण की आज्ञा का उल्लङ्घन करता था। उसका कहना था कि रावण को देवों द्वारा प्रदत्त शस्त्रों का गर्व है, किन्तु मैं उसे गर्वरहित कर दूँगा। इसी बात से कुपित होकर रावण ने उसे दैवीय शस्त्रों के बिना ही पराजित करने की प्रतिज्ञा कर ली और युद्ध में सहायतार्थ अनेक राजाओं को आमन्त्रित किया। पवनकुमार के पिता महाराज प्रहलाद के यहाँ भी पत्र भेजा गया।

पत्र में लिखा था – 'समुद्र के मध्यद्वीप में पातालनगर निवासी राजा वरुण को जीतने के लिए हमने युद्ध प्रारम्भ कर दिया है, किन्तु युद्ध में राजा वरुण के पुत्रों ने हमारे बहनोई खरदूषण को बन्दी बना लिया है; अत: उन्हें छुड़ाने एवं युद्ध में सहायतार्थ आप शीघ्र ही आवें।'

पत्र द्वारा आज्ञा प्राप्त होते ही स्वामीभक्त राजा प्रहलाद, महाराज रावण की सहायतार्थ जाने के लिए तैयार हो गये। उन्हें प्रस्थान के लिए तैयार देखकर कुमार पवनञ्जय ने कहा – 'हे पिताजी! आप युद्ध में पधारने के विचार का त्यागकर मुझे युद्ध में जाने हेतु अनुमति प्रदान करें। मैं शीघ्र ही राजा वरुण को पराजित कर दूँगा।'

✦ ✦ ✦

पिता व माता से आज्ञा लेकर एवं परिजनों को धैर्य बँधाकर, भगवान अरहन्त-सिद्ध के स्मरणपूर्वक कुमार ने विदा ली। उस समय अञ्जनासुन्दरी आँसू-भीगी आँखों से दरवाजे पर स्तम्भ के सहारे खड़ी थी, जिसे देखकर स्तम्भ में उत्कीर्ण पुतली की आशङ्का होती थी।

उस पर नजर पड़ते ही कुमार ने अपनी नजर फेर ली और कुपित स्वर में कहा – 'अरे! तेरा दर्शन भी कष्टप्रद है, तू इस स्थान से चली जा, निर्लज्ज होकर यहाँ क्यों खड़ी है?'

पति के ये कर्कश वचन भी उस समय अञ्जना को ऐसे मधुर प्रतीत हुए, जैसे बहुत दिनों से प्यासी चातक को मेघ की एक बूँद भी प्रिय लगती है।

वह हाथ जोड़कर गद्गद् हो कहने लगी – 'हे नाथ! जब आप यहाँ रहते थे, तब भी मैं वियोगिनी थी परन्तु 'आप निकट ही हैं' – ऐसी आशा से प्राण जैसे-तैसे टिके रहे, लेकिन अब तो आप क्षेत्र से भी दूर जा रहे हैं; अत: मैं किस प्रकार जीवित रहूँगी?

हे नाथ! परदेश गमन के इस प्रसङ्ग पर आपने न मात्र नगर के मनुष्यों, वरन पशुओं को भी धैर्यता प्रदान की है और सभी को अपनी अमृतमयी वाणी से सन्तुष्ट किया है; एकमात्र मैं ही आपकी अप्राप्ति से दु:खी हूँ। मेरा चित्त आपके चरणारविन्द का अभिलाषी है, आपने अन्य सभी को अपने श्रीमुख से धैर्य प्रदान किया है; अत: यदि उन्हीं की तरह आप मुझे भी कुछ धैर्य प्रदान करते तो अच्छा था। जब आपने ही मेरा परित्याग कर दिया, तब मेरे लिए जगत् में कौन शरणरूप है?'

तब कुमार ने मुँह बिगाड़कर कुपित स्वर में कहा – 'मर!' इतना सुनते ही अञ्जना खेद-खिन्न हो धरती पर गिर पड़ी। कुमार उसे ढोंग (नाटक) समझकर वहाँ से प्रस्थान कर गये। सेनासहित वे सायंकाल मानसरोवर आ पहुँचे।

✦ ✦ ✦

विद्याबल से एक महल का निर्माण कर, पवनकुमार अपने मित्र प्रहस्तसहित उसमें बैठे हुए हैं और झरोखे में से मानसरोवर की सुन्दरता का अवलोकन कर रहे हैं। सरोवर के स्वच्छ जल में कमल खिले हुए हैं, जिसमें हंस एवं चातक पक्षी क्रीड़ा में संलग्न थे, तभी सूर्यास्त हो गया और चकवा-चकवी बिछुड़ गये। चकवे के वियोग से सन्तप्त चकवी अकेली आकुल-व्याकुल होने लगी। चकवे को देखने के लिए उसके नेत्र अस्ताचल की ओर लगे हुए थे, वह बारम्बार कमल के छिद्र में उसे शोध रही थी, कमल के रस का स्वाद भी उसे विषतुल्य प्रतीत हो रहा था। पानी में दृष्टिगोचर होनेवाले अपने ही प्रतिबिम्ब को अपना प्रीतम समझकर बुला रही थी परन्तु प्रतिबिम्ब आवे कहाँ से? इस कारण चकवे की अप्राप्ति से अत्यन्त शोकाकुल हो रही थी। सेना के सैनिकों एवं हाथी-घोड़ों के शब्दों को सुनकर अपने पति की आशा से वह अपने चित्त को भ्रमित कर रही थी तथा किनारे पर स्थित वृक्ष पर चढ़कर आकुलतामय भाव से दशों दिशाओं का अवलोकन कर रही थी, किन्तु कहीं भी अपने पति को न देखकर धरती पर आ गिरी।

बहुत समय तक चकवी की ऐसी दशा को पवनकुमार ने ध्यानपूर्वक देखा। चकवी की व्याकुलता को देखकर उनका चित्त दया से आर्त हो गया। उस समय कुमार को अञ्जना को याद

सताने लगी। उनके मन में विचारों के तूफान चलने लगे – 'अरे रे! यह चकवी, प्रीतम के वियोग में किस तरह शोकाग्नि में जल रही है! यह मनोहर मानसरोवर एवं चन्द्रमा की चन्दन-सदृश चाँदनी भी इस वियोगिनी को दावानल-सदृश दाहकारक प्रतीत हो रही है। जब यह चकवी अपने पति से एक रात के वियोग को सहन करने में असमर्थ हो रही है, तब वह महासुन्दरी अञ्जना किस प्रकार बाईस वर्ष से मेरे वियोग को सहन कर रही होगी! उसकी क्या दशा हुई होगी? अरे! यह वही तो मानसरोवर है, वही तो स्थान है, जहाँ हमारा विवाह हुआ था।' विवाह स्थल पर नजर पड़ते ही कुमार के शोक की अभिवृद्धि हो गयी।

वे सोचने लगे – 'हाय! हाय!! मैं कैसा निष्ठुर चित्त हूँ, मैंने व्यर्थ ही उस निर्दोष का परित्याग कर दिया। कटुवचन तो उसकी दासी ने कहा था, उसने तो कुछ भी नहीं कहा था, तथापि मैंने बिना विचारे दूसरे के दोष से उसका त्याग कर दिया। उस निर्दोष सती को अकारण दु:ख दिया। इतने वर्षों तक उसे वियोगिनी बनाये रखा। हाय! अब मैं क्या करूँ? घर से तो पिताश्री द्वारा विदा प्राप्त कर निकला हूँ, अब वापस भी किस तरह जा सकता हूँ? अरे! बड़े धर्मसंकट में फँस गया हूँ। यदि मैं अञ्जना से मिले बिना संग्राम में जाता हूँ तो निश्चित ही वह मेरे वियोग में प्राण त्याग देगी और उसके अभाव में मेरा अभाव भी सुनिश्चित है। जगत् में जीवन के समान कुछ नहीं है; अत: सर्व सन्देह का निवारण करनेवाले अपने मित्र प्रहस्त से इसका उपाय पूछूँ। वह हर प्रकार से प्रवीण एवं विचारशील है अवश्य ही कोई न कोई मार्ग सुझायेगा।

सत्य ही है कि प्रत्येक कार्य को सोच-विचार कर करनेवाला प्राणी निस्सन्देह सुख को प्राप्त करता है।'

इस प्रकार पवनकुमार अन्तर्द्वन्दों में गोते खा रहे थे। वहीं कुमार को विचारमग्न देखकर, जो कुमार के सुख से सुखी एवं दु:ख से दु:खी हो जाता है –ऐसा मित्र प्रहस्त पूछने लगा –

'हे मित्र! तुम किस चिन्ता में मग्न हो, तुम्हें तो प्रसन्न होना चाहिए कि तुम महाराज रावण की सहायतार्थ वरुण जैसे योद्धा के सन्मुख युद्ध हेतु जा रहे हो। याद रखो, इस समय प्रसन्नता में ही कार्यसिद्धि निहित है। फिर भी आज तुम्हारे मुखकमल की मलिनता का क्या कारण है ? सङ्कोच का परित्याग कर मुझे वस्तुस्थिति से अवगत कराओ। तुम्हें चिन्तामग्न देखकर मुझे व्याकुलता हो रही है।'

पवनकुमार ने कहा – 'हे मित्र! बात ही कुछ ऐसी है, जो किसी से कही नहीं जा सकती। यद्यपि मेरे हृदय की समस्त वार्ता कहने का एकमात्र स्थान तुम्हीं हो, तुममें और मुझमें कुछ भी भेद नहीं है, तथापि यह बात कहते हुए मैं सङ्कोच का अनुभव कर रहा हूँ।'

प्रहस्त कहने लगा – 'हे कुमार! जो तुम्हारे चित्त में हो, वह कहो। जो कुछ तुम मुझसे कहोगे, वह बात सदैव गोपनीय रहेगी – यह वचन है। जैसे गर्म लोहे पर गिरा हुआ जल-बिन्दु शीघ्र ही विलय को प्राप्त हो जाने से दृष्टिगोचर नहीं होता, उसी प्रकार मुझसे कही हुई तुम्हारी बात प्रगट नहीं होगी।'

तब कुमार कहने लगा – 'हे प्रिय! सुनो, मैंने कभी भी अञ्जना के साथ प्रीति नहीं की, इस कारण आज मेरा मन अत्यन्त व्याकुल है। हमारा विवाह हुए बाईस वर्ष व्यतीत होने पर भी, उसे

आज तक मेरा वियोग रहा है। वह नित्य ही शोकाकुल हो अश्रुपात करती है। यहाँ आने के समय वह दरवाजे पर खड़ी थी, तब वियोगावस्था में दु:खित उसका चेहरा मैंने देखा था, वह दृश्य अभी भी मेरे मानसपटल पर बाण की भाँति चुभ रहा है। अत: हे मित्र! यह प्रयत्न करो, जिससे हमारा सम्मिलन सम्भव हो सके, अन्यथा हम दोनों का मरण सुनिश्चित है।'

कुछ देर विचार कर प्रहस्त बोला – 'हे कुमार! तुम माता -पिता की आज्ञा प्राप्त कर युद्ध में शत्रु को परास्त करने निकले हो; अत: वहाँ वापस जाना तो अनुचित है ही; अञ्जना को यहाँ बुलाना भी उचित नहीं है, क्योंकि तुम्हारा व्यवहार आज तक उसके प्रति निराशाजनक रहा है – ऐसी स्थिति में तो यही सम्भव है कि तुम गुप्तरूप से वहाँ जाओ और उसका अवलोकन करके सुख -सम्भाषण कर आनन्दपूर्वक प्रात:काल होने के पूर्व ही वापस यहाँ आ जाओ – ऐसा करने से तुम्हारा चित्त शान्त होगा, परिणामस्वरूप तुम शत्रु पर विजय प्राप्त कर सकोगे।'

इस प्रकार निश्चय कर, सेना की रक्षा का भार सेनापति के सुपूर्द कर, दोनों मित्र मेरु-वन्दना के बहाने आकाशमार्ग से अञ्जना के महल की ओर प्रस्थान कर गये। उस समय कुछ रात्रि व्यतीत हो गयी थी। अञ्जना के महल में दीपक का प्रकाश टिमटिमा रहा था। पवनकुमार के शुभागमन का शुभ समाचार देने हेतु कुमार को बाहर ही छोड़कर प्रहस्त भीतर गया और उसने दरवाजा खटखटाया।

आहट पाकर अञ्जना ने पूछा – 'कौन है ?' फिर समीप ही

शयन कर रही सखी बसन्तमाला को जगाया, तब सर्व बातों में निपुण बसन्तमाला, अञ्जना के भय को निवारण करने को उद्यत हुई तथा दरवाजा खोला।

जब प्रहस्त ने नमस्कार करके पवनकुमार के शुभागमन का समाचार अञ्जना को सुनाया तो वह सहसा इस बात पर विश्वास न कर सकी और यह समाचार उसे स्वप्नवत् ज्ञात हुआ।

गद्गद् वाणी द्वारा वह प्रहस्त से कहने लगी – 'हे प्रहस्त! मैं पुण्यहीन, पतिकृपाविहीन हूँ, तुम क्यों मेरा अपमान कर रहे हो? मैं तो पहले ही पापोदय की सताई हुई हूँ, पर अरे रे! पति द्वारा ही जिसका सम्मान न हो, उसकी अवज्ञा भला कौन नहीं करेगा? हाय! मुझ अभागिन को वह सुखद दिन कब प्राप्त होगा? कब मुझे अपने प्राणेश्वर के दर्शन होंगे?'

प्रहस्त ने करबद्ध हो निवेदन किया – 'हे कल्याण रूपिणी! हे पतिव्रता!! मेरा अपराध क्षमा करें। अब आपके अशुभकर्मोदय का समापन हो गया है। आपके निश्चल प्रेम से प्रेरित होकर आपके प्राणनाथ यहाँ पधारे हैं। वे आपसे अत्यन्त लज्जित हैं तथा प्रसन्न भी है, उनकी प्रसन्नता से आपको आनन्द न हो – यह असम्भव है।'

यह बात सुनकर अञ्जना ने अपनी नजरें झुका लीं, तब बसन्तमाला ने प्रहस्त से कहा – 'हे भद्र! मेघ तो जब बरसे, तभी श्रेष्ठ हैं। कुमार इनके महल में पधारे हैं – यह इनका महाभाग्य है, हमारा भी पुण्यरूप वृक्ष विकसित होकर फला है।'

अन्दर इस प्रकार चर्चा चल रही थी कि तभी कुमार भी वहीं

आ पहुँचे। उनके नेत्रों से आनन्दाश्रु छलक रहे थे, मानों कल्याणरूपी सखी ही उन्हें यहाँ ले आयी थी।

पति को देखते ही जब अञ्जना ने हाथ जोड़कर विनयपूर्वक उनके चरणस्पर्श किये, तब कुमार ने उसे अपने हाथों से उठाकर इस प्रकार सम्बोधित किया – 'हे देवी! अब सर्व क्लेश एवं दु:खों का परित्याग कर दो।' – ऐसा कहकर उन्होंने उसे अपने निकट बैठाया, तब प्रहस्त और बसन्तमाला बाहर चले गये।

अपनी भूल के कारण लज्जित पवनकुमार ने बारम्बार अञ्जना सुन्दरी से कुशल समाचार पूछे और कहा – 'हे प्रिय! मैंने व्यर्थ ही तुम्हारा अनादर किया, इसके लिए तुम मुझे क्षमा करो। मैंने अन्यकृत अपराध का तुम पर दोषारोपण किया, अब इन बातों का विस्मरण करो। अपने अपराध की क्षमा हेतु मैं बारम्बार तुमसे याचना करता हूँ, तुम मुझ पर प्रसन्न होओ।' – ऐसा कहते हुए पवनकुमार ने उसके प्रति बहुत स्नेह प्रदर्शित किया।

अपने प्राणनाथ का अपूर्व स्नेह देखकर महासती अञ्जना अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक कहने लगी – 'हे नाथ! मेरे प्रति इस तरह अनुनय-विनय करना आपके लिये अनुचित है। मेरा हृदय तो सदैव आपके ध्यान से संयुक्त ही था, आप तो सदा से ही मेरे हृदय में विराजमान थे। आपके द्वारा प्रदत्त अनादर भी मुझे आदरवत् ही प्रतीत होता था। अब तो आपने मुझ पर अपार कृपा कर अत्यधिक स्नेह प्रदर्शित किया – इसकी मुझे अत्यन्त प्रसन्नता है। मेरे तो सारे ही मनोरथ सिद्ध हो गये हैं।' इस प्रकार दोनों में परस्पर स्नेहपूर्वक वार्तालाप एवं समागम के साथ रात्रि व्यतीत हुई।

✦ ✦ ✦

प्रात:काल होने के कुछ समय पूर्व ही प्रहस्त ने आकर कुमार से कहा – 'हे मित्र! अब चलने में शीघ्रता करो। अपनी प्राणप्रिया का विशेष सम्मान वापस आकर करना, अभी तो गुप्तरूप से ही वापस सेना में पहुँचना है। मानसरोवर पर अन्य राजागण आदि सभी साथ चलने के लिये तुम्हारा इन्तजार कर रहे होंगे। इतना ही नहीं; स्वयं महाराज रावण भी अपने मन्त्रियों से तुम्हारे आगमन के विषय में जानकारी प्राप्त करते रहते हैं। अत: अब विलम्ब करना किसी भी तरह उचित नहीं है। आप शीघ्र ही अपनी प्राणप्रिया से विदा लेकर आओ।' इतना कहकर प्रहस्त तो वापस बाहर चला गया।

तब अञ्जना से विदा माँगते हुए पवनञ्जय ने कहा – 'हे प्रिये! अब मैं जा रहा हूँ, तुम चिन्ता मत करना, कुछ दिनों पश्चात् ही मैं वापस आ जाऊँगा, तब तक सानन्द रहना।'

कुमार के वचन सुनकर सती अञ्जना सङ्कोचपूर्वक हाथ जोड़कर इस प्रकार कहने लगी – 'हे प्राणनाथ! अभी मेरा ऋतु समय है; अत: आपके समागम से मेरा गर्भधारण करना अवश्यम्भावी है। यह तो सभी को ज्ञात है कि आज तक मुझ पर आपकी कृपादृष्टि नहीं रही, अत: मेरे हित के लिये आप माता-पिता से अपने आने का वृत्तान्त अवश्य कहते जाएँ।'

पवनकुमार ने कहा – 'हे प्रिये! माता-पिता से तो मैं आज्ञा प्राप्त कर निकला हूँ, अत: अब उनके समीप जाकर यह बात कहते हुए मुझे लज्जा आती है। समस्त लोकजन भी मेरी इस चेष्टा को जान कर हँसी ही करेंगे, किन्तु तुम विश्वास रखो, तुम्हारे गर्भ

के चिह्न प्रगट हों, उससे पूर्व ही मैं वापस आ जाऊँगा। तुम अपने चित्त को प्रसन्न रखना। यदि कोई पूछे तो मेरे आगमन की प्रतीकरूप यह मेरे नाम की मुद्रिका एवं हाथ के कड़े रखो, आवश्यकता पड़ने पर ये मेरे आगमन की साक्षी देंगे और तुम्हें भी शान्ति रहेगी' – इस प्रकार मुद्रिका एवं कड़े अञ्जना को सौंपकर कुमार ने विदा ली और जाते-जाते बसन्तमाला को अञ्जना की भले प्रकार सेवा करने की आज्ञा दी।

यहाँ से निकलकर दोनों मित्र आकाशमार्ग से विमान द्वारा मानसरोवर पर आ पहुँचे।

इस घटना के रहस्य का परिज्ञान कराते हुए गौतम गणधर, राजा श्रेणिक से कहते हैं – 'हे श्रेणिक! इस लोक में कभी उत्तम वस्तु के संयोग से किञ्चित् सुख का प्रतिभास होता है, वह भी क्षणभङ्गुर है और देहधारियों को पापोदय से होनेवाला दु:ख भी क्षणभङ्गुर है – इस प्रकार संयोगजन्य सुख-दु:ख दोनों ही क्षणभङ्गुर हैं, अत: इनमें हर्ष-विषाद का त्याग करना चाहिए।

हे प्राणियों! यह जिनधर्म ही जीवों को वास्तविक सुख का प्रदाता एवं दु:खरूप अन्धकार का नाशक है, अत: जिनधर्मरूपी सूर्य के प्रताप से मोहरूपी अन्धकार का नाश करो।'

✦ ✦ ✦

समय पाकर सती अञ्जना के गर्भ के लक्षण प्रगट होने लगे, उसका मुख इस तरह श्वेत हो गया, मानो गर्भ में स्थित हनुमान के उज्ज्वल यश को ही प्रगट कर रहा हो। ऐसे लक्षणों द्वारा सती

अञ्जना को गर्भवती जानकर उसकी सास केतुमति पूछने लगी —

'अरी अञ्जना! यह पाप कार्य तूने किसके साथ किया है?'

अञ्जना ने अत्यन्त विनयपूर्वक हाथ जोड़कर पति-आगमन का सम्पूर्ण वृत्तान्त अपनी सास को सुना दिया, किन्तु निष्ठुर हृदयी केतुमति को उस पर तनिक भी विश्वास नहीं हुआ। अत: वह बिना विचारे ही क्रोधावेश में आकर कर्कशवचन कहने लगी —

'रे पापिनी! मेरा पुत्र तो तुझसे इतना विरक्त था कि तेरी छाया तक नहीं देखना चाहता था, तेरी बात तक सुनना उसे पसन्द न था; फिर वह तो हमसे आज्ञा प्राप्त कर रण-संग्राम में गया है, वह तेरे महल में कैसे आ गया? रे निर्लज्ज! तुझ पापिन को धिक्कार है। निन्द्यकर्म करके तूने हमारे उज्ज्वल वंश में कलङ्क लगा दिया है। क्या तेरी इस सखी बसन्तमाला ने तुझे यही बुद्धि सुझायी है।'

सास की क्रूरतापूर्ण बातों को सुनकर अञ्जना ने कुमार द्वारा निशानी के रूप में प्रदान किये गये कड़े एवं मुद्रिका उन्हें दिखायी, तथापि उसकी सास के सन्देह का निवारण न हुआ और अत्यन्त क्रोधपूर्वक उसने एक सेवक को आदेश दिया – 'जाओ! इस दुष्टा को इसकी सखीसहित रथ में बिठाकर महेन्द्रनगर के समीप छोड़ आओ।'

क्रूर केतुमति की आज्ञा पाकर सेवक ने उसका अनुसरण किया और दोनों को रथ में बिठाकर महेन्द्रनगर की ओर प्रस्थान

करा दिया। उस समय भयाक्रान्त हो अञ्जना का सारा शरीर काँप रहा था, भय के कारण वह अपनी सास से और कुछ भी न कह सकी। उसकी दशा तो प्रचण्ड पवन के वेग से उखड़ी हुई बेल की भाँति एकदम निराश्रय हो गयी थी। वह बारम्बार अपने अशुभ -कर्मोदय की निन्दा करती थी, उसका चित्त अत्यन्त अशान्त था।

शाम होते-होते रथ महेन्द्रनगर के समीप पहुँच गया। तब सेवक ने अञ्जना से कहा – 'हे देवी! माताजी ने आपको यहाँ तक ही छोड़ने की आज्ञा दी है, उन्हीं की आज्ञा से यह दु:खरूप कार्य मुझे करना पड़ रहा है। मुझे क्षमा कर दें।' – ऐसा कहकर वह सेवक वापस आदित्यपुर नगर की ओर बढ़ गया।

महापवित्र पतिव्रता अञ्जना सुन्दरी को अत्यन्त दु:खी देखकर सूर्य भी मन्द पड़कर अस्त हो गया। रो-रोकर अञ्जना की आँखें लाल हो जाने से मानो पश्चिम दिशा भी लाल रङ्ग में रङ्ग गयी। धीरे-धीरे रात्रि हुई और चारों ओर अन्धकार व्याप्त हो गया। वन्य पशु-पक्षी भी मानो अञ्जना के दु:ख से दुखित हो कोलाहल करने लगे।

अपमानरूप महादु:खसागर में डूबी अञ्जना, भूख-प्यास आदि सब भूल गयी। भयभीत हो रुदन करने लगी। अञ्जना की इस दुखित अवस्था से द्रवित हो, बसन्तमाला उसे धैर्य दिलाती हुई कहने लगी – 'हे बहिन! तुम धैर्य धारण करो। तुम तो आत्मज्ञानी

हो, देव-गुरु-धर्म की परम भक्त हो, पवित्रात्मा हो, पतिव्रता हो, तुम्हारे ऊपर यह सङ्कट मुझसे नहीं देखा जाता। हे सखी! तू धैर्य रख, हिम्मत रख! अल्प काल में ही तेरे दु:खों का अन्त होगा। धर्मात्मा जीव पर दीर्घकालीन सङ्कट नहीं रह सकता।' – इस प्रकार धैर्य बँधाकर अञ्जना को सुलाने का प्रयास करने लगी, किन्तु उसकी आँखों में रञ्चमात्र भी निद्रा न थी, उसे एक रात्रि भी एक वर्ष के सदृश लगी।

बसन्तमाला कभी उसे धैर्य दिलाती, कभी पैर दबाती – इस प्रकार जिस-तिस प्रकार उन्होंने रात्रि व्यतीत की।

✦ ✦ ✦

प्रात: काल हो गया था, पक्षी चहुँओर कोलाहल करने लगे थे, सूर्यदेव उदित होने की तैयारी में थे। यहाँ दोनों सखियों ने सर्व प्रथम पञ्च परमेष्ठी भगवन्तों का स्मरण किया। तत्पश्चात् विह्वलतापूर्वक अञ्जनासुन्दरी ने अपने पिता राजा महेन्द्र के महल की तरफ प्रस्थान किया, बसन्तमाला ने भी छाया की तरह अञ्जना का अनुसरण किया।

राजमहल के दरवाजे पर पहुँचकर जब दोनों ने अन्दर प्रवेश करना चाहा तो द्वारपाल ने उन्हें रोक दिया, क्योंकि दु:ख के कारण अञ्जना का रूप ऐसा हो गया था कि द्वारपाल भी उसे पहिचानने में असमर्थ रहा।

रे संसार! जो कभी राजकुमारी के रूप में उस महल में उछलकूद करती थी, आज वही, उसी महल में जाने पर द्वारपाल द्वारा रोकी गयी। अरे रे! संसार में पुण्य-पाप का चक्र ऐसा ही चलता है।

जब बसन्तमाला ने द्वारपाल को सम्पूर्ण वस्तुस्थिति से अवगत कराया, तब वह दरवाजे पर अन्य व्यक्ति को खड़ा करके स्वयं अन्दर गया और राजा महेन्द्र को अञ्जना के आगमन का समाचार दिया, उसे सुनकर राजा महेन्द्र ने अपने पुत्र प्रसन्नकीर्ति को आदेश दिया कि 'तुम शीघ्र अञ्जना के सन्मुख जाओ और शीघ्र ही उसके नगर प्रवेश की तैयारी कराओ, नगर को सजाओ, मैं अभी आता हूँ।'

राजा की ऐसी आज्ञा सुनकर द्वारपाल ने हाथ जोड़कर कहा – 'हे महाराज! कुमारीजी अकेली ही पधारी हैं, उनके साथ सखी बसन्तमाला के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है और किसी प्रकार का ठाट-बाट भी नहीं है। उनकी सास ने उन पर कलङ्क लगाकर घर से बाहर निकाल दिया है, वे यहाँ बाहर द्वार पर खड़ी हैं एवं भीतर आने हेतु आपकी अनुमति चाहती हैं।'

पुत्री पर लगे कलङ्क की बात सुनकर राजा महेन्द्र को लज्जा आई और क्रोधित हो अपने पुत्र को आदेश दिया – 'उस पापिनी को शीघ्र ही नगर से बाहर कर दो, उसकी बात सुनते हुए भी मेरे कान फटे जा रहे हैं।'

राजा महेन्द्र की क्रोधपूर्ण आज्ञा को सुनकर उनका अत्यन्त प्रिय सामन्त मनोत्साह आकर कहने लगा – 'हे नाथ! बसन्तमाला से सम्पूर्ण वस्तुस्थिति ज्ञात किये बिना यह आज्ञा देना उचित नहीं

है। अपनी अञ्जना उत्तम संस्कारों से संयुक्त एवं धर्मात्मा है, जबकि उसकी सास केतुमति अत्यन्त क्रूर है; इतना ही नहीं, वह तो जैनधर्म से पराङ्मुख एवं नास्तिकमत में प्रवीण है। यही कारण है कि उसने बिना विचारे अञ्जना पर दोषारोपण किया है। अञ्जना तो जैनधर्म की ज्ञाता होने के साथ ही श्रावक के व्रतों की धारक है, धर्माचरण में सदैव तत्पर रहती है। उसकी सास ने तो उसे निष्कासित कर ही दिया, अब यदि आप भी उसे शरण प्रदान नहीं करेंगे तो वह किसकी शरण अङ्गीकार करेगी?'

जिस तरह सिंह से भयभीत हिरण, गहन वन की शरण धारण करता है, उसी प्रकार सास द्वारा प्रताड़ित यह भोली-भाली निष्कपट अञ्जना आपकी शरण में आई है। अभी तो वह दु:खी एवं विह्वल हो रही है; अपमानरूप आताप से उसका अन्त:स्थल संतप्त है, इस समय भी यदि वह आपके आश्रित रहकर शान्ति प्राप्त नहीं करेगी तो कहाँ शान्ति प्राप्त करेगी? द्वारपाल द्वारा रोके जाने के कारण वह अत्यन्त लज्जित होकर राजद्वार पर मुँह ढँककर खड़ी -खड़ी बिलख रही है। आपके स्नेह के कारण वह सदा आपकी लाडली रही है और केतुमति की क्रूरता तो जगत्प्रसिद्ध है; अत: हे राजन! आप दया करके शीघ्र ही निर्दोष अञ्जना का महल में प्रवेश कराइये।'

— इस प्रकार मनोत्साह सामन्त ने अनेक प्रकार के न्यायपूर्ण वचन कहे, पर राजा ने उन पर किञ्चित भी ध्यान नहीं दिया। जैसे, कमल पत्र पर पानी नहीं ठहरता, उसी प्रकार राजा महेन्द्र के हृदय पर इन न्यायपूर्ण वचनों का कुछ भी प्रभाव नहीं हुआ।

राजा महेन्द्र ने सामन्त से पुन: कहा – 'हे सामन्त! इसकी सखी बसन्तमाल तो सदा से ही इसके साथ रहती आई है, अत: कदाचित् अञ्जना के स्नेहवश वह सत्य बात नहीं कह सकती, तब अपने को यथार्थता का परिज्ञान किस प्रकार संभव है? अञ्जना का सतीत्व सन्देहास्पद स्थिति में है, अत: उसे शीघ्र ही नगर के बाहर कर दो। यदि यह बात प्रगट हो गयी तो हमारे उज्ज्वल कुल में कलङ्क लग जाएगा। यह बात मैं पूर्व में भी अनेक बार सुन चुका हूँ कि वह सदा ही अपने पति की कृपाविहीन रही है। जब वह उसकी ओर देखता तक नहीं था, तब उसे गर्भोत्पत्ति किस प्रकार सम्भव है? अत: निश्चित ही अञ्जना दोषी है, उसे मेरे राज्य में जो भी शरण देगा, वह मेरा शत्रु है।' – इस प्रकार कहकर राजा ने अञ्जना को अपने राज-द्वार से बाहर करवा दिया।

सखीसहित दु:ख से सन्तप्त अञ्जना अपने रिश्तेदारों के यहाँ, जहाँ-जहाँ भी शरण प्राप्त करने पहुँची, वहाँ-वहाँ से उसे असफलता ही प्राप्त हुई। यद्यपि सबके मन में उसके प्रति दयारूप भाव थे, तथापि राजाज्ञा के भय से सबने अपने-अपने दरवाजे बन्द कर लिये थे। वह विचारने लगी – 'अरे रे! जहाँ पिता ने ही मुझे क्रोधित होकर तिरस्कृत कर दिया, वहाँ अन्य की तो बात ही क्या? ये सब तो राजा के अधीन हैं' – इस प्रकार सबके प्रति उदासीन होकर अञ्जना अपनी प्रिय सखी से कहने लगी —

'हे सखी! यहाँ अपना कोई नहीं है। अपने वास्तविक माता-पिता एवं रक्षक तो देव, गुरु और धर्म ही हैं, सदा उन्हीं की शरण है। यहाँ तो सब ही पाषाणचित्त हैं, यहाँ अपना वास सम्भव नहीं

है ? चलो ! अब तो हम वन में ही चलें। जहाँ वीतरागी सन्तों का वास है – ऐसे वन में आत्मसाधनार्थ निवास करेंगे।'

चलो सखी अब वहाँ चलें, जहाँ मुनियों का वास।
आतम का अनुभव करें, वन में करें निवास॥

✦ ✦ ✦

(5)

वनवासी अञ्जना –

इस प्रकार विचारकर अञ्जना ने अपनी सखीसहित वन की तरफ प्रस्थान कर दिया, जब वह कंकड़-पत्थरों पर चलते-चलते थक गयी तो वहीं बैठकर रुदन करने लगी – 'हाय! हाय!! मैं मन्दभाग्यनी पूर्व पापोदय के कारण महाकष्ट को प्राप्त हुई हूँ, क्या करूँ ? किसकी शरण में जाऊँ ? कौन करेगा मेरी रक्षा ? अरे ! माता ने भी मेरी रक्षा नहीं की, वह करती भी क्या ? वह भी तो अपने पति के आधीन है। पिताश्री की तो मैं सदा से ही लाडली रही हूँ, वे तो मुझे प्यार से अपनी गोद में बिठाते थे, उन्होंने भी बिना परीक्षा के ही मेरा निरादर कर दिया। अरे ! जिस माता ने नौ माह मुझे अपने गर्भ में धारण किया, मेरा परिपालन किया, वह भी मुझे आश्रय न दे सकी, न यह कह सकी कि इसके गुण-दोष का निर्णय तो करो। अरे ! जब मेरे माता-पिता की ही यह स्थिति है, तब दूर के काका, नाना, प्रधान, सामन्त एवं

प्रजाजन तो कर ही क्या सकते हैं ? इसमें दूसरों का दोष भी क्या है ? मैं ही वर्तमान में दुर्भाग्यरूपी समुद्र में गिरी हुई हूँ। कौन जाने, किन अशुभकर्मोदय के कारण प्राणनाथ पधारे एवं यह दुर्दशा हुई ? अरे ! प्राणनाथ जाते-जाते भी कह गये थे कि तुम्हारे गर्भ के चिह्न प्रगट होने के पूर्व ही मैं पहुँच जाऊँगा। हे नाथ ! दयावान होकर भी आपने इस वचन को क्यों नहीं निभाया ? अरे ! सास ने भी बिना परीक्षा किये ही क्यों मेरा त्याग कर दिया ? जिसके शील में सन्देह हो, उसकी परीक्षा के भी तो अनेक उपाय होते हैं। अरे ! जब मेरा पापोदय ही ऐसा है, तब कौन शरण हो सकता है ?'

इस प्रकार अञ्जना विलाप करने लगी, उसका विलाप सखी से देखा नहीं जा सका, वह भी धैर्य खो बैठी और रोने लगी। दोनों सखियों के करुण क्रन्दन को सुनकर उनके आस-पास स्थित हिरणियाँ भी आँसू बहाने लगी। इसी दशा में बहुत समय व्यतीत हो गया। तब महा विचक्षण बसन्तमाला, अञ्जना को हृदय से लगाकर कहने लगी – 'हे सखी ! तुम शान्त हो जाओ। अधिक विलाप से क्या कार्यसिद्धि होनेवाली है ? तुम तो जानती हो कि इस संसार में कोई भी पदार्थ इस जीव के लिए शरण प्रदाता नहीं है, माता-पिता भी शरण नहीं हैं।'

सर्वज्ञ वीतराग देव एवं निर्ग्रन्थ गुरु ही सच्चे माता-पिता हैं और तुम्हारा निर्मल सम्यग्दर्शन ही तुम्हें शरणरूप है। वही तुम्हारा वास्तविक रक्षक एवं इस असार-संसार में एकमात्र सारभूत है। अत: हे सखी ! इस तत्त्वज्ञान के चिन्तवन से अपने चित्त को शान्त करो। पूर्वोपार्जित कर्मों के उदयानुसार संयोग-वियोग की दशाएँ तो बनती ही रहती हैं, उसमें हर्ष-शोक क्या करना ? स्वर्ग की

अप्सरायें जिसे निरखती हैं – ऐसा स्वर्ग का देव भी पुण्य समाप्त होने पर दु:ख प्राप्त करता है। जीव सोचता कुछ है और होता कुछ है; संयोग-वियोग में जीव का कुछ भी अधिकार नहीं है।

जगत् के जीव अपने अभिप्रायानुसार पदार्थों के संयोग-वियोग के लिए प्रयत्नशील होते हैं, परन्तु वस्तुत: संयोग-वियोग का कारण तो पूर्वोपार्जित शुभाशुभ कर्मोदय ही है। प्रियवस्तु का संयोग भी अशुभकर्मोदय के कारण वियोगरूप परिणमित हो जाता है और जिसकी कभी कल्पना भी न की हो – ऐसी वस्तु का संयोग शुभकर्मोदय के फलानुसार सहज ही प्राप्त हो जाता है। यह सब तो कर्मोदय की विचित्रता है। तुम्हारे द्वारा पूर्वोपार्जित कर्मोदयानुसार प्राप्त संयोग-वियोग तुम्हारे टालने से नहीं टलेंगे, अत: हे सखी! तू वृथा क्लेश न कर, खेद का परित्याग करके अपने मन को धैर्य से दृढ़ कर। तुम स्वयं विज्ञ हो, मैं तुम्हें क्या समझाऊँ? क्या तुम स्वयं नहीं जानती, जो मैं तुम्हें समझा रही हूँ।

इस प्रकार बसन्तमाला ने अत्यन्त स्नेह से अञ्जना को दिलासा दिलाते हुए उसके आँसू पोंछे और उसके शान्त होने पर वह फिर उससे कहने लगी —

'हे देवी! यह स्थान आश्रयरहित है, अत: यहाँ से चलें, उठो!

आगे चलते हैं। यदि समीप ही स्थित पहाड़ में जीव-जन्तुओं से रहित कोई गुफा हो तो उसकी खोज करते हैं। तुम्हारे प्रसूति का समय अत्यन्त निकट है, अत: कुछ दिन अत्यन्त सावधानीपूर्वक रहना आवश्यक है।'

सखी के आग्रह से अञ्जना कष्टपूर्वक उसके साथ चलने लगी। वह महा-वन, हाथी और चीतों से भरा हुआ था, सिंह की गर्जना एवं अजगर की फुंफकार से महाभयङ्कर प्रतीत होता था – ऐसे मातङ्ग मालिनी नामक घोर वन में अञ्जना अपनी सखी के साथ धीमे-धीमे पैर रखती हुई बढ़ी जा रही थी।

यद्यपि बसन्तमाला आकाशमार्ग से गमन करने में समर्थ थी, तथापि गर्भ-भार के कारण अञ्जना के चलने में असमर्थ होने से वह भी अञ्जना के प्रेम में बँधी, उसकी छाया के समान उसके साथ-साथ ही चल रही थी।

वन की भयानकता का अवलोकन कर अञ्जना काँप रही थी, भ्रमित हो रही थी, तब बसन्तमाला उसका हाथ पकड़कर कहने लगी – 'अरे मेरी बहन! तू डर मत, मेरे साथ चली आ।'

तब अञ्जना अपनी सखी के कन्धे पर हाथ रखकर, उसके साथ -साथ चल पड़ती। पैरों में कंकड़ एवं काँटे लग जाने के कारण खेदखिन्न हो विलाप करने लगती और बड़ी कठिनता से देह भी सम्भाले रखती,

मार्ग में समागत पानी के झरनों को बड़ी कठिनाई से लाँघती, बारम्बार विश्राम लेती, बारम्बार सखी धैर्य बँधाती।

इस प्रकार जैसे-तैसे दोनों सखियाँ पर्वत के समीप आ पहुँची। गुफा यद्यपि पास ही थी, तथापि अञ्जना तो वहाँ तक पहुँचने में भी असमर्थ थी; अत: आँसू बहाते हुए वहीं बैठ गयी और सखी से कहने लगी – 'हे सखी! मैं तो अब थक गयी हूँ, एक कदम भी चलने के लिए मैं समर्थ नहीं हूँ। मैं तो यही बैठी रहूँगी, भले ही मरण हो जाए।'

तब अत्यन्त चतुर बसन्तमाला हाथ जोड़कर अत्यन्त मधुर स्वर में शान्तिप्रदायक वचनों से इस प्रकार कहने लगी – 'हे सखी! देखो! अब गुफा नजदीक ही है, अत: कृपाकर यहाँ से उठो और वहाँ गुफा में निवास करो। यहाँ क्रूर जीवों का विचरण अत्यधिक मात्रा में हैं, अत: गर्भ की रक्षार्थ हठ का परित्याग करो।'

सखी के वचन सुनकर एवं वन की भयङ्करता से भयभीत अञ्जना अत्यन्त कष्टपूर्वक चलने के लिए उद्यमवन्त हुई और सखी के हाथ का सहारा पाकर दोनों गुफा के द्वार तक पहुँच गयीं।

बिना विचारे गुफा में प्रवेश करने से दोनों को ही भय पैदा होने लगा, इस कारण वे बाहर ही बैठ गयीं और ध्यानपूर्वक गुफा के भीतरी दृश्य का अवलोकन करने लगीं।

गुफा के भीतरी दृश्य पर उनकी दृष्टि पड़ते ही उनके आनन्द का पार न रहा। उन्होंने देखा कि अहो! गुफा में एक मुनिराज ध्यान-निमग्न हैं, वे मुनिराज, चारणऋद्धि के धारक थे, उनका शरीर एकदम निश्चल था, उनकी मुद्रा सागरसम गम्भीर एवं

परमशान्त थी, आँखे नासाग्र थी। आत्मा का जो स्वरूप जिनागम में प्रतिपादित किया गया है, उसी के ध्यान में मुनि तल्लीन थे। वे पर्वत-सम अडोल, आकाश-सम निर्मल एवं पवन की भाँति निसङ्ग थे। अहो! आप्रमत्तदशा में झूलते हुए वे मुनिराज, सिद्धसमान निजात्मा की साधना में मग्न थे।

— ऐसे धीर, वीर, गम्भीर, मुनिराज को देखते ही दोनों के हर्ष का पार न रहा। अहा! धन्य-धन्य मुनिराज!! — इस प्रकार कहती हुई, वे दोनों मुनिवर के समीप पहुँचीं और उनकी परमशान्त मुद्रा के दर्शनों को प्राप्त कर अपने सम्पूर्ण दु:खों को भूल गयीं। उन्होंने भक्तिपूर्वक हाथ जोड़कर तीन प्रदक्षिणा देकर मुनिराज को नमस्कार किया। मुनिराज जैसे परम बान्धव के दर्शन से उनके नेत्र प्रफुल्लित हो गये। आँसू रुक गए और नजरें मुनिराज के चरणों में स्थिर हो गयीं। वे दोनों हाथ जोड़कर महाविनयपूर्वक इस प्रकार मुनिराज की स्तुति करने लगीं —

'हे भगवन! हे कल्याणरूप! हे उत्तमध्यान के धारक! हे नाथ! आप जैसे सन्त तो समस्त जीवों की कुशलता के कारण हैं, अत: आपकी कुशलता के बारे में क्या पूछना? हे नाथ! आप तो संसार का परित्याग कर आत्महित की साधना में मग्न हैं। आप महापराक्रमी, महाक्षमावान हैं, परमशान्ति के धारक हैं, उपशान्तरस में झूलनेवाले हैं, मन और इन्द्रियों के विजेता हैं, आपका समागम जीवों के कल्याण का कारण है।'

— इस प्रकार अत्यन्त विनयपूर्वक स्तुति करके दोनों वहीं बैठ गयीं, मुनिवर के दर्शनों से दोनों का सम्पूर्ण कष्ट दूर हो गया।

मुनिराज का ध्यान पूर्ण होने पर दोनों ने पुन: उन्हें नमस्कार किया, तब स्वयमेव मुनिराज परमशान्त अमृत वचन कहने लगे —

'हे कल्याणरूपिणी! रत्नत्रय धर्म के प्रसाद से हमें पूर्ण कुशलता है। हे पुत्रियों! सभी जीवों को अपने-अपने पूर्वोपार्जित कर्मों के उदयानुसार संयोग-वियोग प्राप्त होते हैं। देखो कर्मों की विचित्रता! यह राजा महेन्द्र की पुत्री, अपराधरहित होने पर भी परिजनों द्वारा तिरस्कृत की गयी है।'

बिना कहे ही सम्पूर्ण वृतान्त जान लेनेवाले उन धीर-वीर -गम्भीर मुनिराज से बसन्तमाला ने पूछा — 'हे नाथ! क्या कारण है कि इसके पति इतने वर्षों से इससे उदास रहे और तत्पश्चात्

इसमें अनुरक्त हुए? और किस कारण से यह महासती वन में दु:ख को प्राप्त कर रही है तथा इसके गर्भ में कौन भाग्यहीन जीव स्थित है, जिसके जीवन के प्रति भी सन्देह है। हे प्रभो! कृपा करके इन प्रश्नों का उत्तर प्रदान कर मेरे सन्देह का निवारण करें।'

बसन्तमाला के प्रश्नों के प्रत्युत्तर स्वरूप अतुलज्ञान के धारक मुनिराज अमितगति सर्व यथार्थ वृतान्त कहने लगे क्योंकि महापुरुष तो सहज ही परोपकारी होते हैं, अत: मुनिराज ने मधुरवाणी से कहा —

'हे पुत्री! अञ्जना के गर्भ में स्थित जीव महापुरुष है। सर्व

प्रथम तुम्हें उसी (हनुमान) के पूर्वभवों का ज्ञान कराता हूँ। तुम ध्यानपूर्वक सुनो। तत्पश्चात् अञ्जना पूर्व भव के जिस पापाचरण के फलस्वरूप वर्तमान में दु:खावस्था को प्राप्त हुई है – उसका वृतान्त कहूँगा।'

✦ ✦ ✦

हनुमान के पूर्व भवों का वृतान्त —

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में मन्दिरनगर में प्रियनन्दी नामक एक गृहस्थ था, उसके दमयन्त नाम का एक पुत्र था। एक बार वह बसन्तऋतु में अपने मित्रों के साथ वनक्रीड़ा के लिए वन में गया, वहाँ उसने एक मुनिराज को देखा। जिनका आकाश ही वस्त्र था, तप ही धन था और वे निरन्तर ध्यान एवं स्वाध्याय में उद्यमवन्त थे – ऐसे परम वीतरागी मुनिराज को देखते ही दमयन्त अपनी मित्र मण्डली को छोड़कर श्री मुनिराज के समीप पहुँच गया। मुनिराज को नमस्कार कर उनसे धर्मश्रवण करने लगा। मुनिराज के तत्त्वोपदेश से उसने सम्यग्दर्शन की प्राप्ति की और श्रावक के व्रत एवं अनेक प्रकार के नियमों से सुशोभित होकर घर आया।

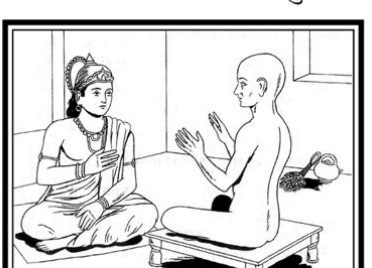

तत्पश्चात् एक बार

उस कुमार ने दाता के सात गुणसहित मुनिराज को नवधाभक्तिपूर्वक आहारदान दिया और अन्त समय में समाधिपूर्वक देह का परित्याग कर देवगति को प्राप्त हुआ।

स्वर्ग की आयु पूर्ण करके, वह जम्बूद्वीप के मृगांक नगर में हरिचन्द्र राजा की प्रियंगुलक्ष्मी रानी के गर्भ से सिंहचन्द्र नामक पुत्र हुआ। वहाँ भी सन्तों की सेवापूर्वक समाधिमरण ग्रहण कर स्वर्ग गया।

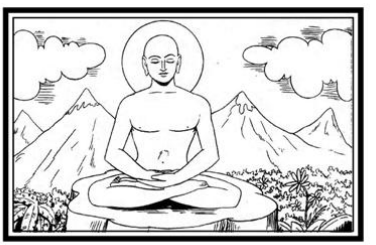

वहाँ पर आयु पूर्ण कर भरतक्षेत्र के विजयार्द्ध पर्वत पर अहनपुर नगर में सुकण्ठराजा की कनकोदरी रानी के यहाँ सिंहवाहन नामक पुत्र हुआ, जो महागुणवान एवं रूपवान था। उसने बहुत वर्षों तक राज्य किया। तत्पश्चात् विमलनाथस्वामी के समवसरण में आत्मज्ञानपूर्वक संसार से वैराग्य उत्पन्न होने पर राज्य का भार अपने पुत्र लक्ष्मीवाहन को सौंपकर, लक्ष्मीतिलक मुनिराज के शिष्यत्व को अङ्गीकार कर लिया, अर्थात् वीतरागदेव कथित मुनिधर्म अङ्गीकार कर लिया और अनित्यादि द्वादशानुप्रेक्षाओं का चिन्तवन करके ज्ञानचेतनारूप हो गया। उसने महान तप किया और निजस्वभाव में एकाग्रता के बल पर उस स्वभाव में ही स्थिरता की अभिवृद्धि का प्रयन्त करने लगा। तप के प्रभाव से उसे अनेक प्रकार की ऋद्धियाँ प्रगट हो गयीं, उसके शरीर से स्पर्शित पवन भी जीवों के अनेक रोगों को हर लेती थी। अनेक

ऋद्धियों से सम्पन्न वे मुनीश्वर निर्जरा के हेतु बाईस प्रकार के परीषहों को सहन करते। इस प्रकार अपनी आयु पूर्ण कर वे मुनिराज ज्योतिष्चक्र का उल्लङ्घन कर लान्तव नामक सप्तम स्वर्ग में महान ऋद्धि से सुसम्पन्न देव हुए।

देवगति में वैक्रियक शरीर होता है; अत: मनवाञ्छित रूप बनाकर इच्छित स्थानों पर गमन सहज ही होता था। साथ ही स्वर्ग का अपार वैभव होने पर भी उस देव को तो मोक्षपद की ही भावना प्रवर्तती थी, अत: वह स्वर्ग सुख में 'जल तैं भिन्न कमलवत्' निवास करता था।

हे पुत्री! वही देव, स्वर्ग से चयकर अञ्जना के गर्भ में आया है, वह चरमशरीरी है, अत: वह पुन: देह धारण नहीं करेगा; परम सुखरूप मोक्षदशा को प्राप्त करेगा। यह उसका अन्तिम भव है।

इस तरह हे कल्याण चेष्टावन्ती! यह तो हुआ उस पुत्र का वृतान्त, जो अञ्जना के गर्भ में स्थित है। अब, अञ्जना का वृतान्त सुनो, जिसके कारण इसे पति का वियोग एवं कुटुम्ब द्वारा तिरस्कृत होना पड़ा।

✦ ✦ ✦

अञ्जना के पूर्वभव

इस अञ्जना ने पूर्वभव में पटरानी पद के अभिमान के कारण अपनी सोत पर क्रोध करके देवाधिदेव श्री जिनेन्द्रदेव की प्रतिमा को जिनमन्दिर से बाहर निकाल दिया था। उसी समय समयश्री नामक आर्यिका इनके घर पर आहार हेतु पधारी थी, किन्तु जिनप्रतिमा का अनादर देखकर, उन्होंने आहार नहीं किया और प्रस्थान हेतु

उद्यत हुई तथा इसे अज्ञानी समझकर अत्यन्त करुणापूर्वक उपदेश देने लगीं। कारण कि साधु तो सभी का कल्याण ही चाहते हैं और जीवों को समझाने के लिए पात्र से बिना पूछे ही गुरु-आज्ञा से धर्मोपदेश हेतु प्रवर्तते हैं। इसी प्रकार शील एवं संयमरूप आभूषण से अलंकृत समयश्री नामक आर्यिका भी अत्यन्त मधुर अनुपम वचनों के द्वारा पटरानी से कहने लगीं —

'अरे भोली! सुनो! तुम रूपवती हो, राजा की पटरानी हो और राजा का तुम्हारे प्रति विशेष स्नेह है – यह सब तो पूर्वोपार्जित पुण्य का फल है।

यह जीव, मोह के कारण चतुर्गति में परिभ्रमण करता हुआ, महादु:ख का सेवन करता है। अनन्त काल में कभी महान पुण्योदय के कारण यह मनुष्य देह प्राप्त करके भी जो सुकृत्य नहीं करता, वह तो हाथ में आये हुए रत्न को व्यर्थ ही खो देता है। अशुभ क्रियाएँ दु:ख की मूल हैं; अत: तू निज कल्याणार्थ श्रेष्ठ कार्यों में प्रवर्त – यही उत्तम है।

यह लोक तो महानिंद्य, अनाचार से भरा हुआ है। जो स्वयं इस संसार से तिरते हैं, वे धर्मोपदेश द्वारा अन्य जीवों को भी तारने में निमित्त होते हैं; अत: उनके समान अन्य कोई उत्तम नहीं है, वे कृतार्थ हैं और ऐसे सन्त-मुनियों के जो नाथ हैं, जो सर्व जगत् के भी नाथ हैं – ऐसे धर्मचक्री श्री अरहन्तदेव हैं, जो उनके प्रतिबिम्ब का अविनय करते हैं, वे मूढ़ भव-भव में निकृष्ट गतियों को प्राप्त करते हैं और भयङ्कर दु:ख को भोगते हैं, जो कि वचन-अगोचर हैं।

यद्यपि श्री वीतरागदेव तो राग-द्वेष विहीन हैं, वे न तो अपने

सेवकों से प्रसन्न होते हैं और न अपने निन्दकों से द्वेष करते हैं – वे तो महामध्यस्थ वीतरागभाव को धारण करनेवालें हैं, तथापि जो जीव उनकी सेवा करता है, वह स्वर्ग एवं मोक्षसुख को प्राप्त होता है और उनकी निन्दा करनेवाला नरक-निगोद के दु:खों को प्राप्त करता है क्योंकि जीवों के सुख-दु:ख की उत्पत्ति अपने ही परिणामों से होती है। जैसे, अग्नि इच्छारहित है, तथापि उसके सेवन से शीत का निवारण होता है; उसी प्रकार जिनदेव, इच्छारहित वीतराग हैं, तथापि उनके अर्चन-सेवन से स्वयमेव सुखोपलब्धि होती है और उनके अविनय से दु:खोपलब्धि होती है।

हे पुत्री! इस संसार में दृष्टिगोचर समस्त दु:ख, पाप के ही फल हैं और समस्त सुख, धर्म का ही फल है। पूर्व पुण्योदय के फलस्वरूप तू राजा की पटरानी हुई है, महासम्पत्ति एवं अद्भुत कार्यक्षमता से युक्त पुत्र रत्न की प्राप्ति तुझे पूर्व पुण्योदय से हुई है, अत: इस अवसर में तुझे वह कार्य करना चाहिए, जिससे तुझे सुख प्राप्त हो। मेरे इन वचनों को सुनकर तू शीघ्र आत्मकल्याणार्थ तत्पर हो जा! हे भव्य! आँख होते हुए भी कुएँ में गिरने सदृश कार्य तेरे लिए शोभास्पद नहीं कहा जा सकता।

यदि इस अवसर में भी तूने ऐसे घृणास्पद कार्य का परित्याग नहीं किया तो तुझे नरक-निगोद में दु:ख सहन करने पड़ेंगे।

इस प्रकार आर्यिकाश्री के उपदेश से रानी कनकोदरी, नरक के दु:खों से भयभीत हुई और उसने सम्यग्दर्शनसहित श्रावक के व्रत अङ्गीकार कर लिये और श्री जिनेन्द्रदेव की प्रतिमा को अत्यन्त बहुमानपूर्वक श्री जिनमन्दिर में वापिस विराजमान करवाया तथा

महा उत्सवपूर्वक भगवान की पूजा का भव्य आयोजन किया। इस प्रकार सर्वज्ञदेव प्रणीत धर्म की आराधना करके वह पटरानी कनकोदरी स्वर्ग में गयी और स्वर्ग से चयकर राजा महेन्द्र की पुत्री तू अञ्जना हुई है।

श्री मुनिराज कहते हैं – 'हे पुत्री! तूने पूर्व पुण्योदय के कारण राजकुल में जन्म लिया और उत्तम वर को प्राप्त किया है, किन्तु तुमने जिनप्रतिमा को मन्दिर से बाहर निकाल दिया था, उसकी के फलस्वरूप तुम्हें पति वियोग एवं कुटुम्बीजनों द्वारा किया गया तिरस्कार सहना पड़ा।

विवाह के तीन दिन पूर्व पवनञ्जय, अपने मित्र प्रहस्त के साथ गुप्तरूप से तुम्हारे महल के झरोखे पर आकर बैठे थे, उसी समय मिश्रकेशी सखी द्वारा की गयी विद्युतप्रभ की प्रशंसा एवं पवनञ्जय की निन्दा उन्होंने सुन ली थी – इसी कारण पवनकुमार को तुम्हारे प्रति द्वेष हो गया था। तत्पश्चात् युद्ध में प्रस्थान करते समय उन्होंने जब मानसरोवर पर पड़ाव डाला, तब वहाँ एक चकवी को विरहताप से सन्तप्त देखकर, उनका हृदय करुणा से भीग गया और वही करुणा सखीरूप होकर उन्हें तुम्हारे महल तक ले आयी – इस प्रकार तुम्हें गर्भ रहा और राजकुमार ने गुप्तरूप से ही वापस युद्ध हेतु प्रस्थान कर दिया।'

मुनिराज के श्रीमुख से अञ्जना सुन्दरी के लिए सहज ही करुणापूर्ण वचन प्रस्फुटित होने लगे – 'हे बालिके! पूर्व भव में तुमने जिनप्रतिमा का अविनय किया था, वही कारण है कि तुम्हारी पवित्रता को भी कलङ्क का सामना करना पड़ा। पूर्व पापों के

फलस्वरूप ही ऐसे घोर दु:ख को प्राप्त हुई हो, अत: अब कभी इस तरह के निन्द्य कार्य मत करना। अब तो तुम अपने चित्त को संसार-सागर के तारणहार श्री जिनेन्द्रदेव की भक्ति में ही लगाओ, कारण कि जिनेन्द्र भक्ति के फलस्वरूप सर्व दु:खों का सहज ही अभाव हो जाता है।'

इस प्रकार मुनिराज के श्रीमुख से अपने पूर्वभव का वृतान्त श्रवण कर अञ्जना सुन्दरी को बहुत दु:ख हुआ, अत: वह अपने द्वारा किये गऐ पापाचरण की निन्दा करती हुई, बारम्बार पश्चाताप करने लगी।

अञ्जना के अन्तर्द्वन्द से परिचित मुनिराज उससे कहने लगे – 'हे पुत्री! तू शान्त होकर निज शक्ति अनुसार जिनधर्म का सेवन कर। परमभक्तिपूर्वक श्री जिनेन्द्रदेव एवं अन्य सन्त धर्मात्माओं की सेवा कर-उपासना कर। तेरे द्वारा पूर्व काल में किए गये अधोकर्म का फल यद्यपि तुझे अधोगति की प्राप्ति के रूप में प्राप्त होता, परन्तु समयश्री आर्यिका ने धर्मदशारूपी हस्तावलम्बन प्रदान कर तुझे कुगति-गमन से बचा लिया। कुछ ही दिनों पश्चात् तुम्हें परमसुख प्राप्त होगा। तेरा पुत्र, देवों से भी जीता न जा सके – ऐसा पराक्रमी होगा और कुछ ही दिनों पश्चात् तुम्हें अपने पति का संयोग प्राप्त होगा। अत: हे भव्य! तू अपने चित्त के क्षोभ का परित्याग कर और प्रमादरहित होकर, धर्मकार्य में तत्पर बन।'

मुनिश्री के अमृतमयी वचनों को सुनकर दोनों सखियों को महान हर्ष हुआ, उनके नेत्र आनन्दाश्रु बरसाने लगे।

'अहो! इस घनघोर वन में आप धर्मपिता हमें प्राप्त हुए, आपके

दर्शन से हमारे दु:ख दूर हुए, हे प्रभो! आप ही परमशरणभूत हैं।'

इस प्रकार महाविनयपूर्वक स्तुति करती हुई दोनों सखियाँ बारम्बार मुनिवर के चरणों में नमन करने लगीं। मुनिश्री भी उन्हें धर्मामृत पान कराकर आकाशमार्ग से गमन कर गये।

अञ्जना अपने पूर्वभव के प्रसङ्गों से परिचित होकर पाप से भयभीत होती हुई, धर्म में तत्पर हो गयी। 'मुनिराज के निवास से यह गुफा पावन हुई है।' – ऐसा विचार कर दोनों सखियाँ वहीं रहने लगीं एवं पुत्र-जन्म का इन्तजार करने लगीं।

इस प्रकार सखीसहित गुफा में निवास कर रही अञ्जना सती, धर्म के चिन्तवन, वैराग्य-भावनाओं के मनन एवं देव-गुरु -धर्म की भक्तिपूर्वक समय व्यतीत करने लगी तथा बसन्तमाला, विद्याबल से खान-पानादि की समुचित व्यवस्था करती रही।

उसी गुफा में श्री मुनि -सुव्रतनाथ की प्रतिमा थी, अत: दोनों सखियाँ भक्तिपूर्वक उत्तम द्रव्यों से जिनदेव की पूजन करतीं, साथ ही बसन्त -माला सदा अनेक प्रकार के विनोद से अञ्जना को प्रसन्न रखने का प्रयत्न करती।

बस! एकमात्र यही चिन्ता दोनों के अन्त:स्थल में थी कि प्रसूति सुखपूर्वक सम्पन्न हो जाए।

✦ ✦ ✦

दिन अस्त हुआ, सांझ का लाल रङ्ग ऐसा छा गया मानो, अभी क्रोध से युक्त सिंह आयेगा और थोड़ी ही देर में उपसर्ग होगा – ऐसी सूचना देती हुई अन्धियारी रात्रि भी आ पहुँची। भययुक्त पशु-पक्षी शान्त हो गये, कभी-कभी अचानक सियारों की चीखें सुनायी देतीं, मानो आनेवाले उपसर्ग के ढोल बज रहे हों।

— ऐसी अन्धियारी रात्रि में वे दोनों सखियाँ उस गुफा में बैठी वार्तालाप कर रहीं थीं कि तभी भयङ्कर गर्जना करता हुआ एक सिंह गुफा द्वार पर आ पहुँचा। उसकी गर्जना से सारी गुफा तो ऐसे गूँज उठी मानो भयाक्रान्त पर्वत ही रुदन कर रहा हो।

सिंह की भयानक गर्जना सुनकर अञ्जना ने प्रतिज्ञा की कि इस उपसर्ग में मेरा अनशन व्रत है। सखी बसन्तमाला, अञ्जना की रक्षा करने के लिए अत्यन्त व्याकुलतापूर्वक हाथ में तलवार लेकर आस-पास घूमने लगी, दोनों सखियाँ भयाक्रान्त हो गयीं।

तभी उस गुफा में निवास कर रहे मणिचूलनामक गन्धर्वदेव की रत्नचूला नामक स्त्री ने उससे कहा – 'हे देव! देखो! ये दोनों स्त्रियाँ सिंह के भय से अत्यन्त विह्वल हो रही हैं, ये दोनों धर्मात्मा हैं; अत: इनकी रक्षा करना आपका कर्तव्य हैं।'

गन्धर्वदेव का हृदय भी दया से द्रवित हो गया, अत: उसने शीघ्र ही विक्रिया द्वारा अष्टापद का रूप धारण कर लिया। तत्पश्चात् सिंह और अष्टापद के युद्ध की भयङ्कर गर्जना चहुँओर फैलने लगी।

इधर गुफा में अञ्जना तो जिनदेव के ध्यान में निमग्न थी और बसन्तमाला सारस की भाँति इस तरह विलाप कर रही थी – 'हाय अञ्जना! पहले तो पति-वियोग से तू दु:खी हुई, किसी प्रकार

पति समागम का सुख प्राप्त हुआ और गर्भ रहा तो सास ने बिना विचारे तुझ पर मिथ्या कलङ्क लगाकर घर से निष्कासित कर दिया। माता-पिता ने भी आश्रय देने से इन्कार कर दिया। इस महाभयङ्कर वन में शरण प्राप्त की, यहाँ महान पुण्योदय से मुनिराज के दर्शन प्राप्त हुए, मुनिवर ने पूर्वभव बताकर धैर्य बँधाया, धर्मामृत पान कराया एवं गमन कर गये। प्रसूति के लिए तू इस गुफा में आयी तो अब यह सिंह भक्षण करने के लिए तैयार खड़ा है। हाय! हाय!! यह राजपुत्री निर्जनवन में मरण को प्राप्त हो रही है। अरे! इस वन के देवताओं! दया करके इसकी रक्षा करो।

अरे! मुनिराज ने तो कहा था कि अञ्जना, अब तेरे सर्व दु:ख दूर होंगे, तब ये मुनि के वचन अन्यथा किस प्रकार हो सकते है?'

इस प्रकार विलाप करती हुई बसन्तमाला झूले की तरह कभी अञ्जना के पास जाती तो कभी गुफा द्वार पर आती।

इधर गुफा से बाहर अष्टापदरूपधारी गन्धर्वदेव ने अपने पञ्जों के प्रहार से सिंह को घायल करके भगा दिया और स्वयं अपने स्थान पर चला गया। इस प्रकार एक ही क्षण में सिंह एवं अष्टापद दोनों ही विलीन हो गये।

सिंह और अष्टापद के युद्ध का स्वप्नवत् विचित्र चरित्र देखकर बसन्तमाला को बहुत आश्चर्य हुआ। उपसर्ग दूर हुआ जानकर वह गुफा में अञ्जनासुन्दरी के समीप आयी और अत्यन्त कोमल हाथ फैरते हुए उसे आश्वासन प्रदान करने लगी। मानो उसका नया जन्म हुआ हो – इस प्रकार हितकारक वार्ता करने लगी।

गुफा में ही बैठी हुई कभी तो वे धर्मकथा करतीं तो कभी भगवान की भक्ति करतीं; कभी मुनिराज को याद करतीं तो कभी याद करती कुटुम्बीजनों के बर्ताव को – इस प्रकार अर्धरात्रि व्यतीत हो गयी...।

तभी अचानक उनके कान में सङ्गीत का अत्यन्त मधुर स्वर सुनाई देने लगा। ऐसी मध्यरात्रि में सुनसान गुफा में जिनेन्द्रभक्ति की मधुर झंकार को सुनकर दोनों का आश्चर्यचकित होना स्वाभाविक ही था। वे दोनों एकाग्रचित्त से उस मधुर भक्तिरस का पान करने लगीं।

जैसे गरुड़, सर्प को भगा देता है; इसी प्रकार अष्टापद रूपधारी गन्धर्वदेव सिंह को भगाकर रात्रि के शान्त वातावरण में आनन्दपूर्वक वीणा बजाकर श्री जिनेन्द्रदेव का गुणगान कर रहा था। गन्धर्वदेव, गान विद्या में प्रसिद्ध होते हैं, राग के उनपचास स्थानों में वे भी प्रवीण होते हैं।

गन्धर्वदेव द्वारा की गयी भगवान की स्तुति का सार इस प्रकार है —

'मैं सर्वज्ञ परमात्मा श्री अरिहन्तदेव को अत्यन्त भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ। जो देवों के द्वारा भी पूज्य हैं – ऐसे देवाधिदेव श्री मुनिसुव्रतनाथ के चरणयुगल में अत्यन्त भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ। हे भगवान! आप त्रिभुवन में श्रेष्ठ मुक्तिमार्ग के नेता हैं। आपके चरणों के नख की प्रभा से इन्द्र के मुकुट के रत्न प्रकाशित होते हैं। हे सर्वज्ञदेव! आप ही जीवों को परम शरणभूत हैं।'

इस प्रकार जिनेन्द्रप्रभु की अद्‌भुत भक्ति सुनकर दोनों

सखियों का हृदय अत्यन्त प्रसन्न हुआ। अपूर्व राग सुनने के कारण उन्हें विस्मय भी हुआ। गीत की प्रशंसा करती हुई वे कहने लगीं – 'धन्य है, यह गीत; लगता है, जिनेन्द्रदेव के किसी अनन्य भक्त ने यह गीत गाया है, जिसे सुनकर हमारा हृदय रोमाञ्चित हो गया है।'

बसन्तमाला अञ्जना से कहने लगी – 'हे सखी! अवश्य ही यहाँ किसी दयावान देव का निवास है, जिसने पहले तो अष्टापद का रूप धारणकर सिंह को भगाकर आपकी रक्षा की और फिर आपके आनन्द के लिए यह मनोहर गीत गाया है।

हे देवी! हे शीलवती!! तुम्हारी तो सभी रक्षा करते हैं। शीलवन्त धर्मात्माओं के तो भयङ्कर वन में देव भी मित्र बन जाते हैं – इस उपसर्ग के निवारण से यह स्पष्ट विदित होता है। शीघ्र ही तुम्हें अपने पति का समागम प्राप्त होगा और महापराक्रमी पुत्ररत्न प्राप्त होगा क्योंकि मुनिराज के वचन कदापि अन्यथा नहीं हो सकते।'

इस प्रकार चर्चा-वार्ता से दोनों ने रात्रि व्यतीत की। प्रात:काल होने पर दोनों सखियों ने उठकर सर्व प्रथम गुफा में विराजमान श्री मुनिसुव्रतनाथ के जिनबिम्ब की अतिशय भक्तिपूर्वक पूजा -वन्दना की, तत्पश्चात् अञ्जना के चित्त को प्रसन्न करती हुई बसन्तमाला कहने लगी —

'हे देवी! देखो तो तुम्हारे यहाँ आने से पर्वत एवं वन भी हर्षित हो उठे हैं – यही कारण है कि झरनों के कल-कल नाद से वे भी मुस्कुरा रहे हैं, वन के वृक्ष नम्रीभूत होकर अपने फल मानों तुम्हें

ही समर्पित कर रहे हैं। मोर, तोता एवं मैना मानों सुन्दर स्वर में तुम्हारा ही अभिनन्दन कर रहे हैं।

अत: हे कल्याणरूपिणी! हे पुण्यवन्ती! तुम चिन्ता का परित्याग कर प्रसन्न रहो। यहाँ अपने को किसी भी प्रकार से भयभीत नहीं होना चाहिए। देव भी तुम्हारी सेवार्थ तत्पर हैं। तुम्हारा शरीर निष्पाप है, तुम्हारा शील निर्दोष है – यही कारण है कि ये पक्षी भी तुम्हारी प्रशंसा कर रहे हैं। तुम्हारे यहाँ निवास से सारा ही वन प्रफुल्लित हो उठा है। देखो! देखो!! स्वयं सूर्य भी तुम्हारे दर्शनों के लिए उदित हो रहा है।'

बसन्तमाला की प्रसन्नतावर्धक वार्ता का श्रवण कर अञ्जना कहने लगी – 'हे सखी! जब तू मेरे साथ है तो सारा कुटुम्ब ही मेरे साथ है, तेरे प्रसाद से तो यह वन भी मेरे लिए नगर समान है। सच्चा बन्धु तो वही है, जो सङ्कटकालीन परिस्थिति में सहायता करे। दु:ख दातार, बन्धु नहीं हो सकता। हे सखी! इस सङ्कटकालीन समय में तेरे सामीप्य से मेरा सर्व दु:ख विस्मृत हो गया है।'

इस प्रकार प्रेमपूर्वक वार्तालाप करती हुई वे दोनों सखियाँ उस गुफा में निवास कर रही थीं। दोनों मुनिसुव्रतनाथ प्रभु की प्रतिदिन पूजा-अर्चना करतीं और बसन्तमाला विद्याबल से खान-पान की सब सामग्री एकत्रित कर विधिपूर्वक भोजन बनाती थी। गुफावासी गन्धर्वदेव उनकी हर प्रकार से रक्षा करता था और बारम्बार विविध रागों से जिनदेव की स्तुतियाँ सुनाता था; इतना ही नहीं, वनवासी हिरणादि पशु भी उन दोनों सखियों से हिल-मिल गये थे।

इस प्रकार दोनों का समय व्यतीत हो रहा था।

✦ ✦ ✦

(6)

हनुमान का जन्म —

इसी प्रकार कितने ही दिन व्यतीत हो गये। अञ्जना के प्रसूति का समय निकट था, अत: वह अपनी सखी से कहने लगी – 'हे सखी! मैं कुछ व्याकुलता अनुभव कर रही हूँ।'

उसकी बात सुनकर बसन्तमाला ने कहा – 'हे देवी! तुम्हारे प्रसूति का समय निकट है, अत: तुम चिन्ताओं का परित्याग कर आनन्दित होओ' – ऐसा कहकर उसने अञ्जना के लिए कोमल शैय्या का निर्माण कर दिया।

जैसे, पूर्व दिशा सूर्य को प्रगट करती है, उसी तरह अञ्जना ने सूर्यसम् तेजस्वी हनुमान को जन्म दिया। उसका जन्म होते ही गुफा में व्याप्त अन्धकार विलय हो गया और वहाँ प्रकाश का साम्राज्य हो गया। ऐसा लगता था मानो वह गुफा ही सुवर्ण -निर्मित हो।

अपने पुत्र को छाती से लगाकर दीनतापूर्ण स्वर में अञ्जना कहने लगी – 'हे पुत्र! इस गहन वन में तू उत्पन्न हुआ है, अत: मैं तेरा जन्मोत्सव किस प्रकार मनाऊँ? यदि तेरा जन्म तेरे दादा या नाना के यहाँ होता तो निश्चित ही उत्साहपूर्ण तेरा जन्मोत्सव मनाया जाता। अहो! तेरे मुखरूपी चन्द्र को देखकर कौन आनन्दित न होता? किन्तु मैं भाग्यहीन, सर्ववस्तु विहीन हूँ, अत: जन्मोत्सव का आयोजन करने में असमर्थ हूँ। हे पुत्र! अभी तो मैं तुझे यही आशीर्वाद देती हूँ कि तू दीर्घायु हो, कारण कि जीवों को अन्य वस्तुओं की प्राप्ति की अपेक्षा दीर्घायु होना दुर्लभ है।

हे पुत्र! यदि तू है तो मेरे पास सब कुछ है। इस महान गहन वन में भी मैं जीवित हूँ – यह भी तेरा ही पुण्य प्रताप है।'

अञ्जना के इन वचनों को सुनकर बसन्तमाला कहने लगी – 'हे देवी! तुम प्रसन्न होओ। तुम कल्याणमयी हो, तभी तो ऐसे महान पुत्ररत्न की प्राप्ति तुम्हें हुई है। तेरा पुत्र सुन्दर लक्षणों से सुशोभित है, यह महाऋद्धि का धारक होगा।'

मुनिराज का वह वचन याद करके कि 'यह पुत्र चरमशरीरी है' – इस पुत्र के जन्म से तो निश्चित् ही तेरी कोख पवित्र हो गयी है। यह बालक तेजस्वी है, इसके प्रभाव से सब अच्छा ही होगा, अत: तू व्यर्थ चिन्ता का परित्याग कर एवं पुत्र का अवलोकन करके आनन्दित हो।

देख! यह वन भी तेरे पुत्र का जन्मोत्सव मना रहा है। वृक्ष एवं पुष्प भी पुलकित होकर मुस्करा रहे हैं, बेलें हर्ष में डोल रही हैं, मयूर नृत्य एवं भँवरे मधुर गुँजार कर रहे हैं, हिरण भी वात्सल्य से तेरे पुत्र का अवलोकन कर रहे हैं – इस प्रकार तेरे पुत्र के जन्मोत्सव से तो सारा वन ही प्रफुल्लित हो गया है।'

दोनों सखियों में इस प्रकार परस्पर वार्तालाप चल ही रहा था कि तभी बसन्तमाला ने आकाशमार्ग से सूर्यसम तेजस्वी एक विमान आता हुआ देखा। इसकी सूचना उसने अपनी स्वामिनी अञ्जना को दी।

विमान दृष्टिगोचर होते ही अञ्जना भयभीत हो शङ्काशील हो गयी और जोर से पुकारने लगी – 'अरे! यह कोई शत्रु निष्कारण ही मेरे पुत्र का अपहरण करने आया है या कोई मेरा हितैषी है?'

अञ्जना की उक्त पुकार सुनकर विमान में विद्यमान विद्याधर को दया उत्पन्न हो गयी, अत: उसने अपने विमान को गुफा द्वार के समीप उतार दिया और विनयपूर्वक पत्नीसहित गुफा में प्रवेश किया।

निर्मल चित्तधारी विद्याधर को गुफा में प्रवेश करते देखकर बसन्तमाला ने उसका यथोचित आदर-सत्कार किया। कुछ देर तक तो विद्याधर मौनपूर्वक बैठा रहा, तत्पश्चात् गम्भीरवाणी में उसने बसन्तमाला से पूछा – 'हे बहिन! सुमर्यादाधारक यह स्त्री कौन है ? इसके पिता एवं पति का क्या परिचय है ? यह तो किसी बड़े घर की लगती है, फिर भी कुटुम्बीजनों से बिछुड़ कर इसके वन-निवास का क्या कारण है ? जगत् में राग-द्वेषरहित उत्तम जीवों के भी पूर्व कर्मोदय के फलानुसार बिना कारण जीव शत्रु बन जाते हैं। यह तो धर्मात्मा ज्ञात होती है, इस पर इस सङ्कट का कारण क्या है ?'

विद्याधर द्वारा स्नेहपूर्वक पूछे गये प्रश्नों के प्रत्युत्तरस्वरूप बसन्तमाला दु:ख से रुँधे हुए स्वर में कहने लगी – 'हे महानुभाव! आपके वचनों द्वारा ही आपके मन की पवित्रता ज्ञात हो रही है। जैसे दाह-नाशक चन्दन के वृक्ष की छाया भी प्रिय प्रतीत होती है, इसी तरह आप जैसे गुणवान पुरुषों की छाया भी हृदय के भाव प्रगट करने का स्थान है। आप जैसे महानुभाव के समक्ष दु:ख निरूपण करने से दु:ख निवृत्त हो जाता है, आप दु:ख-हर्त्ता हैं, कारण कि आपदाओं में सहायता करना तो सज्जनों का स्वभाव ही है। आपने हमारा दु:ख सुनने की अभिलाषा व्यक्त की है, अत: मैं सुनाती हूँ, आप ध्यानपूर्वक सुनिये —

इस स्त्री का नाम अञ्जना है, यह भूतल पर प्रसिद्ध महेन्द्र राजा की पुत्री है एवं राजा प्रहलाद के पुत्र पवनञ्जय इसके पति हैं।'

तत्पश्चात् बसन्तमाला ने पवनकुमार के अप्रिय प्रसङ्ग एवं युद्ध से वापस आना, सास द्वारा घर से निष्कासित करना इत्यादि सर्व प्रसङ्गों का ज्यों का त्यों वर्णन करते हुए कहा – 'हे महानुभाव! यह अञ्जना सर्व दोष परिमुक्त, सती, शीलवन्ती एवं निर्विकार है, धर्मात्मा है। यहाँ रहकर मैं भी इसकी सेवा करती हूँ, मैं इसकी आज्ञाकारिणी सेविका एवं विश्वासपात्र सखी हूँ, मुझ पर इसकी विशेष कृपादृष्टि है। आज ही गुफा में इसने बालक का जन्म दिया है। अनेक भयों से युक्त इस वन में कौन जाने किस तरह इसे सुख प्राप्त होगा? – हे राजन्! यह हमारे दु:ख का संक्षिप्त वृतान्त है; सम्पूर्ण दु:ख तो अकथनीय है।'

इस प्रकार अञ्जना के दु:खरूपी आताप से पिघलकर बसन्तमाला के हृदय में स्थित स्नेह, वचनों द्वारा अभिव्यक्त हो गया।

बसन्तमाला द्वारा कथित अञ्जना की करुण-कथा सुनकर विद्याधर राजा अत्यन्त स्नेहपूर्वक कहने लगा – 'हे भव्यात्मा! मैं हनुमत द्वीप का राजा प्रतिसूर्य हूँ और यह अञ्जना मेरी भानजी (बहिन की पुत्री) है। बहुत दिनों पश्चात् मैंने इसे देखा है, अत: पहिचान नहीं सका हूँ।'

— ऐसा कहकर राजा प्रतिसूर्य, अञ्जना के बाल्यावस्था का सम्पूर्ण वृतान्त गद्गद्वाणी से सुनाते हुए अश्रुपात करने लगे। अञ्जना भी उन्हें अपना मामा समझकर रुदन करने लगी। ऐसा लगता था, मानो आँसुओं के बहाने उसका सम्पूर्ण दु:ख ही बह

रहा हो। यह लौकिक रीति है कि दु:ख प्रसङ्ग में अपने हितैषी को देखते ही अनायास रोना आ जाता है। यही स्थिति उस समय उस गुफा में हो रही थी।

अञ्जना रुदन कर रही थी तो मामा-मामी एवं बसन्तमाला के नयन भी अश्रुओं की धारा बहा रहे थे। उन चारों के रुदन से गुफा इस तरह गूँज रही थी, मानो पर्वत एवं झरने भी रुदन कर रहे हों। रुदन की ध्वनि से सारा वन गूँज उठा था। ऐसा लगता था, मानो सारा वन रुदन कर रहा हो और तो और वनवासी हिरणादि पशु भी उनके रुदन में शामिल हो गये थे।

कुछ देर पश्चात् राजा प्रतिसूर्य शान्त हुए और उन्होंने अञ्जना को भी शान्त किया, उस समय वन भी शान्त हो गया, मानो वह भी उनकी वार्ता सुनने को उत्साहित हो।

सर्व प्रथम तो अञ्जना, प्रतिसूर्य की रानी, अर्थात् अपनी मामी के साथ बातचीत करने लगी। महापुरुषों की यही विशेषता है कि वे दु:ख में भी अपने कर्तव्य से चलित नहीं होते।

तत्पश्चात् अञ्जना अपने मामा से कहने लगी – 'हे पूज्य! आप इस पुत्र का सम्पूर्ण वृतान्त ज्योतिषियों से पूछें।'

तब अपने साथ समागत ज्योतिषी से राजा ने वृतान्त जानने की इच्छा जाहिर की तो उसके उत्तर में ज्योतिषी कहने लगा – 'इस बालक का जन्म समय क्या है – यह बताओ?'

'आज ही अर्द्धरात्रि व्यतीत होने के पश्चात् इसका जन्म हुआ है' – बसन्तमाला ने कहा।

तब लग्न स्थापित कर एवं बालक के शुभलक्षणों को

पहिचानकर ज्योतिषी ने कहा – 'यह बालक तो तद्भव मोक्षगामी है। यह इसका अन्तिम जन्म है, अर्थात् दूसरा जन्म यह धारण नहीं करेगा। इसकी जन्म तिथि फाल्गुन कृष्णा अष्टमी तथा नक्षत्र श्रावण है और सूर्य-चन्दादि समस्त गृह उत्तम स्थानों में सुस्थित हैं, बलवान है, ब्रह्मयोग है तथा शुभमुहूर्त है; अतः निश्चित ही यह बालक अद्भुत राज्य प्राप्त करेगा, साथ ही मुक्तिप्रदाता योगीन्द्रपद भी प्राप्त करेगा – इस प्रकार राजेन्द्र एवं योगीन्द्र दोनों पद प्राप्त कर अविनाशी सुख को प्राप्त करेगा।'

ज्योतिषी की बात सुनकर सबको अत्यन्त हर्ष हुआ।

कुछ देर पश्चात् राजा प्रतिसूर्य ने अञ्जना से कहा – 'हे पुत्री! चलो, अब हम सब अपने राज्य हनुमत द्वीप के लिए प्रस्थान करते हैं। वहाँ पहुँच कर इस पुत्र के जन्मोत्सव का विशाल आयोजन करना है।'

अञ्जना ने राजन् के कथन को स्वीकार कर सर्व प्रथम गुफा में विराजमान भगवान जिनेन्द्र की भावपूर्ण वन्दना की, पश्चात् पुत्र को गोद में लिया, तत्पश्चात् गुफा के अधिपति गन्धर्वदेव से क्षमायाचना कर प्रतिसूर्य के परिवार के साथ गुफा द्वार से बाहर निकल आई और विमान के समीप पहुँचकर खड़ी हो गयी, उसे जाते देखकर मानो सम्पूर्ण वन ही उदास हो गया, वन के पशु हिरणादि भी भीगी पलकों से विदा करते हुए टुकुर-टुकुर उसे निहारने लगे... गुफा, वन एवं पशुओं पर एक बार स्नेहभरी दृष्टि डालकर सखीसहित अञ्जना विमान में बैठ गयी।

✦ ✦ ✦

विमान आकाशमार्ग में जा रहा था। अञ्जना सुन्दरी की गोद में बालक खेल रहा है, सभी विनोद कर रहे हैं कि तभी अचानक कौतूहल से हँसते-हँसते, वह बालक माता की गोद से उछलकर नीचे पर्वत पर जा गिरा। बालक के गिरते ही उसकी माता (अञ्जना) हाहाकार करने लगी। राजा प्रतिसूर्य ने तत्काल विमान को पृथ्वी पर उतार दिया।

अञ्जना के दीनतापूर्वक विलाप के स्वर सुनकर जानवरों के हृदय भी करुणा से द्रवित हो उठे – 'हे पुत्र! यह क्या हुआ? अरे! यह भाग्य का खेल भी कितना निराला है, पहले तो मुझे रत्नों से परिपूर्ण निधान बताया और पश्चात् मेरे रत्न का ही हरण कर लिया। हा! कुटुम्ब के वियोग से व्याकुलित मुझ दुखिया का यह पुत्र ही तो एकमात्र सहारा था, यह भी मेरे पूर्वोपार्जित कर्मों ने मुझसे छीन लिया। हाय पुत्र! तेरे बिना अब मैं क्या करूँगी?'

इस प्रकार इधर तो अञ्जना विलाप कर रही थी और उधर पुत्र हनुमान जिस पत्थर की शिला पर गिरा था, उस पत्थर के हजारों टुकड़े हो गये थे, जिसकी भयङ्कर आवाज को सुनकर राजा प्रतिसूर्य ने वहाँ जाकर देखा तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

क्या देखा उन्होंने? उन्होंने देखा कि बालक तो एक शिला पर

आनन्द से मुँह में अपना अगूँठा लेकर स्वत: ही क्रीड़ा कर रहा है, मुख पर मुस्कान की रेखा स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रही है, अकेला पड़ा-पड़ा शोभित हो रहा है। अरे! जो कामदेव पद का धारक है, उसके शरीर की उपमा किससे दी जावे, उसका शरीर तो सुन्दरता में अनुपम होगा ही।

दूर से ही बालक की ऐसी दशा देखकर राजा प्रतिसूर्य को अपूर्व आनन्द हुआ। जिसने अपने प्रताप से पर्वत के खण्ड-खण्ड कर दिये, जिसका आत्मा धर्म से युक्त है और जिसका शरीर तेजस्वी है – ऐसे निर्दोष बालक को आनन्द से क्रीड़ा करते हुए देखकर अञ्जना को भी अपूर्व आनन्द हुआ। उसने अत्यन्त स्नेहपूर्वक उसके सिर का चुम्बन किया और छाती से लगा लिया।

इस आश्चर्यकारी दृश्य से हर्षित हो राजा प्रतिसूर्य, अञ्जना से कहने लगे – 'हे पुत्री! तुम्हारा यह पुत्र उत्तम संस्थान एवं उत्तम संहनन का धारक है, वज्रकाय है, तभी तो इसके गिरने से पर्वत के खण्ड-खण्ड हो गये हैं। जब बाल्यवस्था में ही इसकी शक्ति देवों से अधिक है, तब यौवनावस्था में इसका पराक्रम कितना होगा? अब, यह तो निश्चित् ही है कि यह जीव चरमशरीरी है, तद्भव मोक्षगामी है, पुन: देह धारण का कलंक इसको नहीं लगेगा, यह तो इसी भव में अशरीरी सिद्ध पद प्राप्त करेगा।'

इतना कहकर राजा प्रतिसूर्य ने अपनी पत्नीसहित बालक की तीन प्रदक्षिणा की तथा हाथ जोड़कर सिर झुकाकर नमस्कार किया। तत्पश्चात् पुत्रसहित अञ्जना को अपने विमान में बैठाकर अपने नगर की ओर प्रस्थान किया।

✦ ✦ ✦

राजा के शुभागमन के शुभ समाचारों को सुनकर प्रजाजनों ने नगर का शृङ्गार किया और राजासहित सभी का भव्य स्वागत किया। अत्यन्त उत्साहपूर्ण वातावरण में पुत्रसहित अञ्जना एवं राजा प्रतिसूर्य ने नगर में प्रवेश किया। दशों दिशाओं में वादित्र के नाद से उन विद्याधरों ने पुत्र जन्म का भव्य महोत्सव मनाया। जैसा उत्सव स्वर्गलोक में इन्द्र जन्म का होता है, उससे किसी भी तरह यह उत्सव कम नहीं था।

पर्वत में (गुफा में) जन्म हुआ और विमान से गिरने पर पर्वत खण्ड-खण्ड हो गया, अत: उस बालक की माता एवं मामा ने उसका नाम 'शैलकुमार' रखा तथा हनुमत द्वीप में उसका जन्मोत्सव आयोजित होने के कारण जगत् में वह 'हनुमान' नाम से विख्यात हुआ।

इस प्रकार शैल अथवा हनुमानकुमार, हनुमत द्वीप में रहते थे, देव सदृश प्रभा के धारी उन हनुमानकुमार की चेष्टाएँ सभी के लिए आनन्ददायिनी बनी हुई थीं।

राजा श्रेणिक को सम्बोधित करते हुए श्री गौतमस्वामी कहते हैं – 'हे श्रेणिक! प्राणियों के पूर्वोपार्जित पुण्य के फलस्वरूप पर्वतों का भेदक महाकठोर वज्र भी पुष्प के समान कोमलरूप परिणमित हो जाता है। महा आतापकारक अग्नि भी चन्द्र-किरण सदृश शीतल बन जाती है, इसी तरह तीक्ष्ण धारयुक्त तलवार भी मनोहर कोमल लता सदृश हो जाती है – ऐसा जानकर जो जीव विवेकी हैं, वे पाप से विरक्त हो जाते हैं। हे जीवों! इस बात को श्रवण करके तुम भी जिनराज के पवित्र चरित्र के अनुरागी बनो।'

कैसा है जिनराज का चरित्र ? 'मोक्षसुख देने में चतुर है।'

यह सारा जगत् ही मोह के कारण जन्म-जरा एवं मरण के दु:खों से अत्यन्त तप्तायमान है, उन दु:खों से छुड़ाकर परम सुख प्रदान करने में समर्थ – ऐसे श्री जिनेन्द्र भगवान के वीतरागी चरित्र का अनुसरण करो।

✦ ✦ ✦

(8)

गौतमस्वामी राजा श्रेणिक से कहते हैं – 'हे मगधाधिपति! यह तो मैंने श्री हनुमान के जन्म का वृतान्त कहा। अब हनुमान के पिता पवनञ्जय का वृतान्त सुनो —

पवनकुमार की व्यथा —

अञ्जनासुन्दरी से विदा प्राप्त कर पवनञ्जय शीघ्र ही विमान से महाराज रावण के समीप पहुँचे और उनकी आज्ञानुसार उन्होंने राजा वरुण से युद्ध कर, खरदूषण को मुक्त कराया एवं राजा वरुण को बन्दी बनाकर महाराज रावण के समक्ष प्रस्तुत किया।

पवनकुमार की अद्भुत शूरवीरता से महाराज रावण को अत्यन्त हर्ष हुआ। तत्पश्चात् महाराज रावण से विदा प्राप्त कर कुमार पवनञ्जय ने अञ्जना के स्नेह के वशीभूत होकर शीघ्र ही अपने राज्य की तरफ प्रस्थान कर दिया।

जब राजा प्रहलाद को विजयी कुमार के शुभागमन का समाचार प्राप्त हुआ तो उन्होंने नगर कर शृङ्गार करवाकर कुमार का स्वागत किया।

पवनकुमार ने भी राजमहल में पहुँचकर अपने माता-पिता

को सादर प्रणाम किया। किञ्चित समय राज्यसभा में बैठकर सबसे कुशल समाचार पूछे और तत्पश्चात् शीघ्र ही प्रहस्त मित्र के साथ अञ्जना के महल की तरफ प्रस्थान किया किन्तु... जैसे जीवविहीन शरीर शोभास्पद नहीं लगता, उसी तरह अञ्जनारहित, वह महल भी उन्हें मनोहर न लगा। इस कारण कुमार का मन अप्रसन्न हो गया और वह प्रहस्त से कहने लगा।

हे मित्र! यहाँ तो प्राणप्रिया अञ्जना कहीं दृष्टिगोचर नहीं हो रही, वह कहाँ होगी? उसके बिना तो यह महल एकदम सुनसान प्रतीत हो रहा है, अत: तुम जाकर ज्ञात करो कि वह कहाँ हैं?'

प्रहस्त ने वहाँ प्रियजनों से पूछकर कुँवर से कहा – 'हे मित्र! अञ्जना के चरित्र पर सन्देह करके राजमाता ने उन्हें महेन्द्रनगर भिजवा दिया है।'

प्रहस्त द्वारा कथित यह वृतान्त सुनते ही कुमार के मन में क्षोभ उत्पन्न हुआ, चित्त उदास हो गया; अत: माता-पिता से आज्ञा प्राप्त किये बिना ही उन्होंने अपने मित्र के साथ महेन्द्रनगर की तरफ प्रस्थान कर दिया।

महेन्द्रनगर ज्यों-ज्यों करीब आजा जा रहा था, त्यों-त्यों उनका मन प्रिया-मिलन की मधुर कल्पनाओं से आनन्दित हो रहा था।

प्रसन्नचित्त कुमार ने प्रहस्त से कहा – 'हे मित्र! देखो यहाँ अञ्जनासुन्दरी का निवास स्थान होने से यह नगर कैसा मनोहर ज्ञात हो रहा है। जैसे, कैलाशपर्वत पर स्थित जिनमन्दिर के शिखर शोभायमान हैं; इसी तरह यहाँ के महलों के शिखर भी शोभायमान

हो रहे हैं।' – इस तरह बातचीत करते हुए दोनों मित्र महेन्द्रनगर के समीप जा पहुँचे।

ज्यों ही पवनकुमार के शुभागमन का समाचार राजा महेन्द्र को ज्ञात हुआ तो उन्होंने उनका भव्य स्वागत कर नगर में प्रवेश करवाया।

महल में पधारकर कुमार कुछ समय राजा महेन्द्र के पास बैठे और पश्चात् महारानी को नमस्कार कर अञ्जना को देखने की अभिलाषा से उसके महल की तरफ प्रस्थान किया, परन्तु... वहाँ भी अञ्जना को न पाकर अत्यन्त विरहातुर होते हुए किसी बालिका से पूछा –

'बालिके! हमारी प्रिय अञ्जना कहाँ है?'

उत्तर देते हुए उसने कहा – 'हे देव! आपकी प्रिया यहाँ नहीं है, उसे तो महाराजश्री ने वनवास भेज दिया है।'

इस बात को सुनकर जैसे वज्रपात गिरा हो – ऐसे कुमार का हृदय चूर-चूर हो गया। जैसे कान में पिघला हुआ गर्म शीशा डाला गया हो – ऐसी उनकी दशा हो गयी, उनके होश खो गये; जीवरहित मृत शरीर जैसी उनकी दशा हो गयी, शोकाताप से उनका मुख एकदम कान्तिविहीन हो गया। इस प्रकार हतोत्साहित होकर कुमार ने शीघ्र ही महेन्द्रनगर का परित्याग कर दिया और अञ्जना की खोज हेतु सोचने लगे।

कुमार को अत्यन्त आतुर देखकर उनके मित्र प्रहस्त को भी बहुत दुःख हुआ। वह कहने लगा – 'हे मित्र! तुम खेद-खिन्न क्यों होते हो? धैर्य धारण कर अपने चित्त को निराकुल करो। यह पृथ्वी

है ही कितनी सी। अञ्जना, जहाँ भी होगी, हर सम्भव प्रयत्न करके हम उसे खोज लेंगे।

कुमार ने कहा – 'हे मित्र! तुम तो मेरे पिता के पास आदित्यपुर वापस जाओ और उन्हें सम्पूर्ण वृतान्त से अवगत कराकर कहना कि यदि मेरी प्रिया फिर से मुझे प्राप्त नहीं हुई तो मेरा जीवन भी असम्भव है। मैं स्वयं तो पृथ्वीतल पर चारों ओर उसकी खोज करूँगा ही, तुम भी योग्य व्यवस्था करो।'

कुमार की आज्ञानुसार प्रहस्त ने तो आदित्यपुर की तरफ प्रस्थान किया और इधर पवनकुमार अकेले ही अम्बरगोचर नामक हाथी पर चढ़कर अञ्जना की खोज हेतु पृथ्वी पर वन-जङ्गलों में चारों तरफ विचरण करने लगे। उनके मन में अनेक प्रकार की आशङ्काएँ उत्पन्न होने लगीं – 'अरे! यह कोमल शरीरवाली अञ्जना, शोक-सन्तप्त हो कहाँ गयी होगी? जिसके हृदय में सदैव ही मेरा ध्यान रहता था, वह विरहताप से तप्त हो सघन वन में किस तरफ गयी होगी? वह सत्यवादी, निष्कपट, धर्मधारक और गर्भ के भारसहित कदाचित् बसन्तमाला से बिछुड़ गयी होगी तो? कहीं वह पतिव्रता श्राविका राजकुमारी शोक के कारण अन्धी तो नहीं हो गयी? अथवा विकट वन में परिभ्रमण करते हुए भूखी-प्यासी कहीं अजगरों के स्थल गहन कुएँ में तो नहीं गिर गयी? अथवा दुष्ट पशुओं की भयङ्कर गर्जना से भयभीत हो, उस निर्दोष गर्भवती के प्राण तो नहीं छूट गये होंगे?'

इस प्रकार चिन्तामग्न पवनकुमार, वन में इधर-उधर भटकते हुए अञ्जना की शोध में तत्पर थे। उनके मन में नाना प्रकार के

सङ्कल्प-विकल्प की तरङ्गें तरङ्गित हो रही थी। वे विचार रहे थे – 'कही मुझे प्राणों से भी अधिक प्यारी अञ्जना इस घोर वन में पानी के बिना कण्ठ सूखने से प्राणरहित तो नहीं हो गयी? कदाचित् गंगा नदी पार करते समय वह भोली राजबाला बह तो नहीं गयी? ऐसा भी हो सकता है कि अनेक कंकड़-काँटों से उसके कोमल पैर बिंध गये हों और उसमें एक कदम चलने की शक्ति भी न रही हो? कौन जाने क्या दशा हुई होगी? कदाचित् महादु:ख के कारण गर्भपात हो गया हो और जिनधर्म भक्त वह सती अत्यन्त विरक्त भाव से आर्यिका ही बन गयी हो?'

इस प्रकार मन में प्रवर्तित अनेक प्रकार के अन्तर्द्वन्द्वों सहित परिभ्रमण करते-करते पवनकुमार उसी गुफा के समीप पहुँचे, जहाँ पहले अञ्जना का निवास था। गुफा में प्रवेश करते ही पवनकुमार ने देखा कि वहाँ भगवान मुनिसुव्रतनाथ की प्रतिमा विराजमान है। जिनबिम्ब को देखते ही कुमार को विस्मय हुआ, वह भक्तिपूर्वक जिनदेव की वन्दना कर स्तुति करने लगा – 'हे वीतराग जिनेन्द्रदेव! आपके चरण-कमल में मेरा सादर प्रणाम है। हे नाथ! आप पूर्ण सुखी हैं, आप ही जगत् के जीवों को शरणभूत हैं। हे सर्वज्ञपिता! इस जगत में संयोग-वियोग से आकुलित जीव अपने हृदय में आपका ध्यान धारण कर शान्तिलाभ प्राप्त करते हैं।'

इस प्रकार स्तुति कर वह गुफा में बैठकर भगवान का ध्यान करने लगा। कुछ देर पश्चात् गुफा से बाहर आकर पवनकुमार विचार करने लगा – 'इस गुफा में यह प्रतिमा कहाँ से आई? किसने इस गुफा में इसकी स्थापना की? कहीं अञ्जना तो यहाँ नहीं रहती थी? अवश्य ही वह यहाँ रही होगी। वह तो जिनेन्द्रदेव

की परमभक्त है, अवश्य ही दर्शन-पूजनार्थ, यह प्रतिमा उसने यहाँ स्थापित करायी होगी। अहो! कैसा भी सङ्कट काल हो, जिनेन्द्रदेव का विस्मरण धर्मात्मा जीव कैसे कर सकता है ?'

इस प्रकार विचारकर कुमार उस गुफा में तथा वहीं आस-पास अञ्जना को खोजने लगे... खूब जोर-जोर से उसके नाम से पुकारने लगे, किन्तु कहीं भी अञ्जना का पता न लगा।

पर्वत और वन-जङ्गल में घूम-घूमकर पवनकुमार ने खोज की परन्तु कहीं भी अपनी प्राणप्रिया को नहीं खोज पाये, अत: वे अत्यन्त निराश हो गये। उस समय उन्हें सबकुछ शून्य प्रतीत हो रहा था, अत: उन्होंने प्राणोत्सर्ग का निर्णय कर लिया।

अञ्जना के बिना उनका मन न तो पर्वत पर लगता था और न गुफा में और न मनोहर वृक्ष और नदी के किनारे ही।

वे मोह से आच्छादित हो, विवेक-विहीन हो, वृक्षों से भी अञ्जना के विषय में पूछने लगे – 'हे वृक्ष! तूने कहीं मेरी प्रिया को देखा है ?'

पर्वत से पूछते हैं – 'अरे पर्वत! क्या तुमने अपनी किसी गुफा में अञ्जना को शरण प्रदान की है ?'

इस प्रकार भ्रमण करते हुए वे भूतरुवर वन में पहुँचे और वहाँ पहुँचते ही हाथी से उतर पड़े।

जिस तरह मुनिजन आत्मा का ध्यान करते हैं, इसी तरह वे भी अपनी प्रिया का ध्यान करने लगे। हथियारादि सब सामग्री जमीन पर डाल दी और हाथी से कहने लगे – 'हे गजराज! अब तुम स्वच्छन्दतापूर्वक इस वन में भ्रमण करो।'

किन्तु हाथी ने उनकी बात पर ध्यान नहीं दिया और वह वहीं विनयपूर्वक खड़ा हो गया। उसे सम्बोधित करते हुए कुमार फिर कहने लगे – 'हे गजेन्द्र! इस नदी के किनारे विशाल वन है, तुम वहीं घास का सेवन करो और वन में स्थित हाथियों के समूह के नायक होकर यत्र-तत्र-सर्वत्र विचरण करो, अब तुम स्वतन्त्र हो।' लेकिन वह हाथी तो कृतज्ञ था, स्वामीभक्त था, अत: जैसे सच्चा भ्राता कभी भी अपने भाई का सङ्ग नहीं छोड़ता; उसी प्रकार उस हाथी ने कुमार के सङ्ग का त्याग नहीं किया, वह भी उदासचित्त हो कुमार के समीप ही निवास करने लगा।

पवञ्जयकुमार अत्यन्त शोक-सन्तप्त हो रहे है, उनका चित्त एकमात्र अञ्जनासुन्दरी के ही चिन्तवन में लगा हुआ है। वे सोच रहे हैं – 'यदि मेरी प्राणप्रिया अञ्जना मुझे प्राप्त नहीं हुई तो मैं भी इसी वन में प्राणों का परित्याग कर दूँगा।'

इस प्रकार वन में बैठे-बैठे अनेक प्रकार के विकल्पों की व्याकुलता से पवनकुमार समय व्यतीत कर रहे थे।

यहाँ शास्त्रकार कहते हैं – 'पवनकुमार, अञ्जना के ध्यान में ऐसे तल्लीन हैं कि यदि ऐसी ही तल्लीनता आत्मध्यान में हो जाए तो वह तत्क्षण मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं।'

✦ ✦ ✦

(8)

पवन और अञ्जना का मिलन

इधर कुमार से विदा प्राप्त कर उनका मित्र प्रहस्त, पिता के समीप पहुँचा और उन्हें सर्व वृतान्त से अवगत करा दिया, जिसे

सुनते ही महाराज प्रहलाद शोक-सन्तप्त हो गये, साथ ही सभी जन शोक सागर में निमग्न हो गये।

कुँवर की माता केतुमति भी पुत्र शोक से अत्यन्त पीड़ित होकर रोते हुए प्रहस्त से बोली – 'अरे प्रहस्त! तू मेरे पुत्र को अकेला ही छोड़ आया – यह तूने ठीक नहीं किया।'

प्रहस्त ने कहा – 'हे माताजी! कुमार ने अत्यन्त आग्रह करके मुझे आपके पास यह समाचार देने हेतु भेजा है; इसलिए मैं आया हूँ, किन्तु अब मैं भी वापस जा रहा हूँ।'

माता ने पूछा – 'कुमार कहाँ है ?'

प्रहस्त ने कहा – 'जहाँ अञ्जना होगी, वहीं वे भी होंगे।'

माता ने पूछा – 'अञ्जना कहाँ है ?'

प्रहस्त ने कहा – 'यह मुझे ज्ञात नहीं। हे माता! जो जीव बिना विचारे शीघ्रता से कोई कार्य करते हैं, उन्हें बाद में पछताना ही पड़ता है। आपके पुत्र ने तो यह निश्चय कर लिया है कि यदि उसे अञ्जना प्राप्त नहीं हुई तो वह प्राणत्याग कर देगा।'

कुमार के इस कठोर निर्णय की जानकारी प्राप्त होते ही मातासहित अन्त:पुर की समस्त स्त्रियाँ रुदन करने लगीं।

विलाप करती हुई माता कहने लगी – 'हाय! हाय! मुझ पापिनी ने यह क्या किया ? अरे! मैंने महासती पर कलङ्क लगाया, इस कारण मेरे पुत्र का जीवन भी सन्देहास्पद है। मैं क्रूरभाव की धारक, वक्रपरिणामी एवं मन्दभागिनी हूँ। मैंने बिना विचारे ही यह कार्य किया है। यह नगर, यह कुल, यह विजयार्द्ध पर्वत एवं यह

सेना – कोई भी पवनञ्जय के बिना शोभते नहीं हैं। मेरे पुत्र के समान अन्य कौन है ? जिसने रावण से भी अविजित (न जीता जानेवाला) – ऐसे वरुण राजा को क्षणमात्र में ही बन्दी बना लिया। हे वत्स! देव-गुरु की पूजा में तत्पर विनयवन्त तू कहाँ है ? तेरे दु:ख से मैं तप्तायमान हूँ। हे पुत्र! तू आकर मुझसे बात कर और मेरे शोक का निवारण कर।' – इस प्रकार विलाप करती हुई, वह सिर पीटने लगी।

रानी केतुमति के करुण-विलाप से सारा कुटुम्ब शोकाकुल हो गया। राजा प्रहलाद के नेतृत्व में सबने कुमार पवनञ्जय की खोज करने का विचार किया। दोनों श्रेणियों के विद्याधरों को भी आदरपूर्वक खोज के लिए आमन्त्रित कर लिया गया। सभी आकाशमार्ग से कुँवर की खोज हेतु निकल पड़े। क्या पृथ्वी और क्या घनघोर जङ्गल; क्या पर्वत और क्या गुफा, वे सर्वत्र कुमार की खोज करने के लिए विचरने लगे।

राजा प्रहलाद का एक दूत राजा प्रतिसूर्य के समीप गया और उन्हें सम्पूर्ण वृतान्त से अवगत कराया, जिसे सुनकर प्रतिसूर्य को बहुत शोक हुआ। अञ्जना को जब यह समाचार विदित हुए तो उसे पहले की अपेक्षा अधिक दु:ख हुआ। वह आँखों से अश्रुधारा बहाती हुई रुदन करने लगी – 'हा नाथ! मेरे प्राणाधार!! मेरा चित्त आप ही के प्रति समर्पित है, तथापि इस जन्मदुखियारी को छोड़कर आप कहाँ चले गये ? ऐसा भी क्या क्रोध कि समस्त विद्याधरों से अदृश्य हो गये! एक बार पधारकर अमृतवचन बोलो। इतने दिन तक तो आपके दर्शन की अभिलाषा से प्राणों को टिकाये रखा,

अब भी यदि आपके दर्शन न हों तो इन प्राणों से मुझे क्या प्रयोजन है ? मेरा मनोरथ था कि अब तो नाथ का समागम होगा, किन्तु मेरा यह मनोरथ ही टूट गया। अरे रे! इस मन्दभागिनी के कारण आपको कष्ट प्राप्त करना पड़ा। आपके कष्ट की बात सुनने से पूर्व ही मेरे प्राण क्यों नहीं छूट गये।'

अञ्जना को इस तरह विलाप करती देख बसन्तमाला कहने लगी – 'हे देवी! ऐसे वचन मत बोल। तू धैर्य धारण कर, अवश्य ही तुझे तेरे स्वामी का समागम प्राप्त होगा।'

राजा प्रतिसूर्य ने भी उसे धैर्य बँधाते हुए कहा – 'हे पुत्री! तू विश्वास रख, मैं शीघ्र ही तेरे पति को खोजकर लाऊँगा।'

इस प्रकार कहकर मन से भी तीव्र गतिमान विमान में बैठकर राजा प्रतिसूर्य ने कुमार की खोज आरम्भ कर दी। राजा प्रतिसूर्य की सहायतार्थ दोनों श्रेणियों के विद्याधर एवं लंकानिवासी भी इस कार्य में जुट गये। खोजते-खोजते वे सभी भूतरुवर वन में आये और वहाँ अम्बरगोचर हाथी को देखा, जिससे सभी विद्याधरों को अपार हर्ष हुआ कि जहाँ यह हाथी है, वहीं पवनकुमार भी होंगे क्योंकि पूर्व में भी अनेक बार कुमार इस गज के साथ देखे गये हैं।

जब विद्याधर उस अञ्जनगिरी समान हाथी के समीप पहुँचे तो उसे निरंकुश देखकर भयभीत हो उठे और वह हाथी भी विद्याधरों के लश्कर एवं शोरगुल को देख-सुनकर क्षोभावस्था को प्राप्त हुआ, उसके कपाल में से मद झरने लगा और वह गर्जना करने लगा। वह तीव्र वेग से कुमार के आस-पास चक्कर लगाने लगा। जिस तरफ हाथी दौड़ता, विद्याधर उस दिशा से हट जाते। स्वामी

की रक्षार्थ तत्पर वह हाथी सूँड़ में तलवार लेकर कुमार के समीप खड़ा हो गया। कुँवर की समीपता छोड़कर वह थोड़ा भी इधर -उधर नहीं होता था, उसके भय से विद्याधर भी समीप नहीं आ सकते थे। अन्ततोगत्वा विद्याधरों ने हथिनी के द्वारा स्नेहपूर्वक उस पर काबू पाया और समीप जाकर कुमार को देखने लगे।

कुमार तो एकदम शान्त मौन से इस प्रकार बैठे थे, मानो वे काठ के पुतले हों। विद्याधरों के अनेक प्रयत्न भी उनके चिन्तवन युक्त मौन को नहीं तोड़ सके। जैसे, ध्यानमग्न मुनिराज किसी से चर्चा-वार्ता नहीं करते, वही स्थिति इस समय कुमार की थी।

पवञ्जय के माता-पिता उसका मस्तक चूमकर अश्रुपूरित नेत्रों से गद्गद्वाणी में कहने लगे – 'हे पुत्र! हे विनयवान!! तू हमें त्यागकर यहाँ क्यों आया? तू तो राजमहल का वासी है, इस वन में तूने रात्रि कैसे व्यतीत की। हे पुत्र! तू मौन क्यों हैं?'

इस प्रकार उन्होंने हर सम्भव प्रयत्न किया परन्तु कुमार ने एक शब्द भी उच्चारण नही किया।

तब 'इसने मौन धारण कर अब मरण का ही निश्चय किया है' – ऐसा समझकर समस्त विद्याधरों को महाशोक हुआ और पितासहित सभी विलाप करने लगे।

तभी अञ्जना के मामा राजा प्रतिसूर्य, कुमार के समीप आकर कहने लगे – 'सभी शान्त हो जाओ। मैं वायुकुमार (पवनकुमार) के साथ वचनालाप करूँगा।' – इतना कहकर वे कुमार के एकदम समीप गये और उसके कान में कहने लगे – 'हे कुमार! सुनों, मैं तुम्हें अञ्जना का वृतान्त सुनाता हूँ' —

'सन्ध्याभ्र नामक सुन्दर पर्वत पर अनङ्ग-विजय नामक मुनि को केवलज्ञान होने पर इन्द्रादिक देव उनके दर्शनार्थ पधारे थे, उस समय मैं भी वहाँ पहुँचा था। केवलीप्रभु की वन्दना करने के उपरान्त जब मैं वापस अपने नगर की तरफ आ रहा था, तब मेरा विमान एक गुफा के ऊपर आया तो मैंने उस गुफा में से आता एक नारी का स्वर सुना, गुफा में पहुँचकर देखा तो वहाँ अञ्जना थी। जब मैंने उससे वनवास का कारण पूछा तो उसकी सखी ने मुझे सम्पूर्ण स्थिति से अवगत कराया। अञ्जना शोक-सन्तप्त हो रुदन कर रही थी; अत: मैंने उसे धैर्य बँधाया। उसी गुफा में उसने पुत्ररत्न को जन्म दिया। उस पुत्र की कान्ति से तो सारी ही गुफा ऐसी जगमगा रही थी, मानो सुवर्ण निर्मित हो।

इतनी बात सुनते ही हर्ष से रोमाञ्चित पवनकुमार पूछने लगा – 'हे महानुभाव! अञ्जना कहाँ है ? और बालक तो सुख से है न ?'

प्रतिसूर्य ने कहा – 'अञ्जना को उसके पुत्रसहित विमान में बैठाकर मैं अपने राज्य हनुमत द्वीप ले जा रहा था, तभी एकाएक मार्ग में बालक, विमान से गिर पड़ा....'

बालक के गिरने की बात सुनते ही 'हाय-हाय' – ऐसे उद्गार कुमार के मुख से निकल पड़े।

तब प्रतिसूर्य ने कहा – 'अरे कुमार! चिन्ता मत करो, किन्तु उसके पश्चात् घटित घटना का श्रवण करो, जिससे तुम्हारा सम्पूर्ण दु:ख नष्ट हो जाएगा।

...बालक के गिरते ही मैंने विमान को नीचे उतारकर देखा

तो मेरे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। मैंने देखा, पर्वत तो खण्ड -खण्ड हो गया है और बालक एक शिला पर पड़ा-पड़ा क्रीड़ा कर रहा है। दशों दिशाएँ, उसके तेज से जगमगा रहीं हैं। तब मैंने उस चरमशरीरी बालक को तीन प्रदक्षिणा देकर नमस्कार किया। उसकी माता को भी अपूर्व आनन्द हुआ और उसका नाम 'शैलकुमार' रखा। सखी बसन्तमाला एवं शैलकुमारसहित अञ्जना को मैं हनुमत द्वीप ले गया, वहाँ पुत्र-जन्म का महान उत्सव मनाया, अत: उस बालक का 'हनुमान' – यह दूसरा नाम प्रसिद्ध हुआ।

हे कुमार! यह पतिव्रता स्त्री अपनी सखी एवं पुत्रसहित हमारे नगर में विराजमान है, वहाँ सर्व आनन्द हैं।'

इस वृतान्त को सुनकर पवनकुमार को हार्दिक प्रसन्नता हुई और अञ्जना को देखने के उद्देश्य से शीघ्र ही उन सबने हनुमत द्वीप की तरफ प्रस्थान कर दिया।

नगर में पहुँचने पर राजा प्रतिसूर्य ने सभी का भव्य स्वागत किया।

जब कुमार, अञ्जना के निकट पहुँचे तो लज्जाशील अञ्जना ने बालक हनुमान को कुमार के हाथों में सौंप दिया। मुक्तिदूत, चरमशरीरी पुत्र को देखनेमात्र से कुमार एवं अञ्जना अपने सम्पूर्ण दु:ख भूल गये और लम्बे अन्तराल के पश्चात् हुए इस मधुर -मिलन से दोनों को अपार हर्ष हुआ।'

राजा प्रतिसूर्य ने सभी विद्याधरों को कुछ दिनों अपने यहाँ सम्मानसहित ठहराया। तत्पश्चात् सभी ने अपने-अपने स्थान की ओर प्रस्थान किया। जब पवनकुमार भी जाने लगे, तब उन्होंने

पवनकुमार को अत्याग्रह करके वहीं रोक लिया। हनुमत द्वीप में हनुमान, देवों की तरह क्रीड़ा करते हैं और आनन्दकारी चेष्टाएँ करते हैं, जिन्हें देखकर माता-पिता के आनन्द का पार नहीं रहता।

इस प्रकार समय व्यतीत हो गया। हनुमान यौवनावस्था को प्राप्त हुए, कामदेव होने से उनके रूप की अद्भुतता लेखनी का विषय नहीं है। वे महाबलवान, अतिशय बुद्धिमान हैं, उन्हें अल्प वय में ही अनेक विद्याएँ सिद्ध हुई, उन्हें रत्नत्रय धर्म के प्रति परमप्रतीति है। वे सर्व शास्त्रों के अभ्यास में प्रवीण हैं तथा देव -गुरु-धर्म की उपासना में सदैव तत्पर हैं।

श्री हनुमान के जन्म, पवनञ्जय-अञ्जना के मिलाप की यह कथा अब यहीं समाप्त होती है। इसे पूर्ण करते हुए शास्त्रकार कहते हैं – 'श्री हनुमान जन्म एवं पवनञ्जय-अञ्जना के मिलाप की यह अद्भुत कथा अनेक रसों से परिपूर्ण है। जो जीव, भावपूर्वक इस कथा को सुनेंगे, सुनायेंगे व पढ़ेंगे, उन्हें धर्म में दृढ़ता प्राप्त होगी, उनके वैराग्य की अभिवृद्धि होगी, अशुभकर्मों की निवृत्ति एवं शुभकर्मों में प्रवृत्ति होगी – इस तरह से उन्हें अनुक्रम से धर्म की अभिवृद्धि होते-होते जगत् में दुर्लभ – ऐसे मोक्ष की प्राप्ति होगी।' ●●

- ब्रह्मचारी हरिलाल जैन

2

दृढ़ शीलवन्त : अनन्तमती

भूमण्डल में किसी समय अङ्ग देश एक प्रसिद्ध देश रहा है। उसमें वसुवर्धन नाम का राजा राज्य करता था। उस समय उस देश की राजधानी का नाम चम्पापुरी था। उस राजा के लक्ष्मीमति नाम की रानी थी। उनके पुत्र का नाम प्रियदत्त था। रानी का सरल स्वभाव अनुकरणीय था। वह धर्म परायण महिला थी। उसे जैनधर्म के प्रति बहुत श्रद्धा थी; अत: माता के धार्मिक जीवन का प्रभाव पुत्र प्रियदत्त पर भी पड़ा, इसलिए वंश परम्परानुसार प्रियदत्त की पत्नी अङ्गवती भी पति के अनुकूल धर्ममार्ग की अनुगामिनी थी। उस अङ्गमती की कन्या का नाम अनन्तमती था, जो कि गुणों की खान और सर्वाङ्ग सुन्दरी थी।

एक बार अष्टाह्निका के पवित्र शुभ अवसर पर प्रियदत्त ने धर्मकीर्ति नामक महामुनि के पास जाकर मात्र आठ दिन के लिए ब्रह्मचर्य व्रत लिया, साथ ही अपनी कन्या अनन्तमती को भी ब्रह्मचर्य व्रत दिला दिया। यद्यपि उसने विनोदभाव से ही ऐसा किया था परन्तु वह विनोदभाव अन्त में सत्य सिद्ध हुआ। अपने पूज्य पिताश्री द्वारा दिलाये गये ब्रह्मचर्य व्रत ने कन्या अनन्तमती के मन पर गहरा प्रभाव दिखलाया।

✦ ✦ ✦

जब प्रियदत्त ने कन्या को विवाह योग्य देखा तो उसके विवाह की तैयारी प्रारम्भ करने लगा। घर में विवाह की धूमधाम देखकर अनन्तमती ने पिता से सादर निवेदन किया –

'पिताजी! आपने तो मुझे ब्रह्मचर्य व्रत से दीक्षित किया है, तो अब विवाह की तैयारी किसलिए?'

कन्या की बात सुनकर प्रियदत्त चौंक उठा। वह कहने लगा – 'हे पुत्री! क्या मैंने तुम्हें ब्रह्मचर्य व्रत दिलाया था? मैंने तो मजाक किया था। क्या तू उसे सच्चा मानती है?'

कन्या ने निर्भयता से उत्तर दिया – 'हे तात! आप मुझे क्षमा करें! धर्म और व्रत-विधान में मजाक की बात नहीं होती।'

पिताजी ने दु:खी होकर कहा – 'मेरे पवित्र कुल को उज्ज्वल करनेवाली कन्या! मैं मानता हूँ कि मजाक में दिया गया व्रत भी सत्य है परन्तु वह तो मात्र आठ दिनों के लिये ही था, जबकि तू तो विवाह से ही इन्कार कर रही है।'

'पिताजी! आपका कथन सत्य है; मैं मानती हूँ कि आपने

मात्र आठ दिन के लिये ही वह व्रत दिलाया था परन्तु आपने अथवा आचार्यश्री ने उस समय मुझसे व्रत के समय के सम्बन्ध में क्यों नहीं कहा? पिताजी! मैं तो आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करुँगी। इस जन्म में मेरा विवाह असम्भव है।'

कन्या की भीष्म प्रतिज्ञा के आगे पिता हार गया और लाचार होकर कन्या को धार्मिक, पवित्र जीवन व्यतीत करने के लिए सुन्दर पुस्तकों का प्रबन्ध कर दिया, जिससे कि उसका जीवन शान्तिपूर्वक व्यतीत हो सके।

✦ ✦ ✦

अनन्तमती प्रसन्नता से शास्त्र स्वाध्याय में लीन होकर पवित्र जीवन व्यतीत करने लगी। इसी प्रकार उसने यौवन के आँगन में प्रवेश किया। उसके रोम-रोम से जवानी टपकने लगी। वह सुन्दर तो थी ही परन्तु जवानी ने उसे देवकन्या से भी अधिक सुन्दर बनाकर अपना परिचय दिया। उसकी सुन्दरता का वर्णन करना उसका अपमान करने जैसा है। उसके मुख की सुन्दरता के समक्ष चन्द्रमा भी लज्जित हो जाता था। अनन्तमती के सौन्दर्य के समक्ष स्वर्गलोक की सुन्दरियाँ भी फीकी लगती थीं।

एक दिन की बात है कि अनन्तमती अपनी फुलबाड़ी (बगीचे) में मनोरञ्जन के लिए झूला झूल रही थी। इतने में कुण्डलमण्डित नाम का विद्याधर अपनी पत्नी के साथ वायुयान से जा रहा था। उसकी नजर झूला झूलती हुई अनन्तमती पर जा पड़ी। वह अनन्तमती की सुन्दरता पर मुग्ध हो गया परन्तु उस समय उसकी स्त्री बाधक बन रही थी। वह शीघ्रता से विमान को घर ले गया और अपनी स्त्री को विमान से उतारकर शीघ्र वापस

आया परन्तु उसकी स्त्री ने उसके मन का भाव जान लिया। जब विद्याधर विमान लेकर रवाना हुआ तो वह भी उसके पीछे-पीछे चल दी। कुण्डलमण्डित जबरदस्ती अनन्तमती को विमान में बैठाकर ले जाने लगा, तभी उसकी नजर अपनी पत्नी पर पड़ी, जिससे वह भयभीत गया और अनन्तमती को पर्णलब्धि नामक विद्या के सुपुर्द करके वहाँ से गमन कर गया।

उस विद्या ने अनन्तमती को घोर जङ्गल में छोड़ दिया। वह उस निर्जन वन में अकेली रोने लगी। इतने में शिकारी भीलराज वहाँ आ पहुँचा। वह वासना के विचार से अनन्तमती को अपने घर ले गया।

अनन्तमती के जीव में जीवन आया और वह विचारने लगी कि अब मेरे प्राणों बचेंगे, मैं अपने घर पहुँच जाऊँगी, परन्तु वह भ्रम में थी। भीलराज, अनन्तमती से कहने लगा - 'देवी! तू कितनी भाग्यशाली है कि मैं एक राजा तेरे सौन्दर्य पर मोहित हुआ हूँ, मैं तेरे चरणों में गिरकर वरदान माँगता हूँ कि मेरे साथ भोग भोगकर आनन्द प्राप्त कर, मैं तुझे अपनी पटरानी बनाऊँगा। मुझ पर कृपा कर।'

अनन्तमती उसकी दुष्टतापूर्ण बातें सुनकर फूट-फूटकर रोने लगी परन्तु इस घोर जङ्गल में उसका रोना सुननेवाला कोई नहीं था। सत्य ही है कि पापियों के हृदय में दया का नाम भी नहीं होता। उसने अनन्तमती पर साम-दाम और दण्ड-नीति से काम लेना शुरु किया।

अनन्तमती ने अपने हृदय में दृढ़ निश्चय कर लिया कि इस

दुष्ट के आगे विनती, विनय और नम्रता से काम नहीं चलेगा, तब उसने भीलराज को धिक्कारा। सती–साध्वी के नेत्रों से क्रोध की चिंगारियाँ निकलने लगीं परन्तु उस राक्षस पर कुछ भी प्रभाव नहीं हुआ। उसी समय अनन्तमती के शील से प्रभावित होकर वनदेवी ने आकर उसकी रक्षा की। देवी, भीलराज से क्रोधपूर्ण शब्दों में कहने लगी – 'नराधम! तू इस देवी को नहीं पहिचानता; यह पवित्र आत्मा है। दुष्ट! याद रख, संसार भर में यह महान देवी है, इसकी तरफ कुत्सित दृष्टि की तो तेरी खैर नहीं है।'

इस प्रकार वनदेवी उसे धमकाकर चली गयी। वनदेवी की प्रताड़ना सुनकर भीलराज डर गया। देवी के डर से उसने अनन्तमती को एक सेठ को सौंपकर कहा – 'हे सेठजी! इसे घर पहुँचा देना।'

भील के वचन सुनकर साहूकार प्रसन्न हो गया परन्तु वह भी पापी था। वह अनन्तमती के समान दुर्लभ सुन्दर स्त्री को पाकर प्रमुदित होकर विचारने लगा कि देखो! बिना परिश्रम के कैसी सुन्दरी मिली है। अगर यह मेरा कहना मानेगी तो ठीक, अन्यथा मुझसे छूटकर कहाँ जाएगी?

इस प्रकार अपने मन में विषयवासनायुक्त विचार करके दुष्टतापूर्वक अनन्तमती से कहने लगा – 'देवी! तेरे भाग्य की क्या प्रशंसा करूँ, एक दुष्ट राक्षस के हाथ से तेरा छुटकारा हुआ है। मेरे पास आकर तेरा भाग्य चमक उठा है। कहाँ तो तेरा चन्द्रमा के समान सुन्दर मुखड़ा और कहाँ भयङ्कर भील! मैं अपने भाग्य को कैसा धन्य मानूँ? धन्य है मेरा भाग्य, जिससे तुझ समान देव दुर्लभ सुन्दर स्त्री प्राप्त हुई है।' सत्य है, भाग्यशाली को ही सुन्दर

स्त्री प्राप्त होती है। तेरे जैसी स्त्रीरत्न का मिलना महाभाग्य का लक्षण है। हे देवी! मैं अनन्त धन, सुख, वैभव का स्वामी हूँ और तू विश्व प्रसिद्ध अपूर्व सुन्दरी; अत: मैं तेरे चरणों का दास बनना चाहता हूँ। तू मुझे अपना ले और हृदय में स्थान दे। मैं भी अनुभव करता हूँ कि मेरे साथ ही तेरा जीवन भी कृतकृत्य हो जाएगा।'

सेठ के कुत्सित विचारों से अनभिज्ञ सरल चित्त अनन्तमती अपने कोमल, निष्कलङ्क हृदय में दुष्टों से छुटकारा मिलने का विचार कर रही थी। वह सोच रही थी कि यह सेठ भला और सज्जन है, अब मैं शीघ्र ही अपने पिता के पास पहुँच जाऊँगी, अब डरने की कोई आवश्यकता नहीं परन्तु....।

सत्य ही है कि सदाचारी लोग संसार को भी उसी दृष्टिकोण से देखते हैं। निर्दोष अनन्तमती भी जिसे देखती, उसे सत्य पात्र ही मानती। उसके हृदय में पाप का नाम नहीं था, परन्तु साहूकार की वासनापूर्ण बातें सुनकर उसने प्रार्थना करते हुए कहा –

'मान्यवर! मैं आपके पास आकर अपने को सुरक्षित समझती रही, मैं आपको अपने पिता के समान समझती रही कि आप मुसीबत में मेरी पिता के समान रक्षा करोगे, परन्तु आपके कामुकतापूर्ण व्यवहार ने मेरे सामने धरती कम्पित कर दी है। मैं किस पर विश्वास करूँ? अरे! मैं आपको अपना रक्षक समझी परन्तु आप तो मेरे भक्षक बन गये। मुझे दु:ख होता है कि आपके समान सज्जन ऐसी नीचतापूर्ण बातें करते हैं। मैं आपका चरित्र देखकर निश्चयपूर्वक कहती हूँ कि आपका धन और भोग -विलास के साधनों को धिक्कार है, धिक्कार है... लाखों बार

धिक्कार है; जिसमें जन्म लेकर नीचता का परिचय दे रहे हो, आपके उस वंश को मैं नफरत की नजर से देखती हूँ। रे नराधम! तू मनुष्य नहीं, मनुष्य के रूप में राक्षस है... जो धोखा देकर विश्वासघात करता है, वह पापी है; उसे देखने से भी पाप लगता है। अधम नरपिशाच को जितना धिक्कारे, उतना कम है।' इस प्रकार दु:खी होकर निन्दा करके अनन्तमती चुप हो गयी।

वह साहूकार अनन्तमती की स्पष्ट बातें सुनकर स्तब्ध रह गया। सती-साध्वी के तेज के आगे उसका बोलने का साहस नहीं हुआ, परन्तु उस दुष्ट ने अनन्तमती को कामसेना नामक वैश्या के फन्दे में फँसाकर अपने अपमान का बदला लिया।

✦ ✦ ✦

मनुष्य को अपने कर्म का फल तो भोगना ही पड़ता है। कर्म की गति विचित्र है। 'कोई नहीं कर्म लेख मेटनहारा' की उक्ति सत्य ही है। वहाँ वैश्या के हाथ में पड़कर अनन्तमती के दु:खों का पार नहीं रहा। उस सती को भाँति-भाँति के प्रलोभन बताये गये। उस दुष्टा ने अनन्तमती को दु:खी करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। वह चाहती थी कि अनन्तमती को भी भ्रष्ट कर दे, परन्तु अनन्तमती तो सती स्त्री थी, उसके शील के साथ खेल करना, अग्नि के साथ खेल करने जैसा था; अत: उस वैश्या ने लाख प्रयत्न किये, परन्तु अनन्तमती मेरु के समान अचल-अडिग रही। उसके सतीत्व को डगमगाना असम्भव था।

जो संसार के दु:खों से घबरा जाता है, वह पथभ्रष्ट हो जाता है, परन्तु जो सदाचार के पथ के पथिक हैं, उन्हें पथभ्रष्ट करना,

लोहे के चने चबाने जैसा है। जब वैश्या समस्त प्रयत्नों में असफल रही, तब उसने अनन्तमती को सिंहराज नामक एक व्यभिचारी राजा को सौंप दिया।

हाय रे भाग्य! किस कुघड़ी में वह पैदा हुई थी कि जहाँ जाए, वहाँ दुष्टात्माओं से ही भेंट होती है!

पापी सिंहराज ने अनन्तमती के साथ दुराचार करने का विचार प्रगट किया, परन्तु सती साध्वी अनन्तमती रञ्चमात्र भी विचलित नहीं हुई। जब उस दुष्टात्मा की इच्छा पूर्ण नहीं हुई तो उसने बलात्कार करने का प्रयत्न किया परन्तु सती के सतीत्व को लूट लेना कोई खेल नहीं था... किसकी भुजाओं में इतनी सामर्थ्य है कि सती के सतीत्व को मिटा सके! सती की रक्षार्थ वनदेवी प्रगट होकर कहने लगी – 'रे पापी! खड़ा रह। यदि सती के सामने आँख भी ऊँची की तो तेरा सर्वनाश निश्चित है।'

इस प्रकार देवी उसे दण्ड देकर चली गयी। देवी का भयङ्कर स्वरूप देखकर सिंहराजा के होश उड़ गये, उसका कलेजा थर-थर काँपने लगा। देवी चली गयी परन्तु सिंहराजा को खबर नहीं पड़ी। देवी के चले जाने के बाद उस दुष्ट ने अनन्तमती को एक घोर जङ्गल में छोड़ देने की आज्ञा सेवकों को दे दी।

✦ ✦ ✦

संसार में परिभ्रमण करते हुए जीवों को अपने पुण्य-पाप के उदयानुसार अनुकूल-प्रतिकूल संयोग प्राप्त होते रहते हैं। संयोगों की प्राप्ति में कोई अपूर्वता नहीं है; उन संयोगों का लक्ष्य छोड़कर, आत्मस्वभाव की आराधना में ही अपूर्वता है।

अनन्तमती घोर जङ्गल में पहुँचकर विचारने लगी कि कहाँ जाऊँ? उसे मार्ग का पता नहीं था। अन्त में वह जङ्गल के फल खाती और पञ्च परमेष्ठी की आराधना करती हुई, अनेक जङ्गलों और पहाड़ों को पार करती हुई, अयोध्या नगरी में जा पहुँची। वहाँ उसकी भेंट पद्मश्री आर्यिका से हुई। उस आर्यिका ने अनन्तमती का परिचय पूछा। अनन्तमती ने सम्पूर्ण आपबीती कह सुनाई। उसकी आपबीती सुनकर आर्यिका को बहुत वैराग्य हुआ और उन्होंने अनन्तमती को सती शिरोमणी समझकर अपने पास रख लिया। सत्य है, अच्छे लोगों के लिए परोपकार ही व्रत है।

✦ ✦ ✦

इधर प्रियदत्त अपनी पुत्री के गुम हो जाने के समाचार सुनकर अत्यन्त दु:खी हुआ। उसने पुत्री वियोग से घबराकर वैराग्य धारण किया। जब मनुष्य दु:खी होता है, तब घर-बार भी श्मशानवत् लगते हैं। उसे भी सारा संसार सूना-सूना लगने लगा। घर में एक क्षण एक वर्ष के समान लगता था। उसका घर में मन ही नहीं लगता था, अत: वह घर से बाहर निकल गया। लोगों के बहुत समझाने पर भी उसने अपना निर्णय नहीं छोड़ा। इस कारण परिजन भी उसके साथ चल निकले। सभी अनेक सिद्धक्षेत्रों तथा अतिशयक्षेत्रों की यात्रा करते हुए अयोध्यानगरी में आ पहुँचे।

वहाँ प्रियदत्त का साला जिनदत्त रहता था। उसने अत्यन्त प्रेम से प्रियदत्त का स्वागत किया और परिजनों के कुशल समाचार पूछे। उसने अनन्तमती सम्बन्धी सारी घटना सुनी, जिससे वह (जिनदत्त) अत्यन्त दु:खी हुआ, परन्तु कर्मफल के सामने सब लाचार हो गये।

दूसरे दिन एक ऐसी घटना हुई कि पिता-पुत्री का मिलन हो गया। बात यह हुई कि जिनदत्त की सहधर्मिणी, आर्यिका संघ के साथ रहनेवाली स्त्री (अनन्तमती) को भोजन कराने के लिए तथा चौक पुराने के लिए बुला लाई। अनन्तमती चौक पूरकर चली गयी। इतने में प्रियदत्त अपने साले के साथ जिनालय में दर्शन करके वापस आया। जिनदत्त के घर में चौक पूरित देखकर उसे अपनी प्रिय कन्या अनन्तमती की याद आ गयी और वह रोने लगा। उसने काँपते स्वर में कहा कि जिसने यह चौक पूरा है, उससे मेरा मिलाप कराओ। उसका साला अपनी पत्नी से चौक पूरनेवाली कन्या का स्थान पूछकर पद्मश्री आर्यिका के समीप पहुँच गया और अनन्तमती को साथ लेकर अपने घर आया।

बहुत दिनों के बाद अपनी कन्या को देखकर पिता का गला भर गया। पिता ने पुत्री को देखकर, अपने हृदय से लगाया। प्रियदत्त ने अत्यन्त प्रेम से पुत्री के कुशल समाचार पूछे। कन्या ने सिसकते हुए सम्पूर्ण आप-बीती कह सुनाई। प्रियदत्त, पुत्री की कष्ट कथा सुनकर काँप उठा और आश्चर्य के साथ कहने लगा कि मेरी कन्या ने असह्य कष्ट सहकर भी किस प्रकार अपने सतीत्व की रक्षा की है!

अन्त में उसे अपनी कन्या से मिलकर हृदय में आनन्द का जैसा अनुभव किया, वह शब्दों से अगोचर है। वहीं जिनदत्त भी अत्यन्त प्रसन्न हुआ और इसी प्रसन्नता में जिनेन्द्रदेव की रथयात्रा निकालने की तैयारी की, सबको सम्मानित करके दान दिया। कन्या से मिलकर प्रियदत्त ने अपने को धन्य माना, उसकी प्रसन्नता का कोई पार नहीं था।

✦ ✦ ✦

अब, प्रियदत्त घर जाने को तैयार हो गया और उसने अपनी पुत्री से घर चलने को कहा। अनन्तमती ने हाथ जोड़कर पिता से प्रार्थना कि – 'हे पूज्य पिताश्री! मैंने संसार के समस्त नाटक देख लिये हैं। हाय! उन्हें स्मरण करके मेरा आत्मा काँप उठता है। पिताजी! मैं सांसारिक कष्टों को देखकर डरती हूँ; अत: आपसे सादर प्रार्थना करती हूँ कि आप मुझे घर आने को न कहें। आपसे मेरी प्रार्थना है कि मुझे जैनधर्म में दीक्षित होने की आज्ञा प्रदान करें। बस, आपकी पुत्री की एक ही अभिलाषा है।'

कन्या की बात सुनकर प्रियदत्त डर गया। उसने लड़खड़ाती आवाज में कहा – 'पुत्री! तेरा शरीर कोमल है, तू तप के कठिन कष्टों को किस प्रकार सहन करेगी? दीक्षा लेकर अत्यन्त कष्ट सहन करने पड़ते हैं, जिन्हें तू सहन नहीं कर सकती; अत: थोड़े दिन घर में रहकर साधना करो, तत्पश्चात् तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण होगी।'

यद्यपि प्रियदत्त ने प्रेमवश कन्या को दीक्षा लेने से इन्कार किया, परन्तु अनन्तमती के रोम-रोम में वैराग्य के भाव छा रहे थे।

उसने गृह-परिवार, माता-पिता की ममता को ठोकर मारकर पद्मश्री आर्यिका के समीप जाकर आर्यिका दीक्षा अङ्गीकार कर ली। उसने दृढ़तापूर्वक तपस्या करना प्रारम्भ कर दिया। वह कठिन से कठिन कष्ट भी धैर्य के साथ सहन करती थी। लोग उसकी कठिन तपस्या देखकर आश्चर्य व्यक्त करते थे। उसने आजीवन दृढ़तापूर्वक व्रतों का पालन किया और अन्त में वह अपनी अमर ज्योति फैलाती हुई सन्यास द्वारा मरण को प्राप्त करके सहस्त्रावर स्वर्ग में जाकर देव हुई।

वह देव, स्वर्ग में भी नये-नये वस्त्राभूषण धारण करता है और अनेक देवांगनाएँ उसकी सेवा करती हैं, उसके सुख और ऐश्वर्य की कोई सीमा नहीं है। सत्य ही है, जब पुण्योदय होता है, तब उसके प्रताप से जीवों को क्या-क्या नहीं मिलता! यद्यपि अनन्तमती के पिता ने उसको खेल-खेल में ब्रह्मचर्य दिलवाया था, परन्तु उसने इतने मात्र से ही उसका पालन किया। उसे संसार में किसी भी सुख का लालच नहीं था, उसने अपने उग्र तप के प्रभाव से स्वर्ग-सुख प्राप्त किया। वहाँ भी उसका जीवन जिन भगवान की आराधना में व्यतीत होता है। ●●

3

अमूढ़दृष्टिवन्त रेवती रानी

इस भरतक्षेत्र के मध्य में विजयार्ध पर्वत है। उस पर विद्याधर मनुष्य रहते हैं। उन विद्याधरों के राजा चन्द्रप्रभ का चित्त संसार से विरक्त हुआ और वे राज्य का कार्यभार अपने पुत्र को सौंपकर तीर्थयात्रा करने निकल पड़े। वे कुछ समय दक्षिण देश में रहे। दक्षिण देश के प्रसिद्ध तीर्थों और वहाँ विराजित रत्नमयी जिनबिम्बों का दर्शन करके उन्हें बहुत आनन्द हुआ। दक्षिण देश में उस समय गुप्ताचार्य नाम के महान मुनिराज विराजमान थे। वे विशेष ज्ञान के धारक थे और मोक्षमार्ग का उत्तम उपदेश देते थे। चन्द्रप्रभ राजा ने कुछ दिन वहाँ मुनिराज का उपदेश सुना और भक्तिपूर्वक उनकी सेवा की।

तत्पश्चात् उन्होंने मथुरा नगरी की यात्रा पर जाने का विचार किया क्योंकि वहाँ से जम्बूस्वामी ने मोक्ष पाया था और वर्तमान में अनेक मुनिराज वहाँ विराजमान थे। उनमें भव्यसेन नाम के एक मुनि बहुत ही प्रसिद्ध थे। उस समय मथुरा में वरुण राजा राज्य करते थे, उनकी रानी का नाम था रेवती।

चन्द्रप्रभ राजा ने मथुरा जाने की अपनी इच्छा गुप्ताचार्य के सामने प्रगट की और आज्ञा माँगी तथा वहाँ विद्यमान संघ के लिए कोई सन्देश देने के सम्बन्ध में पूछा।

उस पर श्री आचार्यदेव ने सम्यक्त्व की दृढ़ता का उपदेश देते हुए कहा – 'आत्मा का सच्चा स्वरूप समझनेवाला जीव, वीतराग अरहन्त देव के अलावा किसी को भी देव नहीं मानता है। जो देव नहीं है, उसे देव मानना देवमूढ़ता है – ऐसी मूढ़ता धर्मी को नहीं होती। मिथ्यामत के देवादिक बाहर से देखने में कितने भी सुन्दर दिखते हों परन्तु धर्मी जीव उनके प्रति आकर्षित नहीं होते।

मथुरा की राजरानी रेवतीदेवी अभी सम्यक्त्व की धारक हैं, वे जिनधर्म की श्रद्धा में बहुत दृढ़ हैं, उन्हें धर्मवृद्धि का आशीर्वाद कहना तथा वहाँ विराजमान सुरत मुनि को, जिनका चित्त रत्नत्रय में रत है – उन्हें वात्सल्यपूर्वक नमस्कार कहना।'

इस प्रकार आचार्यदेव ने सुरत मुनिराज तथा रेवती रानी के लिए सन्देश कहा परन्तु भव्यसेन मुनि को तो याद भी नहीं किया, इससे राजा को बहुत आश्चर्य हुआ, फिर भी आचार्य महाराज को याद दिलाने के उद्देश्य से उन्होंने पूछा – 'क्या दूसरे किसी को कुछ कहना है ?'

आचार्यदेव ने इस पर विशेष कुछ नहीं कहा। इससे चन्द्रप्रभ राजा को ऐसा लगा – 'क्या आचार्यदेव, भव्यसेन मुनि को भूल गये हैं ?.... नहीं, नहीं, वे तो भूलेंगे नहीं, वे तो विशेष ज्ञान के धारक हैं; इसलिए उनकी इस आज्ञा में अवश्य कोई रहस्य होगा। ठीक है, जो होगा, वह प्रत्यक्ष दिखेगा।'

मन ही मन में ऐसा समाधान करके चन्द्रप्रभ राजा ने आचार्यदेव के चरणों में नमस्कार किया और मथुरानगरी के लिये रवाना हो गये।

✦ ✦ ✦

मथुरा में आते ही सर्व प्रथम उन्होंने सुरत मुनिराज के दर्शन किये। वे बहुत ही शान्त और शुद्ध रत्नत्रय का पालन करनेवाले थे। चन्द्रप्रभ राजा ने उन्हें नमस्कार किया और उन्हें गुप्ताचार्य का सन्देश कहा।

राजा की बात सुनकर सुरत मुनिराज ने प्रसन्नता व्यक्त की और स्वयं भी विनयपूर्वक हाथ जोड़ कर श्री गुप्ताचार्य के प्रति परोक्ष नमस्कार किया।

मुनिवरों का एक-दूसरे के प्रति ऐसा वात्सल्यभाव देखकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ। सुरत मुनिराज ने कहा - 'हे वत्स! वात्सल्य से धर्म शोभता है। धन्य है उन रत्नत्रय के धारक आचार्यदेव को, जिन्होंने इतने दूर से साधर्मी के रूप में मुझे याद किया। शास्त्र में सच ही कहा है -

ये कुर्वन्ति सुवात्सल्यं भव्या धर्मानुरागतः।
सधर्मिकेषु तेषां हि सफलं जन्म भूतले॥

अहो! जो भव्यजीव धर्म से प्रीति होने के कारण साधर्मी जनों के प्रति वात्सल्य करते हैं, उनका जन्म जगत् में सफल है।'

प्रसन्नचित्त से भावपूर्वक बारम्बार मुनिराज को नमस्कार करके राजा वहाँ से निकले और भव्यसेन मुनिराज के पास आये।.... उन्हें बहुत शास्त्रज्ञान था और लोगों में वे बहुत प्रसिद्ध थे। राजा उनके साथ थोड़े समय रहे परन्तु उन मुनिराज ने न तो आचार्य संघ का कोई समाचार पूछा और न कोई उत्तम धर्म-चर्चा की। मुनि के योग्य आचार-व्यवहार भी उनका नहीं था। यद्यपि वे शास्त्र पढ़ते थे, फिर भी शास्त्रानुसार उनका आचरण नहीं था। मुनि को नहीं

करने योग्य प्रवृत्ति वे करते थे। यह सब अपनी आँखों से देख कर राजा की समझ में आ गया – 'ये भव्यसेन मुनि चाहे जितने प्रसिद्ध हों परन्तु सच्चे मुनि नहीं हैं तो फिर गुप्ताचार्य इन्हें क्यों याद करेंगे ? सच में, उन चतुर आचार्य भगवान ने योग्य ही किया।'

इस प्रकार चन्द्रप्रभ राजा ने सुरत मुनि और भव्यसेन मुनि की स्वयं आँखों से देखकर परीक्षा की। रेवती रानी को भी आचार्य महाराज ने धर्मवृद्धि का आशीर्वाद कहा है; इसलिए उनकी भी परीक्षा करनी चाहिए – ऐसा विचार राजा के मन में आया।

✦ ✦ ✦

अगले दिन मथुरा नगरी के उद्यान में अकस्मात् साक्षात् ब्रह्मा प्रगट हुए। इस सृष्टि के कर्ता ब्रह्माजी साक्षात् आये हैं.... वे कह रहे हैं – 'मैं इस सृष्टि का कर्ता हूँ और दर्शन देने के लिए आया हूँ।' यह बात नगरजनों में फैल गयी। नगरजनों की टोलियाँ उनके दर्शन के लिए उमड़ पड़ीं और उन्हें गाँव में लाने की चर्चा हुई।

मूढ़ लोगों का तो क्या कहना ? बहुभाग लोग इन ब्रह्माजी के दर्शन करने आये। प्रसिद्ध भव्यसेन मुनि भी कौतुहलवश वहाँ आये। यदि कोई नहीं गये थे तो मात्र सुरत मुनि और रेवती रानी।

जैसे ही राजा ने साक्षात् ब्रह्मा की बात की, वैसे ही महारानी रेवती ने निःशङ्कपने कहा – 'महाराज! ये कोई ब्रह्मा हो ही नहीं सकते, किसी मायाचारी ने इन्द्रजाल खड़ा किया है क्योंकि कोई ब्रह्मा या कोई इस सृष्टि का कर्ता है ही नहीं। साक्षात् ब्रह्मा तो अपना ज्ञानस्वरूप आत्मा है अथवा भरतक्षेत्र में भगवान ऋषभदेव ने मोक्षमार्ग की रचना की, इसलिए उन्हें आदि ब्रह्मा कहते हैं।

इनके अतिरिक्त दूसरा कोई ब्रह्मा है ही नहीं, कि जिसे मैं वन्दन करूँ।'

✦ ✦ ✦

दूसरे दिन मथुरा नगरी में एक अन्य दरवाजे से नागशय्या पर विराजमान विष्णु भगवान प्रगट हुए, जिन्होंने अनेक अलङ्कार पहने हुए थे और उनके चारों हाथों में शस्त्र थे। लोगों में फिर हलचल मच गयी। लोग बिना कोई विचार किये पुन: उस तरफ भागे। वे कहने लगे – 'अहा! मथुरा नगरी का महाभाग्य खुल गया है, कल साक्षात् ब्रह्मा ने दर्शन दिये और आज विष्णु भगवान पधारे हैं।'

राजा को ऐसा लगा कि आज तो रानी अवश्य जाएगी, इसलिए उन्होंने स्वयं रानी से बात की, परन्तु रेवती जिसका नाम था, जो वीतराग देव के शरण में ही समर्पित थी, उसका मन जरा भी डिगा नहीं।

'श्रीकृष्ण आदि नौ विष्णु (वासुदेव) होते हैं और वे तो चौथे काल में हो चुके, दसवाँ विष्णु या नारायण होता नहीं; इसलिए अवश्य यह सब बनावटी माया है, क्योंकि जिनवाणी मिथ्या नहीं होती।' इस प्रकार जिनवाणी की दृढ़ श्रद्धापूर्वक अमूढ़दृष्टि अङ्ग से रेवती रानी जरा भी विचलित नहीं हुई।

✦ ✦ ✦

तीसरे दिन वहाँ एक नयी बात हुई। ब्रह्मा और विष्णु के बाद आज तो पार्वतीसहित जटाधारी महादेव शंकर प्रगट हुए। गाँव के बहुत लोग उनके दर्शन करने चल दिये, कोई भक्ति से गया तो कोई कौतुहल से गया परन्तु जिसके रोम-रोम में वीतरागदेव बसे

हैं – ऐसी रेवती रानी पर तो कुछ भी असर नहीं हुआ, उसे कोई आश्चर्य भी नहीं हुआ, उल्टे उसे तो लोगों पर दया आई। रेवती रानी सोचने लगी – 'अरे रे! मोक्षमार्ग को दिखानेवाले परम वीतराग सर्वज्ञदेव को भूल कर मूढ़ता से लोग इन्द्रजाल में कैसे फँस रहे हैं! सच में जीवों को भगवान अरहन्तदेव का मार्ग प्राप्त होना बहुत दुर्लभ है।'

✦ ✦ ✦

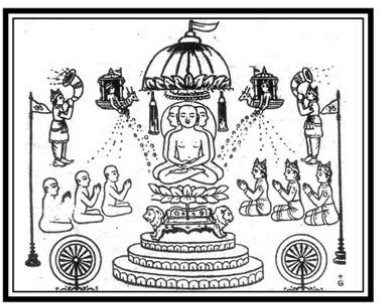

अहो आश्चर्य! अब चौथे दिन तो मथुरा के विशाल प्रांगण में साक्षात् तीर्थङ्कर भगवान प्रगट हुए.... अद्भुत समवसरण की रचना, गंधकुटी जैसा दृश्य और उसमें चतुर्मुखसहित विराजमान तीर्थङ्कर भगवान!! लोग फिर दर्शन करने दौड़े।

राजा ने सोचा – इस बार तो तीर्थङ्कर भगवान आये हैं, इसलिए रेवती रानी अवश्य जाएगी। अपने अन्तरङ्ग में ऐसा विचार करके जब राजा ने रेवती रानी से तीर्थङ्कर परमात्मा के दर्शनार्थ चलने को कहा तो प्रत्युत्तर में रेवती रानी ने कहा – 'हे महाराज! अभी इस पञ्चम काल में तीर्थङ्कर कैसे? भगवान ने इस भरतक्षेत्र में एक काल खण्ड में चौबीस तीर्थङ्कर होने का ही विधान कहा है और वे ऋषभदेव से लेकर महावीरस्वामी पर्यन्त चौबीस तीर्थङ्कर मोक्ष पधार गये हैं। यह पच्चीसवाँ तीर्थङ्कर कैसा? यह किसी कपटी का

मायाजाल है। मूढ़ लोग, देव के स्वरूप का विचार किये बिना ही एक के पीछे एक दौड़े चले जा रहे हैं।'

✦ ✦ ✦

बस, परीक्षा हो चुकी। विद्याधर राजा को निश्चय हो गया कि रेवती रानी की जो प्रशंसा श्री गुप्ताचार्य ने की थी, वह यथार्थ ही है। निश्चित ही यह भव्यात्मा सम्यक्त्व के सर्व अङ्गों से शोभायमान है।

क्या पवन से कभी मेरुपर्वत हिलता है ? नहीं; उस सम्यग्दर्शन में मेरु जैसा अकम्प सम्यग्दृष्टि जीव, कुधर्मरूपी पवन से जरा भी नहीं डिगता; देव-गुरु-धर्म सम्बन्धी मूढ़ता उसे नहीं होती, उनकी उचित पहिचान करके सच्चे वीतरागी देव-गुरु-धर्म को ही वह नमन करता है।

रेवती रानी की ऐसी दृढ़ धर्म-श्रद्धा देखकर विद्याधर राजा चन्द्रप्रभ को बहुत प्रसन्नता हुई और अपने असली स्वरूप में प्रगट होकर उसने कहा - 'हे माता! क्षमा करो। चार दिन से इन ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, शंकर इत्यादि का इन्द्रजाल मैंने ही खड़ा किया था। पूज्यश्री गुप्ताचार्य महाराज ने आपके सम्यक्त्व की प्रशंसा की थी, इसलिए आपकी परीक्षा करने के लिए ही मैंने यह सब किया था। अहा! धन्य है आपके श्रद्धान को!! धन्य है आपके अमूढ़दृष्टि अङ्ग को। हे माता! आपके सम्यक्त्व की प्रशंसापूर्वक श्री गुप्ताचार्य महाराज ने आपके लिए धर्मवृद्धि का आशीर्वाद भेजा है।'

अहो! मुनिराज के आशीर्वाद की बात सुनते ही रेवती रानी को अपार हर्ष हुआ... हर्ष से गद्गद् होकर उन्होंने यह आशीर्वाद स्वीकार किया और जिस दिशा में मुनिराज विराजित थे, उस तरफ

सात कदम चल कर मस्तक नवाँ कर उन मुनिराज को परोक्ष नमस्कार किया। विद्याधर राजा ने रेवती माता का बहुत सम्मान किया और उनकी प्रशंसा करके सम्पूर्ण मथुरा नगरी में उनकी महिमा फैला दी। राजमाता की ऐसी दृढ़ श्रद्धा और जिनमार्ग की ऐसी महिमा देखकर मथुरा नगरी के कितने ही जीव, कुमार्ग का परित्याग करके जिनधर्म के भक्त बन गये और बहुत से जीवों की श्रद्धा दृढ़ हो गयी। इस प्रकार जैनधर्म की महान प्रभावना हुई।

[प्रिय साधर्मी बहिनों! यह कहानी हमें बताती है कि वीतराग परमात्मा अरहन्तदेव का सच्चा स्वरूप पहचान कर, उनके अलावा अन्य दूसरे किसी भी देव को नमस्कार नहीं करें। जिन वचन के विरुद्ध किसी बात को नहीं माने। भले सारा जगत् कुछ भी माने और तुम अकेली पड़ जाओ, तो भी जिनमार्ग की श्रद्धा नहीं छोड़ना चाहिए।]

- ब्रह्मचारी हरिलाल जैन

4

शील शिरोमणि नीलीसुन्दरी

लाट देश में जिनदत्त सेठ की पुत्री का नाम नीली था। वह सेठ जिनधर्मी था और जिनधर्मी के अलावा अन्य धर्मियों से अपनी पुत्री का विवाह नहीं करना चाहता था।

इसी देश के समुद्रदत्त सेठ का पुत्र सागरदत्त एक बार नीली का रूप देखकर मोहित हो गया और उसने उसके साथ विवाह करने की इच्छा व्यक्त की, परन्तु वह जिनमत का द्वेषी, विधर्मी होने से जिनदत्त सेठ उसके साथ नीली का विवाह करने को तैयार नहीं था।

तब उस सागरदत्त ने कपटपूर्वक जिनधर्म स्वीकार करने का नाटक किया और श्रावक जैसा आचरण करने लगा। अत: 'सागरदत्त ने मिथ्यामार्ग छोड़कर जिनधर्म धारण किया है' – ऐसा समझ कर जिनदत्त ने हर्षपूर्वक नीली का विवाह उसके साथ कर दिया।

विवाह का प्रयोजन सिद्ध होने पर सागरदत्त फिर से कुमार्गगामी बन गया, उसने नीली को भी उसके पिता के घर जाने से रोका.... सागरदत्त के इस कृत्य से जिनदत्त सेठ को बहुत पश्चाताप हुआ और 'मानो अपनी पुत्री को कुएँ में डाल दिया हो' – ऐसा दु:ख उसे हुआ।

सच है, पुत्री का विधर्मी के साथ विवाह कर देने से अच्छा

है कि उसे कुएँ में डाल देना, क्योंकि कुएँ में गिरने से तो एक बार ही मरण होता है, जबकि मिथ्यात्व के संस्कार से तो अनन्त संसार में परिभ्रमण का दुष्चक्र चलता है। जो अपनी पुत्री को विधर्मियों को देते हैं, वे उनका बहुत बड़ा अहित करते हैं, उन्हें जिनधर्म की श्रद्धा नहीं होती। नीली को भी इस बात का दु:ख हुआ, परन्तु वह स्वयं दृढ़ता से जिनधर्म का पालन करती रही। **जिसे जिनधर्म का सच्चा रङ्ग लगा है, उसे किसी भी प्रसङ्ग में उसका उत्तम संस्कार नहीं छूटता। वह भले ही प्राण त्याग दे, परन्तु जिनधर्म को नहीं छोड़ता।**

नीली के ससुर समुद्रदत्त ने विचार किया – 'हमारे गुरुओं के संसर्ग से नीली अपना जिनधर्म छोड़ देगी और हमारा धर्म अङ्गीकार कर लेगी' – ऐसा विचार करके उसने अपने मत के भिक्षुओं को भोजन के लिए घर में निमन्त्रित किया परन्तु नीली ने युक्ति से उनकी परीक्षा करके उन्हें मिथ्या ठहराया और अपने जिनधर्म में दृढ़ रही।

अपने गुरुओं का ऐसा अपमान होने पर समुद्रदत्त के कुटुम्बीजन नीली के प्रति द्वेषबुद्धि रखने लगे, उसे अनेक प्रकार से प्रताड़ित करने लगे। उसकी ननदों ने तो उस पर परपुरुष के साथ व्यभिचार का कलङ्क तक लगा दिया और यह बात सर्वत्र प्रसिद्ध करने लगीं।

अरे रे! निर्दोष शीलवती नीली पर पापकर्म के उदय से ऐसे महा दोष का मिथ्या कलङ्क लगा। नीली तो धैर्यपूर्वक जिनमन्दिर में पहुँच गयी और 'जब तक यह कलङ्क दूर नहीं होगा, तब तक

मैं भोजन नहीं करूँगी, अनशन व्रत धारण करूँगी' – ऐसी प्रतिज्ञा करके जिनेन्द्रदेव के सामने बैठ गयी और अन्तरङ्ग में जिनेन्द्रदेव के गुणों का स्मरण करके उनका चिन्तवन करने लगी।

अहो! देखो संसार की विचित्रता! अशुभकर्मोदय से धर्मात्मा जीवों पर भी ऐसी विपत्तियाँ आ पड़ती हैं। वस्तुत: तो यह विषम परिस्थितियाँ, धर्मात्मा की कसौटी का काल होता है। **धन्य हैं वे धर्मात्मा जीव, जो इन उदयजन्य स्थितियों में भी धैर्य का परित्याग नहीं करके, जिनधर्म की आराधना में अपना चित्त लगाकर समभाव धारण करते हैं।**

शीलवती नारी पर लगा मिथ्या कलङ्क प्रकृति कैसे देख सकती थी? उसके शील के प्रभाव से उस नगर के रक्षक देवता वहाँ आये और उन्होंने नीली से कहा – 'हे महासती! तू अन्न-जलादि का परित्याग करके अपने प्राणों का परित्याग मत कर! तुझ पर लगा मिथ्या आक्षेप कल प्रात: ही दूर हो जाएगा.... इसलिए तू चिन्ता मत कर।'

उन देवताओं ने राजा को भी स्वप्न में एक बात कही। बस, रात्रि हुई..... नगर का दरवाजा बन्द हो गया। सुबह हुई.... लेकिन नगर का दरवाजा ऐसा बन्द हो गया कि किसी प्रकार से भी नहीं खुला।

नगर रक्षक सिपाही घबड़ाते हुए राजा के पास पहुँचे और यह बात राजा को बताकर द्वार खोलने का उपाय पूछा।

अनेक प्रयत्न करने पर भी दरवाजा नहीं खुला। अन्त में राजा की आज्ञा से जिनमन्दिर से नीली को बुलवाया गया। णमोकार

मन्त्र जपती हुई नीली वहाँ आयी और उसके पैर का स्पर्श होते ही दरवाजा खुल गया....।

सती शिरोमणि के शील का ऐसा प्रभाव देखकर सर्वत्र उसकी जय-जयकार होने लगी और उस पर लगा मिथ्या कलङ्क दूर हुआ।

सागरदत्त ने भी इस घटनाक्रम से प्रभावित होकर अपनी सहधर्मिणी नीली से क्षमा माँगी और जिनधर्म अङ्गीकार करके अपना हित किया।

देखो, परिणामों के परिवर्तन की विचित्रता! क्षणभर पूर्व का जिनधर्म विराधक, अब जिनधर्म आराधक बन गया।

संसार की क्षण-क्षण में बदलती हुई परिस्थितियों से वैराग्य को प्राप्त करके शीलवती नीली ने संसार से विरक्त होकर आर्यिका व्रत अङ्गीकार कर लिया और राजगृही में समाधिमरण किया। वहाँ आज भी एक स्थान 'नीलीबाई की गुफा' के नाम से प्रसिद्ध है और जगत् में शील की महिमा का यशोगान कर रहा है। ●●

- ब्रह्मचारी हरिलाल जैन

5

जिनधर्म की दृढ़ श्रद्धावन्त श्रेष्ठी कन्या बन्धुश्री की कथा

कसौटी : धर्मश्रद्धा की

इस भरतक्षेत्र के मालव देश में अमरावती के समान सुन्दर उज्जैन नगर है। वहाँ के राजा विश्वन्धर थे, उनके राज्य में गुणपाल नाम का एक राजश्रेष्ठी था। उनकी इन्द्राणी के समान सुन्दर धनश्री नाम की स्त्री थी। उन दोनों के लक्ष्मी और सरस्वती के संगमरूप गुणवान बन्धुश्री नाम की पुत्री थी।

एक दिन राजा विश्वन्धर, वनक्रीड़ा के लिए जा रहा था। मार्ग में उसने अपनी सखियों के साथ क्रीड़ा करती हुई श्रेष्ठी कन्या बन्धुश्री को देखा। उस अनिद्य सुन्दरी को देखते ही राजा कामपीड़ित हो गया। वह विचार करने लगा कि इस देवांगना के समान सुन्दरी के अभाव में मेरा जीवित रहना निरर्थक है। ऐसा विचारकर उसने एक दासी को बुलाकर कहा – 'हे दासी! सेठ गुणपाल के घर जा और उन्हें यह सन्देश दे कि राजा आपकी कन्या बन्धुश्री के साथ विवाह करना चाहता है और शीघ्र शुभ मुहूर्त में विवाह की तैयारी करने की आज्ञा दी है; अत: आज्ञा का पालन किया जाए।'

दासी, गुणपाल सेठ के घर पहुँची। सर्व प्रथम उसने सेठ को नमस्कार कर अत्यन्त मधुर स्वर में कहा – 'हे श्रेष्ठीवर्य! मैं आपको प्रसन्नता के शुभ समाचार देने आई हूँ। आपका भाग्य जगा

है कि महाराज विश्वन्धर आपकी पुत्री के साथ विवाह करना चाहते हैं। अरे! महाराज जैसा दामाद मिलना – यह कम गौरव की बात नहीं है। आप महा भाग्यशाली हो, आपकी कन्या के सौभाग्य की तो क्या प्रशंसा करूँ? बन्धुश्री तो अब राजा की पटरानी बनेगी।'

गुणपाल सेठ, दासी के वचन सुनकर विचारने लगे कि कन्या सदा जिनधर्मी / साधर्मी को ही देना चाहिए; विधर्मी को कन्या देना महान पाप है। राज जैनधर्मी नहीं, विधर्मी है; इसलिए कुछ भी हो, मैं विधर्मी राजा को अपनी कन्या नहीं दूँगा। अरे! सांसारिक सुख के लिए धर्म को नहीं बेचा जा सकता। धर्म ही संसार से उद्धार करनेवाला है, धर्म ही जीव का साथी है; इसके बिना जीवन व्यर्थ है।

जो व्यक्ति सांसारिक प्रयोजन में आकर विधर्मी को अपनी कन्या देता है, वह निन्दनीय है। आज तक बन्धुश्री ने वीतरागी देव की सेवा, पूजा, उपासना, भक्ति आदि की है; अब, वह विधर्मी के यहाँ जाने पर अपने धर्म की रक्षा किस प्रकार कर सकेगी? क्या विषय-वासना के लिए धर्म को बेचा जा सकता है? नहीं, नहीं; कदापि धर्म नहीं बेचा जा सकता। मैं अपनी कन्या का विवाह जैन धर्मावलम्बी के साथ ही करूँगा, भले ही वह गरीब ही क्यों नहीं हो। धन तो सांसारिक वस्तु है। आज है, वह कल भी रहेगा –

इसका क्या भरोसा? परन्तु दिगम्बर जैनधर्म शाश्वत वस्तु है। वही आत्मा का साथी है, उसे छोड़कर कोई भी पदार्थ अपना नहीं है; इस प्रकार विचार सागर में मग्न होकर सेठ गुणपाल व्यथित हो गया। उसने राजा की दासी को मीठे वचनों से समझाकर विदा किया।

विचारों के भँवर जाल में फँसे हुए सेठ गुणपाल अपनी पत्नी को बुलाकर उसका अभिप्राय जानने के लिए कहने लगा – 'हे प्रिये! महाप्रतापी महाराज विश्वन्धर अपनी पुत्री बन्धुश्री के साथ विवाह करना चाहते हैं – यह अपने लिए कितने गौरव की बात है! बन्धुश्री पटरानी बनेगी, राजदरबार में अपना मान रहेगा; अत: हमें शीघ्र ही बन्धुश्री के विवाह की तैयारी करना चाहिए।'

सेठ गुणपाल के आन्तरिक अभिप्राय से अपरिचित सेठानी धनश्री कहने लगी – 'हे स्वामिन! आज आपको क्या हो गया है? आप अपने मुख से कैसी विचित्र बातें कर रहे हैं? राजा विश्वन्धर विधर्मी है, मिथ्यादृष्टि है। उसके साथ मेरी पुत्री का विवाह कभी नहीं हो सकता। वीतरागी प्रभु की सेवा के बिना रूप, लावण्य, विद्या, धन, वैभव आदि सब व्यर्थ है। मदोन्मत्त हाथी के पैर के नीचे दबकर मरना ठीक है, परन्तु विधर्मी के साथ कन्या का विवाह करना ठीक नहीं है। जो व्यक्ति, धर्म की अपेक्षा राज्य और वैभव को अधिक महत्त्व देता है, वह निम्न कोटि का है क्योंकि दिगम्बर जैनधर्म के समक्ष राज्य वैभव तो अत्यन्त तुच्छ है; अत: उस क्षणिक वैभव की तुलना दिगम्बर जैनधर्म के साथ नहीं हो सकती।

हे स्वामी! आश्चर्य की बात तो यह है कि आप दिगम्बर

जैनधर्म के मर्मज्ञ होने पर भी ऐश्वर्य को महत्त्व दे रहे हैं! आपने अनित्य सुख को हितकर मान लिया है। क्या आप बन्धुश्री को नरक में डालना चाहते हैं? आपकी पुत्री अत्यन्त धर्मानुरागी है। यदि उसका विवाह विधर्मी के साथ होगा तो उसका उद्धार होना असम्भव है। संसार में अनन्त काल से परिभ्रमण करते-करते दिगम्बर जैनधर्म की प्राप्ति कठिनता से होती है, जो व्यक्ति इस अपूर्व अवसर को पाकर अपना कल्याण नहीं करता, उसके समान मूर्ख दूसरा कौन हो सकता है? विधर्मी राजा के साथ अपनी कन्या का विवाह करना तो कन्या, सिंह को समर्पित करने के समान है। समझ में नहीं आता कि आप सम्पत्ति में मुग्ध कैसे हो गये? धन, वैभव की प्राप्ति में कुछ भी मेहनत नहीं करनी पड़ती, परन्तु धर्म प्राप्त करने में तो बहुत मेहनत करनी पड़ती है। मुझे दृढ़ विश्वास है कि संसार में दिगम्बर जैनधर्मी को वैभव स्वयं प्राप्त होता है; विभूतियाँ उसके चरणों की दासी बन जाती है। **जो क्षणिक ऐश्वर्य को देखकर जैनधर्म को छोड़ देता है, वह काँच का सौन्दर्य देखकर माणिक को छोड़ देनेवाले के समान है।**

मिथ्यादृष्टि का वैभव स्थिर नहीं रहता। उसकी सम्पत्ति थोड़े ही दिनों में नष्ट हो जाती है और वह दर-दर का भिखारी बनकर भटकता है। ऐश्वर्य होना, वह कोई बड़प्पन नहीं है, परन्तु सत्य दिगम्बर जैनधर्म को धारण करने से ही मनुष्य बड़ा / महान गिना जाता है।

आप बुद्धिमान हो, धर्मात्मा हो, धर्म के वास्तविक स्वरूप को जाननेवाले हो, तो भी आपको ऐसा भ्रम क्यों हुआ? आप स्वयं

विचार करो, मेरी बात कैसी लगती है ? मैं आपको क्या उपदेश दे सकती हूँ ? आप विशेषज्ञ हो, शास्त्र की मर्यादा के ज्ञाता हो; इस कारण मुझे आपकी आज्ञा ही शिरोधार्य है। मैंने तो मात्र अपने विचार आपके समक्ष प्रस्तुत किये हैं। आप स्वयं समझदार हैं, सोच-समझकर उचित निर्णय करें।'

अपनी सहधर्मिणी की यह सब बात सुनकर सेठ गुणपाल अपनी पत्नी से कहता है – 'हे देवी! तुम्हारी बुद्धि और उच्च विचार जानकर मेरे हृदय में अत्यन्त प्रसन्नता हुई है। मैंने तो मात्र तुम्हारी परीक्षा ली थी। विधर्मी को कन्या देने के पक्ष में मैं भी सर्वथा नहीं हूँ। मेरा विचार कन्या का विवाह साधर्मी के साथ ही करने का है।

मेरा विचार है कि अब बन्धुश्री को बुलाकर उसके विचार जान लेना चाहिए, क्योंकि विवाह में कन्या की सलाह लेना भी आवश्यक है।'

सेठ गुणपाल ने बन्धुश्री को बुलाकर प्रेमपूर्वक कहा – 'बेटी! तुम्हारे समान पुण्यवान कौन होगा! अरे! मालव नरेश ने ही स्वयं तेरे साथ विवाह करने का प्रस्ताव भेजा है और विवाह होने के तुरन्त बाद तुझे पटरानी का पद अर्पण करेंगे। तू समस्त राज्यसुख भोगेगी। हमारा भी भाग्य जागेगा और समस्त देश हमारा सम्मान करेगा। राजा भी मुझे उच्चासन देगा। जब तेरे पुत्र को राज्य शासन मिलेगा, तब हमारी प्रतिष्ठा तो बहुत ही बढ़ जाएगी। बेटी! हम धन्य हैं कि हमें तेरे समान कन्या प्राप्त हुई। आज हमारे समान सौभाग्यशाली कौन होगा ? ऐसा सुअवसर तो पुण्यात्माओं को ही प्राप्त होता है।'

पिताश्री के ऐसे उल्टे शब्द सुनकर बन्धुश्री खेदपूर्वक कहती है – 'पिताजी! क्षमा करना, आज आपको यह क्या हो गया है? आप मुझे सांसारिक वैभव में लुभाना चाहते हैं। आप विधर्मी के साथ मेरा विवाह करके मेरे धर्म को नष्ट करना चाहते हैं? मैं वासना-लोलुपी नहीं हूँ। धर्म को कोड़ी के मोल में बेचना, यह बुद्धिमानी नहीं है। क्या आप नहीं जानते कि यह दिगम्बर जैनधर्म ही समस्त प्राणियों का हितकारक है? यह धर्म ही त्रिभुवन में उत्तम, पूज्य और वन्दनीय है। समस्त सुख प्रदाता यह दिगम्बर जैनधर्म ही है। इस उत्तम धर्म को धारण करने से ही मोक्ष लक्ष्मी प्राप्त होती है – ऐसा जैनधर्म महान पुण्योदय से ही प्राप्त होता है।'

पिताजी! ध्यानपूर्वक सुनना, मैं आपको दिगम्बर जैनधर्म की दृढ़ता का एक प्रसङ्ग सुनाती हूँ – ऐसे तो अनेक प्रसङ्ग पूर्व में बन गये हैं।

★ ★ ★

महारानी चेलना, राजगृही में आकर महाराज श्रेणिक के साथ परिणय-सूत्र में बँधती हैं। अचानक उनका ध्यान जाता है कि महाराज श्रेणिक का घर परम पवित्र जैनधर्म से रहित है। हाय! पुत्र अभयकुमार ने महान बुरा किया! मेरे नगर में छल से जैनधर्म का वैभव बताकर मुझ भोलीभाली को ठग लिया। अहा! जिस घर में पवित्र जिनधर्म की प्रवृत्ति है, वही घर वास्तव में उत्तम है परन्तु जहाँ पवित्र जैनधर्म की प्रवृत्ति नहीं है, वह घर, राजमहल होने पर भी कभी उत्तम नहीं कहा जा सकता। वस्तुत: ऐसा घर तो पक्षियों के घोंसले के समान है।

अरे! संसार में धर्म हो और धन न हो तो, धर्म के पास धन का न होना तो ठीक है, परन्तु धर्म के बिना अतिशय मनोहर सांसारिक सुख का केन्द्र – ऐसा चक्रवर्तीपना भी उत्तम नहीं है। भयङ्कर वन में निवास करना उत्तम है, अग्नि में जलना और विष से मृत्यु होना भी उत्तम है तथा समुद्र में मरण हो, वह भी ठीक है, परन्तु जैनधर्मरहित जीव का जीवन अच्छा नहीं है। पति भले ही कदाचित् बहुत गुणों का भण्डार हो, तथापि वह जिनधर्मी न हो तो किस काम का? क्योंकि कुमार्गगामी पति के सहवास से इस भव, पर भव में अनेक प्रकार के दु:ख ही भोगने पड़ते हैं। हाय! मैंने पूर्व भव में ऐसे कौन से घोर पाप किये थे कि जिससे मुझे इस भव में जिनधर्म से विमुख रहना पड़ा?

इस प्रकार जिनधर्मी चेलना पवित्र जैनधर्मरहित घर और पति मिलने पर विलाप करती है।

★ ★ ★

महारानी चेलना के जीवन का यह प्रसङ्ग सुनकर बन्धुश्री कहने लगी –

'पिताजी! मुझे महान आश्चर्य हो रहा है कि आप गृहीत मिथ्यादृष्टि के साथ मेरा विवाह करने के लिए किस प्रकार तैयार हो गये? क्या आप मेरा हित नहीं चाहते? हितैषी होकर भी विधर्मी के साथ मेरा विवाह करने को तैयार हुए हो? मेरे लिए धर्म के समक्ष राज-वैभव तो राख के समान है। आज आपको अपने सम्मान का ख्याल आता है, परन्तु विधर्मी के साथ मेरा विवाह करने की अपेक्षा आप मेरी हत्या कर दें तो बहुत श्रेष्ठ है। अरे रे!

आप पिता होकर भी मेरा अनिष्ट करने के लिए तैयार हो गये हो। क्या इस समय कोई मेरी रक्षा नहीं करेगा?' – ऐसा कहकर बन्धुश्री रुदन करने लगी।

बन्धुश्री की धर्मश्रद्धा देखकर गुणपाल सेठ, बन्धुश्री से कहता है – 'हे पुत्री! तुझे धन्य है, आज मेरा जीवन सफल हुआ। तुझ जैसी पुत्री पाकर मैं बहुत गौरव का अनुभव कर रहा हूँ। बेटी! यह तो मात्र तेरी परीक्षा ही थी, इसमें तू पूर्णरूपेण सफल हुई है। बेटी! जब तक मैं जीवित हूँ, वहाँ तक तेरा विवाह विधर्मी के साथ कभी नहीं होने दूँगा।'

★ ★ ★

गुणपाल सेठ विचार करने लगा कि यहाँ रहने से राजा बलपूर्वक मेरी कन्या के साथ विवाह कर लेगा और राजाज्ञा उल्लङ्घन का दण्ड भी भोगना पड़ेगा; अत: यह

नगर छोड़कर चले जाने से ही पुत्री की रक्षा हो सकेगी। इस प्रकार विचार करके सेठ गुणपाल अपनी एक अरब, आठ करोड़ की सम्पत्ति और अपना देश छोड़कर रातोंरात पुत्री के साथ वहाँ से निकल पड़े।

जब राजा को ज्ञात हुआ कि सेठ गुणपाल अपनी समस्त सम्पत्ति ज्यों की त्यों छोड़कर, अपनी पुत्री को लेकर चले गये हैं

तो वह विचारने लगा कि वह धर्मात्मा, मुझ पापी, कुकर्मी को कन्या देना उचित नहीं समझता; इस कारण यहाँ से चुपचाप रातों –रात चला गया। अहो! वास्तव में दिगम्बर जैनधर्म जीवों का कल्याण करनेवाला है। मैंने कुधर्म का सेवन करके अपना जीवन बर्बाद किया है। इस प्रकार विचार करने पर राजा की बुद्धि / रुचि कुधर्म से परिमुक्त हो गयी और उसने जिनधर्मानुयायी सेठ गुणपाल को खोजने के लिए चारों तरफ अपने अनुचर भेज दिये। ●●

(– नयसेनाचार्य रचित धर्मामृत के आधार से)

6

वीतरागी सन्त पर मिथ्या आक्षेप का फल —

सीताजी को मिथ्या आक्षेप क्यों?

वीतरागी देव-शास्त्र-गुरु का अवर्णवाद, दर्शनमोह के बन्ध का कारण तो है ही; साथ ही इस दुष्कृत्य से होनेवाले पापबन्ध के फलस्वरूप अनेक विषम परिस्थितियाँ भी निर्मित होती हैं। सती सीताजी पर लगे मिथ्या आक्षेप के कारण में यही कृत्य रहा है। इस सम्बन्ध में पद्मपुराण में समागत कथा हमें वीतरागी देव-शास्त्र-गुरु के अवर्णवाद / अविनय से बचने की पावन प्रेरणा देती है।

सीताजी पर झूठा दोष-आक्षेप-कलङ्क क्यों लगा? इसके विषय में केवली भगवान कहते हैं – कि जब सीताजी का जीव, पूर्व में वेदवती के भव में था, उस समय लक्ष्मण का जीव वेदवती का पिता श्रीभूति पुरोहित महाजिनधर्मी था और उसकी पुत्री वेदवती महासुन्दर, रूपवती थी। राजा का पुत्र शम्भूकार वेदवती को चाहता था परन्तु वह विधर्मी था और वेदवती के पिता जिनधर्मी के अतिरिक्त अन्य किसी को अपनी पुत्री नहीं देना चाहते थे; इसलिए शम्भूकार ने वेदवती के पिता को मारकर वेदवती के साथ बलात्कारपूर्वक मैथुन सेवन किया।

इस दुष्कृत्य से क्षुब्ध कुमारी ने क्रोधित होकर शम्भूकार से कहा – रे नीच, पापी! तूने मेरे साथ बलात्कार करके, मेरा शीलभङ्ग किया है; इसलिए अगले भव में मैं तेरे नाश का कारण

होऊँगी – ऐसा कहकर उसने आर्यिका माताजी के समीप आर्यिका दीक्षा ग्रहण कर ली और तप करके स्वर्ग में गयी। वहाँ से चयकर जनक –पुत्री सीता होकर रावण के नाश का कारण हुई।

उसने गुणवती के भव में भी मुनि की निन्दा की थी और वेदवती के भव में भी जब एक बार मुनिराज सुदर्शन वन में आये तो उन मुनिराज की बहिन जो कि आर्यिका थी, उसे मुनिराज के समीप धर्मश्रवण करते देखकर वेदवती ने गाँव के लोगों के पास जाकर उनकी निन्दा की कि मैंने मुनि को अकेली स्त्री के समीप बैठे देखा है। वेदवती के इस आक्षेप को कुछ लोगों ने सत्य माना और कुछ समझदार मनुष्यों ने नहीं माना परन्तु गाँव में मुनि का अपवाद हो गया। मिथ्या अपवाद से क्षुब्ध मुनिराज ने प्रतिज्ञा की कि यह मिथ्या अपवाद दूर होगा तो आहार के लिए निकलूँगा, वरना नहीं निकलूँगा।

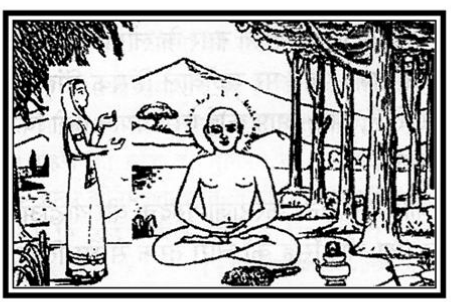

उस समय नगर की देवी ने वेदवती के मुख से गाँव के समस्त लोगों से कहलवाया कि मैंने मुनि का मिथ्या अपवाद किया था, वास्तविकता तो यह है कि वे दोनों तो भाई–बहिन हैं; इतना ही नहीं, वेदवती ने मुनिराज के पास जाकर

क्षमा याचना करते हुए कहा – हे प्रभो! मुझ पापिन ने जो मिथ्या वचन कहे थे, उन्हें आप क्षमा करें।

क्षमा के सागर मुनिराज तो शान्तस्वरूपी होते ही हैं, उन्होंने वेदवती के प्रति किञ्चित् भी कषाय परिणाम नहीं किये। मुनिराज के इस क्षमाभाव से वेदवती को अपने दुष्कृत्य का महा पश्चाताप हुआ।

इस प्रकार सीताजी के जीव ने पूर्वभव में निर्दोष मुनि की निन्दा की थी; इसलिए सीताजी पर मिथ्या आरोप लगा और तत्पश्चात् पश्चाताप करते हुए मुनिराज से क्षमा याचना की, इसलिए सीताजी का अपवाद दूर हुआ।

इस कथानक से शिक्षा ग्रहण करते हुए जो जिनमार्गी हैं, वे कभी भी पर-निन्दा नहीं करें। ज्ञानी तो किसी में सच्चा दोष हो तो भी उसे सार्वजनिकरूप से नहीं कहते, कोई कहता हो तो उसको रोकते हैं; अन्य का दोष सर्वथा ढँकते हैं और सम्भव हो तो उसका स्थितिकरण करने का प्रयास करते हैं।

जो कोई पर-निन्दा करते हैं, वे अनन्त काल तक संसार वन में दु:ख भोगते हैं। सम्यग्दृष्टि का बड़ा गुण यह है कि वह अन्य के अवगुण सर्वथा ढाँके। अन्य का सच्चा दोष भी निन्दा के भाव से कहनेवाला तो अपराधी है और अज्ञान से, मत्सरभाव से अन्य का मिथ्यादोष प्रगट करे, उसके समान अन्य कोई पापी नहीं है। अपने दोष, गुरु के समीप प्रकाशित करना और अन्य के दोष सर्वथा ढाँकना चाहिए।

केवली के मुख से यह मिथ्या दोषारोपण की बात सुनकर

सभा के लोग महा दु:ख के भय से कम्पायमान हुए और उन्होंने दोषारोपण के भावों का त्याग किया। कितने ही जीव प्रतिबोध को प्राप्तकर मुनि हुए और कितने ही मिथ्यादृष्टि थे, वे सम्यग्दृष्टि हुए।

(इस प्रकार सीताजी के अपवाद का कारण मुनिनिन्दा का फल जानकर देव-शास्त्र-गुरु और साधर्मी के प्रति वैरभाव -मत्सरभाव से सावधान होने का बोध यह कथा देती है।) ●●

[- श्री पद्मपुराण के आधार से]

7

द्रोपदी के जीव की भवावली

देखो, देखो! विराधना का फल

इस भरतक्षेत्र में चम्पापुरी के राजा मेघवाहन की नगरी में सोमदेव ब्राह्मण और उसकी पत्नी सोमीला रहते थे। उनके तीन पुत्र थे, जिनके नाम सोमदत्त, सोमिल और सोमभूति थे। उनके मामा का नाम अग्निभूति, मामी का नाम अग्निला था; उनकी तीन पुत्रियाँ धनश्री, मित्रश्री और नागश्री थीं। इन तीनों का विवाह क्रमशः सोमदत्त, सोमिल, और सोमभूति के साथ हुआ। इस प्रकार सोमदेव का पूरा परिवार महाजिनधर्मी, संसार-शरीर से उदास और शास्त्रज्ञ था, किन्तु तीसरे भाई की पत्नी नागश्री धर्म से विमुख थी।

एक दिन धर्मरुचि नाम के मुनिराज, आहार के समय, श्रावक का घर जानकर बड़े भाई सोमदत्त के यहाँ आहार के लिए पधारे। किसी कार्य की आकुलतावश सोमदत्त अपने छोटे भाई की पत्नी नागश्री को आहारदान की आज्ञा करके चले गये। उस पापिन ने अत्यन्त क्रूरभाव से मुनिराज को विषसहित आहार दिया। वे समभावी महामुनि उस तो उस आहार से समाधिमरण पूर्वक प्राण त्याग कर सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र हो गये।

तीनों भाईयों ने नागश्री का यह कुकृत्य जानकर, वरण नामक

मुनिराज के समीप जिनदीक्षा धारण कर ली और दोनों भाईयों की पत्नियाँ धनश्री व मित्रश्री ने गुणवती आर्यिका के समीप आर्यिका व्रत ग्रहण कर लिये। संसारवास से विरक्त होकर तीनों मुनि और दोनों आर्यिकाएँ रत्नत्रय की शुद्धता के लिए तपश्चरण में उद्यमवन्त हुए।

श्रीगुरु के मुख से दर्शन-ज्ञान-चारित्र के भेद धारणकर सोमदत्त आदि तीनों भाई मुनि और दोनों आर्यिकाएँ आराधना आराधकर आरण-अच्युत स्वर्ग में बाईस सागर की आयु के धारक देव हुए।

✦ ✦ ✦

इधर तीसरे भाई की पत्नी नागश्री, जिसने मुनिराज को आहार में विष दिया था, मरकर पाँचवें नरक गयी। वहाँ सत्रह सागर तक महादु:ख भोगा। वहाँ से निकलकर तिर्यञ्च हुई तथा दो सागर तक त्रस-स्थावर योनियों में भ्रमण किया। तत्पश्चात् चम्पापुर में एक चाण्डाल की पुत्री हुई। वहाँ समाधिगुप्त मुनिराज का उपदेश प्राप्त कर, मद्य-माँस-मधु का त्याग किया। वहाँ से मरकर चम्पापुर में ही सुबन्धु नामक सेठ की सुकुमारिका नाम की पुत्री हुई, परन्तु पूर्व के पापोदय से शरीर रूपवान होने पर भी महादुर्गन्धयुक्त था; इस कारण कोई उससे विवाह नहीं करता था।

उसी चम्पापुरी में धनदेव नामक सेठ के दो पुत्र थे। उनमें से बड़े पुत्र जिनदेव के साथ दुर्गन्धा की सगाई हुई, किन्तु वह इस सम्बन्ध में खेद-खिन्न होकर, मुनि हो गया। उसके छोटे भाई जिनदत्त ने परिवार के आग्रह से दुर्गन्धा के साथ विवाह तो कर लिया, परन्तु वह भी उसे छोड़कर देशान्तर चला गया।

इस कारण दुर्गन्धा अपनी निन्दा करती हुई तप करने लगी। एक दिन उसके गृह में क्षाता नामक आर्यिका आहार के लिए पधारी। उन्हें आहार के पश्चात् उनके साथ दो नवयौवन आर्यिकाओं को देखकर दुर्गन्धा ने बड़ी अर्यिकाजी से पूछा – हे माताजी! ये दोनों आर्यिकाएँ अति रूपवान हैं, इनको नवयौवन में किस कारण वैराग्य हुआ है।

तब दयावान आर्यिका माताजी उनके वैराग्य का कारण दुर्गन्धा को प्रतिबोधनार्थ कहने लगी – 'हे सुकुमारी! जिस कारण से इन दोनों को वैराग्य हुआ, वह तू भी सुन –

✦ ✦ ✦

ये दोनों आर्यिकाएँ पूर्व भव में सौधर्म इन्द्र की देवियाँ थीं। एक का नाम विमला और दूसरी का नाम सुप्रभा था। एक दिन ये नन्दीश्वर द्वीप में जिनपूजा के लिए गयीं थीं, वहीं इनको वैराग्य उत्पन्न हुआ। तब इन दोनों ने प्रतिज्ञा की कि देवगति में तो तप नहीं है, किन्तु हम मनुष्यभव पाकर महातप करेंगी, जिससे स्त्रीपर्याय का अभाव होकर भवभ्रमण का अभाव हो।'

इस प्रकार प्रतिज्ञाबद्ध होकर, देवपर्याय से च्युत होकर, साकेतपुरी में राजा श्रीषेण की रानी श्रीकान्ता की पुत्रियाँ हुईं। जब ये दोनों यौवनवन्ती हुई, तब पिता ने इनका स्वयंवर रचा। उसी समय इन दोनों बहिनों को पूर्व जन्म की प्रतिज्ञा का स्मरण हो आया

और इससे ये परिवार का त्याग करके आर्यिका हुईं हैं।

आर्यिका माताजी के यह वचन सुनकर, वैराग्य उत्पन्न होने से दुर्गन्धा भी आर्यिका हो गयी। आर्यिका माताजी के साथ रहकर तपश्चरणादि करके उसने अपने शरीर को सुखा दिया, किन्तु मिथ्यात्व का परित्याग नहीं कर पायी।

एक दिन बसन्तसेना वेश्या वन में पाँच पुरुषों के साथ क्रीड़ा करने आई थी, उसे देखकर दुर्गन्धा को यह भाव उत्पन्न हुआ कि अहा! यह कैसी भाग्यवती है! ऐसा घृणित परिणाम उत्पन्न होने से अपयशप्रकृति का बन्ध हो गया, इसी कारण जगत के अज्ञानी लोग द्रोपदी को पञ्च भरतारी कहते हैं।

तत्पश्चात् वह तपस्विनी समाधिमरण करके, पूर्व के नागश्री के भव का पति, जो सोमभूति का जीव स्वर्ग में देव था, उसकी देवी हुई।

वहाँ की आयु पूर्ण करके, वहाँ से च्युत होकर सोमदत्त, सोमदेव, सोमभूति – ये तीनों राजा पाण्डव की रानी कुन्ती के तीन पुत्र – युधिष्ठर, भीम, अर्जुन हुए और धनश्री, मित्रश्री के जीव, रानी माद्री के नकुल और सहदेव नाम के पुत्र हुए तथा नागश्री का जीव, राजा द्रुपद की रानी दृड़रथा के द्रोपदी नाम की पुत्री हुई। पूर्व भव के स्नेहवश अर्जुन के साथ उसका विवाह हुआ।

पाण्डवों ने पूर्व भव का यह वृतान्त श्री नेमिजिनेन्द्र की दिव्यध्वनि से ज्ञात किया। उन्होंने यह भी जाना कि युधिष्ठर, भीम, अर्जुन – तीनों भाई तो इसी भव में मोक्ष जाएँगे और नकुल –सहदेव सर्वार्थसिद्धि जाकर, एक भव धारण करके मोक्ष प्राप्त

करेंगे। द्रोपदी शुद्ध तप के प्रभाव से अच्युत स्वर्ग में देव होगी और वहाँ से मनुष्य होकर निरञ्जनधाम प्राप्त करेगी। इस प्रकार पूर्व की भवावली सुनकर उन्होंने संसार से विरक्त होकर तत्काल जिनेश्वर के समीप संयम अङ्गीकार किया। माता कुन्ती, द्रोपदी, सुभद्रा आदि अनेक रानियाँ भी राजमती आर्यिका के समीप आर्यिका हो गयीं।

द्रोपदी के जीव ने नागश्री के भव में क्रोधित होकर मुनिराज को विषमय आहार दिया, उन परिणामों का फल बाईस सागर तक नरकादि दु:खों को भोगा और दुर्गन्धा के भव में आर्यिका होने पर भी, वेश्या के साथ पाँच पुरुषों को देखकर, उसे सौभाग्यशाली का भाव आया, जिससे अपयशप्रकृति का बन्ध होने से लोक में पञ्च भरतारी कहलायी। इस वृतान्त को जानकर हमें यह बोध ग्रहण करना चाहिए कि अपने परिणाम नहीं बिगाड़ना। ●●

(-पाण्डव पुराण से)

8

राजा कीचक और द्रोपदी की भवावली

एक विराट नाम का नगर था। वहाँ राजा विराट राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम सुदर्शना था। उसके यहाँ पाँच पाण्डव और द्रोपदी गुप्तवेष (अज्ञातवास) में रहे। युधिष्ठर तो पण्डित बनकर रहे, भीम रसोईया बनकर रहे, अर्जुन नृत्याङ्गना बनकर रहे, नकुल-सहदेव घोड़ों को सम्भालनेवाले बनकर रहे और द्रोपदी मालिन बनकर रही। राजा विराट के सन्मानसहित एवं यथाशक्ति सुख-शान्ति से सावधानी से गुप्त वेष में रहते हैं।

✦ ✦ ✦

एक चूलिका नाम की नगरी थी। उस नगरी का राजा चूलिका था। उसकी रानी का नाम विकचा था। उनके एक सौ पुत्र थे। उन एक सौ भाईयों में कीचक सबसे बड़ा था और दुराचार में भी बड़ा था। उसको रूपमद, यौवनमद, चातुर्यमद, शूरवीरता का मद और धन का मद था। ऐसे मदों से वह उन्मत्त था। राजा विराट की रानी सुदर्शना, कीचक की बहिन होती थी। कीचक अपनी बहिन से मिलने के लिए विराटपुर आया। वह द्रोपदी को देखकर उस पर कामासक्त हो गया। उस पापी ने यह नहीं जाना कि यह महासती है।

कैसी है द्रोपदी? महासुगन्धित है शरीर जिसका। उस शरीर की सुगन्ध से दसों दिशाएँ सुगन्धित हो जाती है और रूप-लावण्य

सौभाग्य गुण से युक्त है। उसके दर्शनमात्र से ही कीचक महामानी होने पर भी, उसका मन द्रोपदी में आसक्त हुआ और दीनता से अनेक उपाय करके द्रोपदी को लोभ दिखाने लगा परन्तु वह महासती, जिसको परपुरुष तृण समान है; उस दुष्ट की बलजोरी से आक्रान्त होकर उसने भीमसेन को सम्पूर्ण वृतान्त से अवगत कराया। भीमसेन के निर्देशानुसार उसने कीचक से झूठी वार्ता करके विश्वास उत्पन्न किया।

महाधीर भीमसेन रात्रि में द्रोपदी का वेष धारण करके कीचक ने जहाँ सङ्केत दिया था, वहाँ एकान्त में गया। महा कामासक्त कीचक उसी को द्रोपदी समझकर तुरन्त ही उसके पास आया। जैसे हाथी स्पर्शन इन्द्रिय के वश में होकर गड्डे में गिरने आता है, वैसे ही वह भीमसेन को द्रोपदी समझकर उसके पास आया। भीम ने दोनों हाथो से उसका गला पकड़ा और वहीं जमीन पर पछाड़ दिया, पैरों से मसला, मुक्कों का प्रहार किया और जैसे पर्वत पर वज्र पड़ते हैं, उसी प्रकार कीचक पर भीम की मुट्ठी पड़ी। उस परदारारत कामी कुशील के अभिलाषी को अन्याय का फल दिखाकर भीम ने छोड़ दिया। जो दयावन्त उज्ज्वल मन हैं, वे ऐसे पापी को भी नहीं मारते; समस्त जीवों पर दयाभाव रखते हैं।

कीचक भी पाप का फल प्रत्यक्ष देखकर विषय से विरक्त हुआ और उसके मन में अपने दुष्कृत्य के पश्चाताप के साथ-साथ वैराग्यभाव हिलोरें लेने लगा।

देखो! परिणामों की विचित्रता!! थोड़ी देर पहले विषयाभिलाषा

के तीव्र पापपरिणाम और थोड़ी देर बाद शान्तभावरूप वैराग्य परिणाम!

✦ ✦ ✦

वैरागी परिणाम से युक्त कीचक ने रतिवर्धन नाम के मुनि के समीप जाकर मुनिव्रत अङ्गीकार कर लिया और भावों की शुद्धता से भावना भाकर शुद्धरत्नत्रय का आराधन करके वन में ध्यानारूढ़ हुआ।

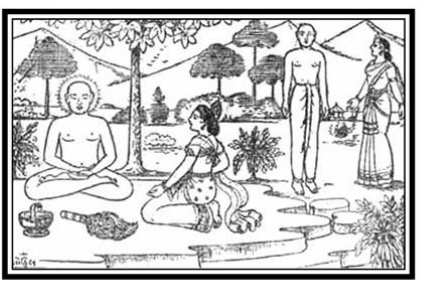

एक समय एक यक्ष ने उसे ध्यानावस्था में देखा, तब यक्ष ने विचार किया कि यह द्रोपदी के प्रति कामासक्त थे; अत: अब देखूँ कि इनके वैराग्य में कैसी दृढ़ता है? इस विचार से उस यक्ष ने कीचक मुनि की परीक्षा के लिए अर्द्धरात्रि में द्रोपदी का रूप दिखाया और कामयुक्त, उन्मादरूप मीठे शब्द सुनाये, परन्तु वे मुनिराज तो उसके शब्द सुनकर भी बहरे के समान हो गये, उसका रूप देखकर भी अन्ध के समान हो गये। रूप महामनोहर विलासरूप, परन्तु अन्धा कैसे देखे? महासुन्दर शृङ्गाररस से युक्त शब्द, परन्तु बहरा कैसे सुने?

कैसे हैं कीचक मुनि? जिन्होंने इन्द्रियसमूह को वशीभूत किया है, जिनका मन शुद्ध हुआ है। उसी समय कीचक मुनि को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। तब यक्षदेव ने उन्हें नमस्कार करके क्षमायाचना की और पूछने लगा कि 'प्रभो! आपका द्रोपदी के प्रति

मोह होने का क्या कारण है ?' तब कीचक केवली अपने और द्रोपदी के कितने ही पूर्व भव इस प्रकार कहने लगे –

✦ ✦ ✦

'हे यक्ष! यह तरङ्गिणी नाम की नदी, जिसमें वेगवती नाम की नदी का मिलाप हुआ है, उस नदी के किनारे महादुष्ट क्षुद्र नाम का म्लेच्छ था। वह महापापी, गरीब, जीवों का वैरी था। वह मैं, साधु के दर्शन से शान्त हुआ और मरकर उत्तम मनुष्य हुआ। वहाँ मेरा नाम कुमारदेव था और धनदेव (सोमभूति – अर्जुन का जीव) मेरा पिता और सुकुमारी (नागश्री – द्रोपदी का जीव) मेरी माता थी। उस पापिन ने मुनि को आहार में विष देकर मारा और मुनि हत्या के पाप से नरक में महादु:ख भोगकर तिर्यञ्च हुई। इस प्रकार अनेक भव नरक-तिर्यञ्च के किये। मैं कुमारदेव उसका पुत्र, म्लेच्छ से मरकर उत्तम कुल को तो पाया, परन्तु यति अथवा श्रावक के व्रतों का पालन नहीं किया और अज्ञान से अनेक भवों में भ्रमण किया।

एक सीत नामक तापस था, उसकी मृगसंगिनी नाम की तापसी का मैं मधु नाम का पुत्र हुआ। उस तापस के आश्रम में मैं बड़ा हुआ। एक विनयदत्त नाम के मुनि को किसी एक भाग्यवान पुरुष ने आहारदान दिया, उसके पञ्चाश्चर्यों का अतिशय देखकर मैं मुनि हुआ और वहाँ से स्वर्ग में गया, वहाँ से आकर कीचक हुआ हूँ।

कुमारदेव की पर्याय में सुकुमारी (नागश्री) नाम की मेरी माता ने चिरकाल तक संसार भ्रमण करके दुर्भगा, दुर्गन्धा, अनुमति नामक मनुष्यनी होकर महादु:ख भोगा। तत्पश्चात् आर्यिका होकर

निदानसहित तप किया। जिसके प्रभाव से देवयोनि पाकर फिर द्रोपदी हुई। अनेक भव में उसके और हमारे सम्बन्ध हुए। किसी जन्म में माता, कभी बहिन, कभी पुत्री और कभी स्त्री हुई; इस कारण मुझे उसके प्रति मोह हुआ।

यहाँ गौतमस्वामी, राजा श्रेणिक से कहते हैं कि 'हे श्रेणिक! इस संसारचक्र के परिभ्रमण में संयोग का वियोग होता है। माता मरकर बहिन होती है, बेटी होती है और स्त्री होती है और स्त्री मरकर माता होती है, बहिन होती है, बेटी होती है। – यह संसारचक्र का चरित्र है – ऐसी संसारचक्र की विचित्रता जानकर भव्य जीव, वैराग्य को अङ्गीकार करके मोक्ष के लिए महातप करने का प्रयत्न करो।'

(कीचक ने विषय-वासना के तीव्र प्रभाव से मरणतुल्य मार खाई और उससे तीव्र वैराग्यभाव प्राप्त करके मुनिदीक्षा लेकर उग्र आराधना में उपसर्ग से चालित न होकर केवलज्ञान और मुक्ति की साधना की। जीव अज्ञानभाव से कैसे-कैसे आत्मघातक भाव करता है और सम्यग्ज्ञान के बल से कैसे अपने को संसार से बचाकर मुक्ति को प्राप्त करता है – इस तथ्य का बोध इस कथा से प्राप्त होता है।) ●●

9

दो सखी : सीता और अञ्जना का मिलन

धन–धन साधर्मी मिलन की घड़ी

सीताजी के अपहरण से आहत होकर राम–रावण का युद्ध हुआ और लक्ष्मण के द्वारा रावण मरण को प्राप्त हुआ। राम, लक्ष्मण, सीता अपने सहयोगी हनुमान आदि सभी बन्धुवर्ग के साथ लंका में कुछ समय रहकर अयोध्यापुरी आये। उस समय हनुमान भी साथ ही थे। श्री राम के शुभागमन से अयोध्या नगरी में आनन्द–आनन्द छा गया। कुछ दिनों बाद हनुमान ने अपनी नगरी जाने के लिए विदाई माँगते हुए श्रीराम से कहा –

'हे राम! आप हमारे परम मित्र हो। यद्यपि आप का सङ्ग छोड़ना मुझे जरा भी अच्छा नहीं लगता परन्तु हे देव! जैसे, आपके विरह में कौशल्या माता बेचैन थीं; वैसे ही मेरी माता अञ्जना भी मेरे विरह में बेचैन होंगी और प्रतिदिन मुझे याद करती होंगी, इसलिए मुझे जाने की आज्ञा दीजिए।'

हनुमान के वचन सुनकर सीता ने कहा – 'बन्धु हनुमान! तुम मेरे भाई हो.... लंका में रावण की अशोकवाटिका में आकर तुमने मुझे रघुवीर के कुशल समाचार दिये थे और 11 दिन के उपवास

के पारणे में मुझे भोजन कराया था, तब से तुम मेरे धर्म भाई बने हो। मैंने तुम्हारी अञ्जना माता को कभी नहीं देखा है। मैं अञ्जना माता को अपनी नजरों से देखना चाहती हूँ; इसलिए मैं भी तुम्हारे साथ ही चलूँगी।'

हनुमान ने कहा – 'वाह बहिन! आपके समान सती धर्मात्मा हमारे घर पधारे... यह तो महाभाग्य की बात है। माँ अञ्जना आपको देखकर अति प्रसन्न होंगी।'

इस प्रकार हनुमान, सीताजी को साथ लेकर कर्णकुण्डलनगरी पहुँचे। वहाँ पहुँचने पर सीताजी का भव्य सम्मान किया गया। अञ्जना माता को देखते ही सीता उनसे पुत्री के समान गले लग गयी। हनुमान ने भी माता को वन्दन करके कहा –

'हे माता! यह महासती सीताजी अयोध्या की राजरानी और मेरी धर्म बहिन हैं।'

अञ्जना ने कहा – 'वाह बेटी सीता! तुझे देखकर बहुत आनन्द हुआ' – ऐसा कहती हुई अञ्जना ने सीता और हनुमान दोनों के सिर पर हाथ फेरकर आशीर्वाद दिया। सभी एक दूसरे से मिलकर अत्यन्त प्रसन्न हुए।

सीता ने कहा – 'माँ! आप मेरी भी माता हो। यह हनुमान मेरा धर्म भाई है; इसने मुझ पर बहुत उपकार किया है।'

अञ्जना ने कहा – 'बेटी सीता! साधर्मी भाई-बहिन सङ्कट के समय में एक-दूसरे की सहायता करें, इसमें क्या आश्चर्य है? उसमें भी हनुमान का हृदय तो अति कोमल है; वह स्वयं वन में

जन्मा है न! अत: किसी का दु:ख देख नहीं सकता, इसलिए सभी इसे 'पर दु:ख भञ्जक' कहते हैं।'

सीता तो अपने भ्राता हनुमान के गुनगान सुनती-सुनती थकती भी नहीं थी। भाई की प्रशंसा बहिन को आनन्द उपजावे, इसमें क्या आश्चर्य है?

अञ्जना कहती है - 'हे देवी सीता! तू भी धर्मात्मा है, तेरा शील जगत् में प्रसिद्ध है; तेरे जैसी गुणवान धर्मात्मा बहिन, हनुमान को मिली, यह तो प्रशंसनीय है। धर्मात्मा भाई-बहिन की ऐसी सरस जोड़ी देखकर मेरे हृदय को अत्यन्त शान्ति प्राप्त हुई है।'

सीता को यहाँ बहुत अच्छा लगता है, उन्हें अयोध्यानगरी की तो याद भी नहीं आती। वे माता अञ्जना के साथ बारम्बार आनन्द से धर्म चर्चा करती है। दोनों माँ-बेटी का हृदय दो सखियों के समान एक-दूसरे के साथ खूब हिल-मिल गया है। सीता और अञ्जना, अञ्जना और सीता.... दोनों ने वनवास भुगता है, दोनों के जीवन में चित्र-विचित्र प्रसङ्ग बने हैं, दोनों चरमशरीरी पुत्रों की माता हैं, दोनों जिनधर्म की परम भक्त हैं, दोनों सखियाँ महान् सती, धर्मात्मा और आत्मा की ज्ञाता हैं।

✦ ✦ ✦

दोनों धर्म वत्सल माँ-पुत्री प्रतिदिन धर्मचर्चा करती थी। आईये! हम भी उनकी धर्मचर्चा में सहभागी बनें।

'माँ! अपना जैनधर्म कैसा महान है? संसार में सङ्कट की परिस्थिति में जैनधर्म और सम्यग्दर्शन अपने को परम शरणरूप होता है' - सीताजी ने कहा।

'हाँ बेटी सीता! जीवन में सारभूत यही है। एक तो असारता से भरा हुआ यह संसार! और उसमें भी अपना (स्त्रियों का) जीवन... इसमें तो पद-पद पर कैसी-कैसी पराधीनता है! फिर भी ऐसी स्त्रीपर्याय में अपने को इस जैनधर्म की और सम्यक्त्व की प्राप्ति हुई, यह भी अपनी निकट भव्यता और परम सद्भाग्य है।'

'अहा माँ! आज आप जैसी धर्मात्मा माता के मिलन से मुझे जो परम आह्लाद हुआ है, उसकी क्या बात करूँ! चैतन्य की अद्भुतता और साधर्मी धर्मात्मा का सङ्ग, जगत् के सब दु:खों को भुला देते हैं और आत्मा का महान् आनन्द देते हैं। माता, वन में आपके साथ आपकी सखी बसन्तमाला रहती थी, वह कहाँ हैं?'

'देवी! उसने तो बालक हनुमान को उसके पिता को सौंपकर तुरन्त वैराग्यपूर्वक आर्यिका दीक्षा ले ली थी। मेरा वनवास देखकर उसे सांसारिक जीवन से एकदम विरक्तता आ गयी थी। हे सीता! मुझे भी उसके साथ ही दीक्षा लेने की परम उत्कण्ठा थी परन्तु इस हनुमान के स्नेहरूपी बन्धन को मैं तोड़ नहीं सकी, किन्तु अब मैंने निर्णय किया है कि जब तुम दीक्षा लेकर आर्यिका बनोगी, तब मैं भी संसार का स्नेह-बन्धन तोड़कर अवश्य आर्यिका दीक्षा अङ्गीकार करूँगी। आर्यिका का जीवन जीकर इस तुच्छ स्त्रीपर्याय का सदा के लिए अन्त करूँगी।'

'वाह माता! आपकी भावना अलौकिक है। अभी भी आपका जीवन संसार से विरक्त ही है। मैं भी उस धन्य घड़ी की प्रतीक्षा में हूँ कि जब संसार का स्नेह त्याग कर आर्यिका बनूँ।'

'देवी! धन्य है तुम्हारी भावना! हम इस स्त्रीपर्याय में केवलज्ञान

और मुनिपद तो नहीं ले सकते, फिर भी सम्यग्दर्शन के प्रताप से हम भी पञ्च परमेष्ठी के मोक्ष-पन्थ में गमन तो कर ही सकते हैं।'

'हाँ माता! देखो, सम्यग्दर्शन भी कैसी महान् अलौकिक वस्तु है! अष्ट अङ्गों सहित सम्यक्त्व से आपका जीवन कैसा सुशोभित हो रहा है!'

'बेटी! सम्यक्त्व होने पर भी संसार के चित्र-विचित्र प्रसङ्गों में अनेक प्रकार के संक्लेशभाव आ जाते हैं, उससे भी पार होकर चैतन्य की शान्ति में लीन हो जाऊँ - ऐसी ही अब भावना है।'

'हाँ, माता! अब ऐसा प्रसङ्ग बहुत दूर नहीं, आर्यिका होने की आपकी भावना शीघ्र ही पूरी होगी।'

इस प्रकार आनन्दपूर्वक चर्चा-वार्ता करते हुए कितने ही दिनों तक अञ्जना माता के साथ रहकर सीताजी वापस अयोध्या पहुँच गयीं। हनुमान ने अपनी बहिन को बहुमूल्य वस्तुएँ भेंट में देकर अत्यन्त भावभीनी विदाई दी। ●● *(- ब्रह्मचारी हरिलाल)*

10

युगप्रभाविका महासती चन्दना

जब कुण्डग्राम के निकट स्थित वैशाली में त्रिशला माता की सबसे छोटी बहिन राजकुमारी चन्दनबाला ने राजकुमार वर्द्धमान के आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत के बारे में सुना तो उस वीर मौसी ने हार्दिक उल्लासपूर्वक वर्द्धमानकुमार के वैराग्य का स्वागत किया – 'वाह! धन्य है महावीर को! उन्होंने विषय–कषायरूपी विष का परित्याग करके, चिदानन्द स्वभाव के आश्रय से उत्पन्न अतीन्द्रिय आनन्दयपी अमृतपान करने के लिए आजीवन ब्रह्मचर्य अङ्गीकार किया है। अहा! मैं भी वर्द्धमान के पथ का ही अनुगमन करूँगी।

अहा! यद्यपि चन्दना अभी छोटी है परन्तु उसका हृदय महान् है। वीरकुमार विवाह नहीं करेंगे – यह जानकर मौसी चन्दनबाला ने भी मन ही मन विवाह नहीं करने का निर्णय कर लिया। धन्य चन्दना! और धन्य हो तुम्हारे शील का सौरभ!'

✦ ✦ ✦

वीरकुमार की मौसी चन्दना से चर्चा

चन्दना ने समझ लिया कि विरागी वीरकुमार अब अधिक

दिनों तक गृहवास नहीं करेंगे, इसलिए अपने भानजे महावीर से मिलने और उनके साथ वैराग्य एवं आत्मानुभव की सरस चर्चा करने हेतु उसका मन लालायित हो उठा और कुछ ही दिनों में वह कुण्डग्राम पहुँच गयी। चन्दनबाला वहाँ पहुँचकर अपनी बड़ी बहिन त्रिशलादेवी के पास बैठकर वीरकुमार का गुणगान कर रही थी, इतने में प्रिय कुमार भी वहाँ आ पहुँचे। छोटी मौसी को देखकर वीरकुमार ने प्रसन्नता व्यक्त की और वैरागी भानजे को देखकर चन्दना का हृदय भी उनके प्रति नतमस्तक हो गया।

चन्दना कहने लगी – 'वीरकुमार! तुम्हारे उत्तम गुणों को देखकर मुझे बड़ा आनन्द होता है। अहा! एक तीर्थङ्कर की मौसी होने के कारण मेरा हृदय गौरव का अनुभव करता है... परन्तु प्रिय वीरकुमार! मैं मात्र तुम्हारी मौसी होकर ही नहीं रहूँगी... जब तुम तीर्थङ्कर होओगे और जगत् को मोक्षमार्ग का उपदेश दोगे, तब मैं भी तुम्हारे मार्ग का अनुसरण करके, तुम्हारे शासन में धर्मसाधना कर गौरव का अनुभव करूँगी।'

'वाह मौसी!' महावीर ने कहा – 'तुम्हारी बात सच है; तुम्हारे उत्तम धर्मसंस्कारों से मैं भलीभाँति परिचित हूँ, तुम भी संसार के मोहजाल में फँसना नहीं चाहती और आत्मसाधना में ही जीवन बिताना चाहती हो, यह जानकर मुझे अत्यन्त हर्ष होता है।'

चर्चा का प्रसङ्ग बदलते हुए चन्दना ने कहा – 'देवकुमार वर्द्धमान! राग से अलिप्त ज्ञानचेतना की अपार महिमा तुम्हारे जीवन में दिखायी देती है, जिसे देखकर हमारी चेतना भी जागृत हो जाती है और मानो इसी समय निर्विकल्प चेतना का आस्वादन

कर लूँ, इस प्रकार अत्यन्त उत्कण्ठा होती है, किन्तु अन्तर में आत्मा का विचार करते हुए विकल्प भी साथ ही साथ दिखते रहते हैं। वे विकल्प, चैतन्य का स्वाद नहीं लेने देते; उनसे छूटकर चैतन्य का आस्वादन कैसे किया जाए? उसकी विधि बतलाओ न!'

महावीर ने कहा – 'वाह मौसी! चैतन्य के रसास्वादन की तुम्हारी ऐसी उत्कण्ठा देखकर मुझे प्रसन्नता होती है। देखो, अन्तर में विचार के समय जो विकल्प दिखायी देते हैं, उसी समय विकल्पों को जाननेवाला ज्ञान भी साथ ही है न! वह ज्ञान कहीं विकल्पों को नहीं करता। ज्ञान, विकल्पों को जानता है, किन्तु उन्हें करता नहीं है। चैतन्य के चिन्तन काल में जो किञ्चित् भी शान्ति का आभास होता है, वह ज्ञान का कार्य है और जो विकल्प रह जाते हैं, वह राग का कार्य है। इस प्रकार ज्ञान और राग दोनों के कार्य एक–दूसरे से विरुद्ध हैं; उन दोनों को भलीभाँति जानने से ज्ञान का रस अधिक हो जाएगा और राग का रस टूट जाएगा। ज्ञान अपने रस में वृद्धि करता–करता अन्त में अपने अनन्त चैतन्यभावों से भरपूर एक ज्ञानस्वभाव में ही तन्मय होकर, उसके महान अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद लेगा। मौसी! तुम प्रयत्न करोगी तो आज ही तुम्हें उस अपूर्व स्वाद का अनुभव होगा।'

'अहा! प्रभु वर्द्धमान! तुम्हारी ऐसी उत्तम बात और उत्तम प्रेरणा से मेरा आत्मा झंकृत हो उठता है; मैं इसी समय वह चैतन्यस्वाद लेने के लिये अन्तरोन्मुख होती हूँ। तुमसे चैतन्यस्वरूप की जो अपार गम्भीर महिमा सुनी है, उसे अभी तत्क्षण ही अनुभवगोचर करती हूँ।'

'बहुत अच्छा!' – ऐसा कहकर महावीर ने उसका अनुमोदन किया।

चन्दनबाला तुरन्त ही गम्भीर वैराग्यपूर्वक चैतन्य के उल्लसित भावों से आत्मस्वरूप का चिन्तवन करने लगी। अहा! क्षण–दो क्षण हुए कि चन्दना को चैतन्यदेव जागृत होने लगे.... चन्दन जैसी आनन्दमय सुगन्ध से उसका आत्मा महक उठा। भावी तीर्थङ्कर सामने ही बैठे हैं परन्तु अभी चन्दना को उनका भी लक्ष्य नहीं है, वह तो निर्विकल्प आनन्द की अनुभूति में निमग्न होकर आत्मा में सम्यक्त्व तीर्थ का प्रारम्भ कर रही है.... मानों कोई लघु तीर्थङ्कर, गृह–आँगन में तीर्थ का प्रवर्तन कर रहे हों।

अहा! धन्य हुई चन्दनबाला! उसने वीरतापूर्वक सदा के लिये स्त्रीपर्याय का छेदन कर दिया। वाह रे वाह! तीर्थङ्कर की माता की लाड़ली बहिन! तूने अपना जीवन सफल कर लिया।

स्वानुभूति की निर्विकल्पदशा से उपयोग बाहर आने पर भी, चन्दना की दशा कोई परम अद्‌भुत थी। उस गम्भीरता को देखकर वीर कुँवर समझ गये कि मौसी को अपूर्व आनन्द की अनुभूति हो चुकी है। अहा! उन सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा मौसी को देखकर महावीर भी आनन्दित हुए। चन्दनबाला ने अपनी बड़ी दीदी त्रिशलादेवी के साथ स्वानुभूति की महिमा और साथ-साथ वीर कुँवर की महिमा की गम्भीर चर्चा की। दोनों सम्यग्दृष्टि बहिनों की चर्चा वास्तव में अद्‌भुत थी। उसमें से मानों अतीन्द्रिय आनन्द के झरने झरते थे.... परभावों से अलिप्त ज्ञानचेतना की अगाध महिमा उसमें भरी थी.... धन्य है ऐसे ज्ञानचेतनावन्त धर्मी जीव!

✦ ✦ ✦

दो बहिनों की सुन्दर धर्म–चर्चा

राजकुमार वर्द्धमान की दिव्यवाणी के निमित्त से एवं स्वयं के आत्मलक्ष्यी पुरुषार्थ से सती चन्दनबाला का आत्मा, सम्यक्त्व रत्न से जगमगा उठा। अनादि से अलभ्य आत्मशान्ति का अद्भुत अमृत पीकर तृप्त हुई सती शिरोमणि, अपनी बड़ी बहिन जगतमाता प्रियकारिणी त्रिशला के समीप पहुँची। माँ त्रिशला ने अपनी तीक्ष्ण प्रज्ञा के प्रताप से अपनी लाड़ली बहिन की अन्तरपरिणति को परख लिया। गद्गद्वाणी एवं वात्सल्ययुक्त हृदय से वह बोली – 'आओ बहिन! कुशल तो हो?'

चन्दना ने हर्षित होकर कहा – 'दीदी! वीर वर्द्धमान कुँवर को प्राप्त करके हम सचमुच धन्य हो गये हैं; उनकी ज्ञानचेतना की गम्भीरता और वीतरागी अनुभूति अति गहन है।'

हाँ, बहिन चन्दना! तेरी बात सच है। वीर कुँवर तो 'आनन्द की चलती–फिरती अनुभूति हैं;' उन्हें देखकर ऐसा लगता है जैसे, अपने घर में चलते–फिरते छोटे सिद्ध हों। ऐसे गम्भीर वीर कुँवर कई बार मेरे पास अपना हृदय खोलते हैं और अपनी गम्भीर अनुभूति के रहस्य मुझे बतलाते हैं.... उस समय यह संसार विस्मृत हो जाता है और आत्मा में ऐसी झनझनाहट उठती है, मानो मोक्षपुरी में केलि कर रही होऊँ।

अरे दीदी! मुझे भी महावीर ने आज स्वानुभूति के गहन रहस्य समझाकर आनन्द का अपूर्व अनुभव कराया है। मेरे लिये तो उन्होंने आज से ही धर्मतीर्थ का प्रवर्तन प्रारम्भ कर दिया है। उनके अपूर्व उपकार की क्या बात करूँ!

बहिन चन्दना! आत्मशान्ति से भरपूर उनकी वाणी चमत्कारिक है, उसे सुनकर आश्चर्य होता है और चैतन्यभाव जाग उठते हैं।

हाँ दीदी! आज ही मुझे उनकी प्रसन्न वाणी का लाभ प्राप्त हुआ और मेरे आत्मा में अपूर्व चैतन्यभाव जाग उठे.... रागरहित ज्ञानरस कितना मीठा है! उसका मैंने आज आस्वादन किया।

वाह चन्दना! तू धन्य हो गयी! मेरी लाड़ली छोटी बहिन आत्मानुभूति को प्राप्त हो – ऐसी उत्कण्ठा मुझे बहुत दिनों से थी, वह आज पूरी हुई। तेरी बातें सुनकर मुझे हार्दिक प्रसन्नता हो रही है, साथ ही इस बात का गौरव भी हो रहा है कि तू मेरी छोटी बहिन है।

अहा! वर्द्धमान तो वर्द्धमान ही हैं; उनकी वैराग्यदशा पातालवत् गहरी है।

ठीक है बहिन! **'ज्ञानकला जिसके घट जागी.... ते जगमाहिं सहज वैरागी'** — ऐसा जो सिद्धान्त वचन है, वह हमें तो अपने घर में ही चलता-फिरता प्रत्यक्ष दिखायी देता है और चन्दना बहिन! तेरा जीवन भी वीर कुँवर के सम्पर्क से स्वानुभूति प्राप्त करके कैसा सुशोभित हो रहा है! महावीरकुमार जब तीर्थङ्कर होकर धर्मनेता बनेंगे, तब तू भी भारत के समस्त श्राविका संघ की तथा आर्यिका संघ की नायिकारूप से समवसरण में शोभा देगी।

बड़ी बहिन की यह बात सुनकर चन्दना प्रसन्नता से बोली – 'दीदी! धन्य है वह अवसर! मैं उस दिन की भावना भाती हूँ, जब वीरकुमार को सर्वज्ञरूप में देखूँ और उनकी धर्मसभा में बैठकर आत्मसाधना करूँ। साध्यरूप आत्मा को उनके प्रताप से हमने अपने अन्तर में देख लिया है और अन्दर में अपूर्व आत्मसाधना प्रारम्भ हो चुकी है।'

'अहा! मेरा पुत्र महावीर इस जीवन में ही सर्वज्ञ बनेगा.... मैं सर्वज्ञ महावीर की माता कहलाऊँगी और एक अवतार के बाद मेरे भी भव का अन्त होकर, मैं भी सर्वज्ञ परमात्मा बनूँगी।' ऐसे विचार से प्रियकारिणी-त्रिशला देवी का चित्त किसी अनुपम आह्लाद का अनुभव करने लगा। अहा! अपने ही आत्मा को सर्वज्ञ-परमात्मारूप से देखकर मुमुक्षु का हृदय आनन्दित हो – इसमें क्या आश्चर्य!

अन्तरङ्ग हर्ष व्यक्त करते हुए त्रिशला देवी बोली – 'प्रिय बहिन चन्दना! अब अनुभूति के प्रभाव से अपनी स्त्रीपर्याय का छेद हो गया, इतना ही नहीं, अपने संसार का भी अन्त आ गया.... एक भव के पश्चात् हम परमात्मपद की साधना करके मोक्षपुरी में पहुँच जाएँगे।'

अरे दीदी! उस मोक्षपुरी के स्मरण से भी हमें कितना आनन्द होता है.... तो उस साक्षात् दशा का क्या कहना! अरे, इन्द्रियज्ञान से उसका अनुमान भी नहीं हो सकता; अपने ज्ञान में अंशत: अतीन्द्रियपना होने पर ही उस सर्वज्ञ सुख को जाना जा सकता है। अचिन्त्य है उसकी महिमा!

हाँ चन्दना! ऐसे अपार महिमावन्त आत्मा का स्वानुभूति में

इस समय भी अनुभव होता है। आत्मा के एकत्व की वह अनुभूति 'अभेद' होने पर भी एकान्त नहीं है; आत्मा के शुद्ध द्रव्य-गुण-पर्यायरूप अनन्त स्वभावधर्म उस अनुभूति के अन्तर्गत वेदन में आते हैं; इसलिए वह अनेकान्त स्वरूप हैं। उस शुद्ध परिणतिरूप से परिणमता आत्मा अपने एकत्व स्वरूप में शोभायमान है।

वाह दीदी! आपने अनुभूति का अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया। स्वानुभूति में पर के सम्बन्धरहित, अर्थात् विभक्त आत्मा अकेला वेदन में आता है, इसलिए उसे एकत्व की अनुभूति कहा गया है परन्तु उस एकत्व में भी गुण–पर्याय तो वर्तते ही हैं; ऐसी अनुभूति, वह 'एकत्व–विभक्त' शुद्ध आत्मा की अनुभूति है; **वही समस्त जैन शासन की अनुभूति है।** सचमुच, महावीर प्रभु के प्रताप से जैन शासन में अनेकों जीव, आत्मा की ऐसी अनुभूति प्राप्त करके अपना कल्याण करेंगे।

जब दोनों धर्मात्मा बहिनें इस प्रकार स्वानुभूति की तथा महावीर की महिमा का गुणगान कर रही थीं, तब महावीर कुमार तो उद्यान के एकान्त स्थल में बैठे–बैठे आत्मध्यान में निर्विकल्प स्वानुभूति के महा–आनन्द का साक्षात् वेदन कर रहे थे.... दोनों बहिनें दूर से वह दृश्य देखकर आश्चर्य मुग्ध हो गयीं; धन्य हैं महावीर! मानों कोई छोटे से सिद्ध बैठे हों।

उद्यान में आत्मध्यान करते हुए उन राजकुमार का दृश्य सचमुच दर्शनीय था। आत्मध्यान का वह दृश्य, वीतरागी आत्मसाधना की प्रेरणा देता था। कुछ देर बाद जब प्रभु की ध्यानदशा समाप्त हुई और अमृत झरते नेत्र खुले, उस समय अनेक प्रजाजन प्रभु के

दर्शन हेतु एकत्रित हुए थे। उद्यान भी अद्भुत सौन्दर्य में प्रफुल्लित हो रहा था। उसमें खिले हुए विविध प्रकार के पुष्पों एवं फलों से आच्छादित वृक्ष शोभायमान हो रहे थे; चारों ओर पुष्पों की सुगन्ध फैल रही थी। राजकुमार महावीर उस प्रफुल्लित उद्यान की शोभा निहारते हुए साथ ही अन्तर में सम्यक्त्वादि एवं आनन्दादि के पुष्पों से आच्छादित अपने चैतन्य उद्यान में क्रीड़ारत थे।

वे विचार कर रहे थे – 'अहा! मेरे आत्म–उद्यान में जैसे सम्यक्त्व एवं आनन्दादि के अतीन्द्रिय फल–फूल खिल रहे हैं, वैसे क्या अन्यत्र कहीं खिलते होंगे?... नहीं। जगत् में मेरा आत्माराम.... आनन्दमय चैतन्य उद्यान ही सबसे सुन्दर है। उस आत्म उद्यान में केलि करते हुए जिस आनन्दमय शीतलता एवं शान्ति का वेदन होता है, वह अनिर्वचनीय है।' – ऐसी अन्तरधारासहित उद्यान की शोभा देखते–देखते कुमार की दृष्टि एक वृक्ष पर पड़ी, जिसमें एक हजारों पंखुड़ियोंवाला सुन्दर फूल खिला हुआ था; उसे देखकर कुमार बोले —

'वाह! वृक्ष पर खिला हुआ फूल उस पर कैसा सुशोभित होता है! जिस प्रकार इस वृक्ष पर फूल शोभा दे रहा है, उसी प्रकार आत्मारूपी चैतन्यवृक्ष भी उस पर खिले हुए अनन्त पंखुड़ियोंवाले सम्यक्त्वादि पुष्पों से सुशोभित है, उसका सौन्दर्य अनुपम है।'

वीरकुमार, चैतन्य–उद्यान की प्रशंसा कर रहे थे, इतने में एक कुमार ने वह सुन्दर पुष्प लाकर आदरसहित वीरकुमार के चरणों में रख दिया। सब लोग आनन्दपूर्वक देख रहे थे।

तब वीरकुमार ने गम्भीरता से कहा – 'बन्धु! यह पुष्प, वृक्ष की डाल पर जैसा शोभा दे रहा था, वैसी शोभा अब नहीं देता; उसकी शोभा नष्ट हो गयी है; माता से बिछुड़े हुए बालक की भाँति वह मुरझा रहा है। पुष्प को उसकी डाली से पृथक् करना तो वृक्ष तथा पुष्प, दोनों की सुन्दरता को नष्ट कर देना है। देखो न, पुष्परहित वृक्ष कैसा शोकमग्न लगता है। अपनी प्रसन्नता के लिए हम दूसरे जीवों का सौन्दर्य नष्ट कर दें, यह क्या उचित लगता है? दूसरों को कष्ट दिये बिना हम आनन्द-प्रमोद करें, वही उचित है।'

इस प्रकार सहजरूप से अहिंसादि की प्ररूपणा करके वीरकुमार, वीतरागता फैला रहे थे। धन्य उनका जीवन! गृहवास में भी धर्मात्मा राजपुत्र का जीवन अलौकिक था। वे गृहवासी भगवान बारम्बार सामायिक का प्रयोग भी करते थे। सामायिक की स्थिति में वे इस प्रकार मन की एकाग्रतापूर्वक धर्मध्यानरूप आत्मचिन्तन करते थे, मानों एकान्त में कोई मुनिराज विराज रहे हों। उस समय वे राग–द्वेष से पृथक् समभावरूप वीतरागपरिणति का विशेष आनन्द अनुभवते थे। उनकी सामायिक कोई अमुक शब्दपाठ बोलनेरूप नहीं थी, किसी के नाम का जाप भी उसमें नहीं था; उसमें तो आत्मस्वरूप की भावना से चैतन्य की किसी अपार शान्ति का वेदन था। उस वेदन की वीतरागता में उनका आत्मा कुछ क्षण राग–द्वेष की परिणति से भिन्न हो जाता था।

यद्यपि उन महात्मा का जीवन राग–द्वेष से परे था परन्तु शुद्धोपयोग द्वारा निर्विकल्प होकर वे जिस आत्मानन्द का वेदन करते थे, वह एक अनिर्वचनीय विशिष्टदशा थी।

वीर राजकुमार सदा शुद्धात्मा की भावना भाते थे। विलक्षण थी उनकी आत्मधुन.... और विशुद्ध थी उनकी ध्यानधारा! कभी –कभी अर्द्धरात्रि के समय अचानक चैतन्य की धुन लगने से वे ध्यान में लीन हो जाते थे। उन्हें राजभवन में आराम से निद्रा लेना अच्छा नहीं लगता था। राजप्रासाद की दीवारों के बन्धन तोड़कर तथा राग को भी छोड़कर, अनन्त तीर्थङ्करों की पंक्ति में प्रवेश करने की अधिकाधिक उर्मियाँ उनके अन्तर में उल्लसित होती थीं। स्वर्गलोक से आनेवाले दिव्य वस्त्राभूषण एवं रसपूर्ण भोजन के प्रति वे नीरस होते जा रहे थे; उनका हृदय अब शीघ्र ही मोक्ष –प्राप्ति हेतु तत्पर हो रहा था।

दूसरी ओर त्रिशला माता भी पुत्र के मुख से आत्मवैभव की बातें सुन–सुनकर हर्षविभोर हो जातीं और कहतीं.... बेटा, तू सचमुच पहले से ही इस राजभवन में रह कर भी परमात्मा की भाँति अलिप्त रहता था। तेरी ज्ञानचेतना तुझ में ही भीतर–भीतर कोई परमात्म लीला करती रहती थी.... वह हम बहुत दिनों से देख रहे थे.... अब तो कुछ समय पश्चात् सारा जगत् भी तुम्हारी

ज्ञानचेतना की अद्भुत परमात्म लीला देखकर धन्य होगा।

'धन्य माता! तुम्हारी ज्ञानचेतना की प्रतीति यथार्थ है। तुम स्वयं ज्ञानचेतना के मधुर आनन्द स्वाद का आस्वादन करनेवाली हो। मैं इस भव में, तो तुम उस भव में.... अवश्य मोक्ष साधनेवाली हो।'

'बेटा! तुम्हारी वीरता भरी मीठी–मीठी बातों से मैं मुग्ध हो जाती हूँ.... ऐसा लगता है कि तुम्हारी बातें सुनती ही रहूँ, किन्तु रह–रहकर मन में ममता की लहर आ जाती है कि तुम सचमुच यह सब छोड़कर चले जाओगे?... फिर मुझे 'माँ' कहकर कौन बुलायेगा? यह राजभवन और वैभव सब तेरे बिना सूने–सूने लगेंगे।'

'सुनो माँ! यह सब मोह–ममता है। मैं तीस वर्ष तक इस राजपाट और हीरे–जवाहरात की सुख–समृद्धि में रहा परन्तु मुझे इनमें कहीं चेतनता दिखायी नहीं दी, इन अचेतन पदार्थों में मैंने कहीं सुख या चैतन्य की चमक नहीं देखी और हे माता! यह सब छोड़कर मैं कहीं दु:खी होनेवाला तो नहीं हूँ, उलटा इनमें रहकर जो सुख मैं भोगता हूँ, उसकी अपेक्षा कोई विशिष्ट सुख मुझे प्राप्त होनेवाला है.... तुम देखना कि तुम्हारे इन अचेतन हीरों की अपेक्षा कोई अपूर्व–अमूल्य–महान–त्रिलोक प्रकाशी चैतन्यरत्न लेकर कुछ ही समय पश्चात् मैं परमात्मा बनकर वैशाली में आऊँगा।'

वीरकुमार बोले जा रहे थे और माता प्रियकारिणी त्रिशलादेवी एकटक होकर उस वैराग्यपूर्ण वार्ता का रस पान कर रही थी।

वीरकुमार भावना के आवेग में आकर कहने लगे – 'माता! तुमने कहा – मुझे माँ कहकर कौन बुलायेगा? अरे! तुम मात्र मेरी ही माता थोड़े ही हो, तुम तो जगत्माता हो! जगत्जननी हो!'

सम्यक्त्वरत्न से सुशोभित जगत माता को ऐसा मोह शोभा नहीं देता। आपको भी निज चैतन्य की आराधना के बल से शीघ्र ही इस अस्थिरताजन्य मोह को उखाड़ फेंकना है।

त्रिशला माता टकटकी लगाकर अपने कुँवर की वार्ता सुन रही थी। वीर कुँवर की बातें सुनकर त्रिशला माता को हार्दिक प्रसन्नता हो रही थी। वह विचारने लगी —

'अहा! इस समय भी मेरे पुत्र का ज्ञान कितना विकसित है.... उसकी चैतन्यरसयुक्त वाणी मन भरकर सुन लूँ....' इस प्रकार माता–पुत्र ने हृदय खोल–खोलकर आत्म–साधना के विषय में अनेक प्रकार की चर्चाएँ कीं।

अहा! ऐसे बाल–तीर्थङ्कर के साथ व्यक्तिगतरूप से धर्मचर्चा करने में मुमुक्षु को कितना आनन्द आता होगा? और उनके मुख से स्वानुभूति के रहस्य सुनकर कौन स्वानुभूति को प्राप्त नहीं होगा? अरे! राजभवन में रहनेवाले राज–सेवक भी उनके श्रीमुख से खिरती वाणी सुनकर मुग्ध हो जाते थे और किन्हीं–किन्हीं को स्वानुभव भी हो जाता था। इस प्रकार द्रव्य–तीर्थङ्कर के प्रताप से चारों ओर धर्मप्रभावना हो रही थी और भाव–तीर्थङ्कर होने का दिन भी निकट आता जा रहा था। दो के बाद अब तीसरे कल्याणक की तैयारी होने लगी थी।

✦ ✦ ✦

भगवान महावीर : वैराग्य और दीक्षा

आज पूरी रात राजकुमार वर्द्धमान चैतन्य की अनोखी धुन में थे; निद्रा का तो नाम ही नहीं था; उपयोग बारम्बार चैतन्य की

अनुभूति में स्थिर हो जाता था। परभावों से थककर विमुख हुआ उनका उपयोग, अब आनन्दमय निजघर में ही सम्पूर्ण रूप से स्थिर रहना चाहता था। तीस वर्ष के राजकुमार का चित्त आज अचानक ही संसार से विरक्त हो गया है; मोक्षार्थी जीव, प्रशम हेतु किन्हीं बाह्य कारणों को नहीं ढूँढते, प्रशम तो उनके अन्तर से स्वयंमेव स्फुरित होता है।

आज प्रात:काल महावीर ने सिद्धों का स्मरण करके आत्मा का ध्यान किया। आज उनके वैराग्य की धारा कोई अप्रतिम है। विशुद्धता में वृद्धि हो रही है, उपयोग क्षणभर में अन्तर्मुख निर्विकल्प हो जाता है और पुन: बाहर आ जाता है परन्तु बाह्य में उसे चैन नहीं पड़ता; वह सर्वत्र से छूटकर, विभावरूप परदेश से लौटकर, स्वभावरूप स्वदेश में स्थिर रहना चाहता है।

बारम्बार ऐसी दशा में झूलते हुए प्रभु के मतिज्ञान में सहसा कोई विशिष्ट निर्मलता झलक उठी, उनको जातिस्मरण हुआ; स्वर्गलोक के दिव्य दृश्य देखे, चक्रवर्ती का वैभव दिखा, सिंह दिखा, सम्यक्त्व का बोध देते हुए मुनिवर दिखे; उससे पूर्व की नरकगति भी दिखी। इस प्रकार अनेक पूर्व भव देखकर तुरन्त वीरप्रभु का चित्त संसार से विरक्त होकर जिनदीक्षा लेने हेतु उद्यत हुआ।

वे विचार करने लगे – 'अरे! कहाँ वे नरक के घोर दु:ख और कहाँ स्वानुभूति का सुख! कहाँ वे सिंह पर्याय में हिंसा और क्रूरता के रौद्रपरिणाम और कहाँ सम्यक्त्व की शान्ति! – दोनों में अटूट रहनेवाला एक महान ज्ञायकभाव मैं हूँ' – इस प्रकार अपने एकत्व

का चिन्तवन करते हुए वे बारम्बार निर्विकल्प हो जाते थे। बारम्बार इतनी अधिक निर्मलता एवं निर्विकल्पता होती थी कि बस, अब शुद्धोपयोगी मुनिदशा के बिना यह जीव रह नहीं सकेगा। इस प्रकार महावीर ने अपने मन में दीक्षा का निर्णय किया।

महावीर का निर्णय, अर्थात् वज्र–निर्णय.... महावीर का निर्णय, अर्थात् अचल निर्णय.... महावीरकुमार ने दीक्षा ग्रहण का दृढ़ निर्णय किया और परम विरक्त चित्त से एक बार निर्विकल्प अनुभूति में लीन हो गये।

✦ ✦ ✦

राजकुमार सिंहासन पर बैठे हैं.... चैतन्य की गम्भीरता में ऐसे लीन हैं कि दुनियाँ का लक्ष्य ही नहीं रहा। अरे! त्रिशला माता आकर सामने खड़ी हैं, उनका भी उन्हें लक्ष्य नहीं है। माता तो देखती ही रह गयीं कि – वाह! मेरा पुत्र वैराग्यमुद्रा में कैसा अद्भुत सुशोभित हो रहा है। अहा! इसकी शान्त वैराग्यमुद्रा देखकर मुझे अनुपम आनन्द होता है.... मानों देखती ही रहूँ! इस प्रकार त्रिशला माता के हृदय में अत्यन्त स्नेह उमड़ रहा है और वे मन ही मन पुत्र को आशीर्वाद दे रही हैं। सचमुच आशीर्वाद दे रही हैं या आशीर्वाद के बहाने उनकी भक्ति कर रही हैं? यह तो वे ही जानें।

कुछ समय पश्चात् महावीर ने नेत्र खोले तो देखा कि माताजी सामने खड़ी हैं। माता को देखकर उनकी वैराग्यमुद्रा किञ्चित् मुस्करा उठी।

माता ने स्नेह से पूछा – 'बेटा वर्धमान! आज तुम इतने विचारमग्न क्यों हो?....' तब वीर कुँवर के मुख से गम्भीर वाणी

निकली – 'हे माता! आज प्रात:काल जातिस्मरण में मैंने अपने पूर्व भव देखे; अब मेरा चित्त सब ओर से विरक्त हुआ है, इसलिए आज ही इस असार-संसार को छोड़कर मैं मुनिदीक्षा अङ्गीकार करूँगा और शुद्धोपयोग द्वारा अपने निज परमात्मा को साधूँगा।'

अभी तो राजकुमार के मुख से दीक्षा लेने के उद्‌गार निकल रहे थे कि उधर इन्द्रसभा में खलबली हुई; इन्द्र का इन्द्रासन डोल उठा; प्रभु के दीक्षाकल्याणक का अवसर जानकर देवगण वैशाली में आ पहुँचे। लौकान्तिक देवों ने आकर प्रभु की स्तुति की; वैराग्यभावना में निमग्न प्रभु ने दृष्टि उठाकर लौकान्तिक देवों की ओर देखा। उस समतारस झरते दृष्टिपात से देवगण अत्यन्त प्रमुदित हुए... एक ओर वैरागी तीर्थङ्कर तो दूसरी ओर वैरागी लौकान्तिक देव! अहा, वैराग्यवान उत्तम साधकों का वह मिलन, चैतन्य की परम गम्भीर शान्तियुक्त था। उस मिलन से परस्पर दोनों के वैराग्य की पुष्टि हुई।

प्रजाजन यह सब बड़े आश्चर्य से देख रहे थे। देवेन्द्रों ने प्रभु का दीक्षाकल्याणक मनाने हेतु प्रथम उनका दैवी श्वेत वस्त्रों से शृङ्गार किया। प्रभु का वह वस्त्रधारण करना अब अन्तिम था; अब वे पुन: कभी कोई वस्त्र धारण नहीं करेंगे। एक ओर देवों का शृङ्गाररस तो दूसरी ओर वैरागी प्रभु का शान्तरस; उत्कृष्ट शृङ्गार एवं उत्कृष्ट वैराग्य में मानों प्रतियोगिता हो रही थी। अन्त में शृङ्गाररस की पराजय और वैराग्यरस की विजय हुई। प्रभु तो रागमय वस्त्रादि शृङ्गार का परित्याग करने, वीतरागी शान्तरस अङ्गीकार करने हेतु वन में जाने को खड़े हो गये और उत्तम

वैराग्यभावनाओं के चिन्तनपूर्वक 'चन्द्रप्रभा' नाम की शिविका में आरूढ़ हुए।

गंगा नदी के पश्चिमी तट पर (पटना शहर के सामनेवाले किनारे) वैशाली-कुण्डग्राम के 'नागखण्ड' नामक उपवन में शिविका से उतरकर प्रभु महावीर एक स्फटिक शिला पर विराजे। उत्तरमुख विराजमान वर्द्धमानकुमार ने 'नमः सिद्धेभ्यः' कहकर प्रथम सिद्धों को नमस्कार किया। इस प्रकार देहातीत सिद्धों को निकट लाकर प्रभु ने देह के आभूषण उतारे, वस्त्र भी एक-एक करके उतार दिये और सर्वथा दिगम्बरदशा धारण की। वर्द्धमान कुमार जितने दैवी वस्त्रों को शोभते थे, उसकी अपेक्षा दिगम्बर दशा में मुनिराज महावीर अधिक सुशोभित होने लगे। रत्नत्रय द्वारा प्रभु सुशोभित हो उठे और प्रभु के आश्रय से रत्नत्रय शोभायमान हो गया। अरे, किन्तु प्रभु और रत्नत्रय भिन्न कहाँ थे जो कि एक -दूसरे से सुशोभित होते ? प्रभु स्वयं रत्नत्रयरूप परिणमित थे।

वैशाली के नगरजन अपने प्रिय राजपुत्र को ऐसी वीतरागदशा में देखकर आश्चर्य को प्राप्त हुए.... वे न तो हर्ष कर सके और न शोक! बस, मानों हर्ष-शोकरहित ऐसी वीतरागता ही करने योग्य है – ऐसा उस कल्याणक प्रसङ्ग का वातावरण था। हर्ष और शोक के बिना भी मोक्ष का महोत्सव मनाया जा सकता है – ऐसा प्रभु का यह दीक्षाकल्याणक महोत्सव घोषित करता था। उन चैतन्यवीर की वीतरागदशा देखकर धर्मीजनों के अन्तर में चारित्र की लहरें उछलती थीं।

मार्गशीर्ष कृष्णा दशमी के सन्ध्याकाल स्वयं दीक्षित होकर

महावीर मुनिराज तप धारण करके अप्रमत्तभाव से चैतन्यध्यान में लीन हो गये। अहा! दो रत्न से वृद्धिगत होकर भगवान त्रिरत्नवन्त हुए; तीन ज्ञान से चार ज्ञानवन्त हुए; अनेक महान लब्धियाँ सेवा करने आ गयीं। उनकी अतीन्द्रिय ज्ञानधारा तो केवलज्ञान के साथ केलि करने लगी। मानों केवलज्ञान ने उसी समय अपने ज्येष्ठ पुत्र समान मन:पर्ययज्ञान को भेजकर शीघ्र ही अपने आगमन की पूर्व सूचना दे दी.... परन्तु प्रभु का लक्ष्य उस मन:पर्यय की ओर अथवा दिव्य लब्धियों की ओर नहीं था; वे तो अपने ज्ञायकस्वरूप की अनुभूति में ही ऐसे मग्न थे कि मानों सिद्धपद में विराज रहे हों।

वाह! कैसी अद्‌भुत है उनकी शान्त ध्यानमुद्रा! प्रभु की ध्यानमुद्रा से प्रेरित होकर चारों ओर हजारों भव्यजीव भी चैतन्य का ध्यान धरने लगे हैं। अरे, ध्यानस्थ प्रभु की शान्तमुद्रा देखकर वन के सिंह, हाथी, हिरण, सर्पादि पशु भी मुग्ध होकर शान्ति से प्रभुचरणों में बैठ गये। **अहा, 'जिनकी मुद्रा देखने से आत्मस्वरूप के दर्शन हों' – ऐसे उन ध्यानस्थ मुनिराज का क्या कहना! वह तो साक्षात् मोक्षतत्त्व ही विराजमान है....।**

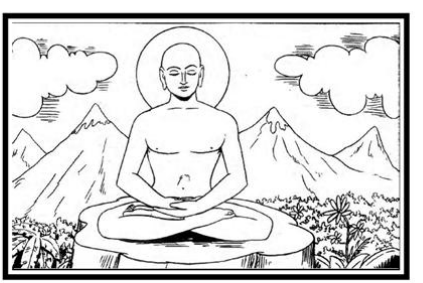

वैराग्य की प्रचण्ड बाढ़ से पूरी वैशाली घिर गयी थी। हमारे लाड़ले

राजकुमार तीस वर्ष हमारे साथ रहकर हमें सुख–समृद्धि दे गये... ज्ञान–वैराग्य दे गये.... अब हमें छोड़कर राग–द्वेष–काम–क्रोधादि को जीतने के लिये वन में चले गये। वे अवश्य विजेता बनेंगे। वे तो अपने शुद्धोपयोग में लीन होकर बैठे हैं; हमारी ओर देखने अथवा हमसे 'आओ' कहने के लिये दृष्टि भी नहीं उठाते.... हमारे पाँव भी उन्हें वन में छोड़कर नगर में जाने के लिये नहीं उठते। राजवैभव के बिना भी परमवीतरागता से वे सुशोभित हो रहे हैं। सचमुच वीतरागता से ही सुख और शोभा है; बाह्य वैभव में न तो सुख है और न आत्मा की शोभा! ऐसा विचारते हुए हजारों–लाखों नगरजन भी वीर के वैराग्य की प्रशंसा करते थे।

उस समय महान विजेता वीर तो अपने एकत्व में झूल रहे थे।

अहा! एक युवा राजपुत्र वीतराग होकर समस्त वस्त्राभूषण रहित दिगम्बरदशा में कैसे सुशोभित लगते होंगे? अरे, सहज चैतन्यतत्त्व.... उस पर कषाय तथा वस्त्रादि की उपाधि कैसी है? शुद्धतत्त्व पर आवरण कैसा? **वस्त्राच्छादित वीतरागता, वस्त्रावरण हटाकर बाहर निकल आयी।** वीतरागता अपने ऊपर कोई आवरण नहीं सह सकती। अहो! जहाँ मोह का या राग का भी आवरण नहीं रुचता, वहाँ बाह्य आवरण कैसे रुचेगा? चार दीवारों और वस्त्रों का आवरण तो विषयविकार के पाप को होता है; धर्म को आवरण कैसा? वह तो सर्व बन्धनों को तोड़कर निर्ग्रन्थ होकर अपने मूल स्वरूप में विचरता है और सर्वत्र वीतरागता से सुशोभित होता है।

✦ ✦ ✦

धन्य दिगम्बर मुनिदशा!

कोई जीव जिस वस्तु का त्याग करे, उससे ऊँची वस्तु का ग्रहण करना यदि उसे आता हो, तभी वह उसका सच्चा त्याग कर सकता है। पुण्य अथवा राग का सच्चा त्याग वही कर सकता है, जिसे वीतरागभाव ग्रहण करना आता हो। त्याग, लाभदायक होना चाहिए, हानिकारक नहीं। जीव जो त्यागे, उसकी अपेक्षा उच्च वस्तु / उच्च भाव प्राप्त करे, तभी उसका वह त्याग लाभदायी कहा जाएगा।

भगवान महावीर का त्याग ऐसा ही था। उन्होंने जिन हेय तत्त्वों को छोड़ा, उनसे विशेष उपादेय तत्त्वों को ग्रहण किया। उनकी शुद्धता की श्रेणी का क्या कहना! जब वे निर्विकल्पता के महान आनन्द में झूलते थे, तब उनके शुद्धोपयोग की प्रचण्डता देखकर बेचारी शेष चार संज्वलन कषायें भी इस प्रकार चुपचाप होकर छिप जाती थीं कि वे जीवित हैं या मृत – यह जानना भी कठिन लगता था, क्योंकि उस समय उनकी कोई प्रवृत्ति दिखायी नहीं देती थी।

इस प्रकार एक ओर प्रभु महावीर शान्तभावरूप वीरता से कषायों को जीत रहे थे, दूसरी ओर त्रिशला माता भी वीर के वीतराग चारित्र का अनुमोदन करके अपने मोहबन्धन को ढ़ीला कर रही थीं। 'अरे रे, राजभवन में जिसका लालन–पालन हुआ है – ऐसा मेरा पुत्र, वन–जङ्गल में कैसे रहेगा? शीत–उष्णता कैसे सहन करेगा? – ऐसी शङ्का वे नहीं करती थीं। वे जानती थीं कि आत्मसाधना में उनका पुत्र कैसा वीर है और उन्हें यह भी अनुभव था कि चैतन्य के आनन्द की लीनता में बाहर का लक्ष्य ही नहीं

रहता। जहाँ शरीर का ही ममत्व नहीं रहता, वहाँ शीत–उष्णता के उपसर्ग कैसे ? अहा ! ऐसे अतीन्द्रिय चैतन्यतत्त्व को जाननेवाली माता क्या आत्मसाधना में आगे बढ़ते हुए पुत्र को देखकर मूर्च्छित होगी ?.... नहीं, कदापि नहीं। अपने लाड़ले पुत्र को मोहपाश तोड़कर मुनिदशा में मग्न देखकर वे आनन्दित हुईं... और जब उसे केवलज्ञानी अरहन्त परमात्मारूप में देखेंगी, तब तो अति आनन्दित होंगी। धन्य माता ! तुम तो परमात्मा की माता हो न... !

बिना वर्द्धमान के वैशाली के राजप्रासाद सूने हो गये थे। बाह्य वैभव ज्यों के त्यों होने पर भी सुखरहित बिलकुल निस्तेज लगते थे, मानों वे पुद्गल–पिण्ड जगत् से कह रहे थे कि 'देखो, हममें सुख नहीं हैं; इसीलिए तो वीरकुमार हमें छोड़कर तपोवन में चले गये और चैतन्य में लीन हो गये।' परम वैराग्य जिसका प्रवेशद्वार है – ऐसा चैतन्य का आनन्द-उद्यान, सज्जन / सन्तों को अत्यन्त प्रिय है; धर्मात्मा उसमें क्रीड़ा करते हैं, पञ्च परमेष्ठी का वहाँ निवास है।

शुद्धोपयोग का अमोघ चक्र लेकर वीरनाथ ने ज्यों ही ऐसे तपोवन में प्रवेश किया, त्यों ही मोह लुटेरा भयभीत होकर भाग खड़ा हुआ। निज वैभव की सेनासहित वीर योद्धा के आगमन से तपोवन सुशोभित हो उठा; सर्व गुणरूपी वृक्ष अपने–अपने मिष्टफलों से भर गये; अत्यन्त सुन्दर एवं परम शान्त उस चैतन्य -नन्दन वन के एकान्त स्थान (एकत्व चैतन्यधाम) में प्रभु महा -आनन्द का अनुभव करते थे। – ऐसा अद्भुत था वीर प्रभु का वनवास !

✦ ✦ ✦

मुनिदशा में आत्मसाधना

मुनि होकर आत्मा की निर्विकल्प आनन्ददशा में झूलते –झूलते भगवान ने साढ़े बारह वर्ष तक मौन रहकर आत्मसाधना की। मात्र अपने एक स्वद्रव्य में ही उग्र तथा अन्य समस्त द्रव्यों से अत्यन्त निरपेक्ष – ऐसी आत्मसाधना करते–करते महावीर प्रभु, मोक्षमार्ग में विचर रहे हैं और बिना बोले भी वीतराग मोक्षमार्ग का अर्थबोध करा रहे हैं। दीक्षा के पश्चात् दो दिन के उपवास हुए और तीसरे दिन कुलपाक नगरी के राजा श्रेयांस ने भक्तिपूर्वक आहारदान देकर वीरनाथ मुनिराज को पारणा कराया। आहारदान के प्रभाव से वहाँ देवों ने रत्नवृष्टि आदि पञ्चाश्चर्य प्रगट किये।

अहा! तीर्थङ्कर के आत्मा जैसा सर्वोत्तम आश्चर्य जहाँ विद्यमान हो, वहाँ जगत् के अन्य छोटे–मोटे आश्चर्य आयें, वह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। अत: मोक्ष की साधना में ही जिनका चित्त लगा है – ऐसे उन महात्मा को वे पाँच आश्चर्यकारी घटनाएँ किञ्चित् आश्चर्यचकित नहीं कर सकीं। अहा! आश्चर्यकारी चैतन्यतत्त्व की साधना में लीन मुमुक्षु को जगत् की कौनसी वस्तु आश्चर्य में डाल सकेगी? उन मोक्षसाधक महात्मा का जितना वर्णन करें, उतना ही कम है।

ऐसी मुनिदशा में झूलते हुए प्रभु महावीर उल्लसित आत्म–आराधनासहित विहार करते हुए भारतभूमि को पावन कर रहे हैं। केवलज्ञान की साधना करते–करते एक वर्ष... दो वर्ष... चार वर्ष... आठ वर्ष..... इस प्रकार वर्षों पर वर्ष बीत रहे हैं और केवलज्ञान दिन–प्रतिदिन निकट आता जा रहा है।

एक बार उन्होंने ऐसा उग्र अभिग्रह धारण किया कि दासी के वेश में सिर मुँडाये हुए, कोई सती–राजकुमारी आहार देगी, तभी आहार लूँगा; साथ में अन्य भी अनेक अभिग्रह थे। ऐसे अभिग्रहसहित विचरते–विचरते दिवसों पर दिवस बीत रहे हैं परन्तु अभिग्रह कहीं पूर्ण नहीं होता और बिना आहार के महीनों बीत चुके हैं.... तथापि वीर मुनिराज के मन में किसी प्रकार की आकुलता नहीं है, सुस्वादु आहार मिले या उपवास हो – दोनों में समभाव है। प्रभु का आहार न होने से नगरवासी चिन्ता में हैं.... इस प्रकार बिना आहार के पाँच माह व्यतीत हो गये।

विचरूँ उदयाधीन किन्तु निर्लोभ मैं..... ऐसी स्थिति में विचरते हुए वीरनाथ मुनि, कौशाम्बी नगरी में पधारे। सारे नगर में एक ही चर्चा हो रही है कि वीर मुनिराज प्रतिदिन नगर में आहार हेतु पधारते हैं, किन्तु आहार हो नहीं पाता। उन्होंने ऐसा कौन–सा अभिग्रह धारण किया होगा ? कौन होगा वह सौभाग्यशाली जिसे मुनिराज वीरनाथ के आहारदान का महान् सौभाग्य प्राप्त होगा ?.... अहा, वह मनुष्य बड़ा भाग्यवान होगा, जिसके घर पौने दो सौ दिवस के उपवास के पश्चात् प्रभु का पारणा होगा !

✦ ✦ ✦

चन्दना के जीवन की चमत्कारी घटनाएँ

इधर महावीर की मौसी चन्दनबाला, जिसने वीरकुमार के निकट सम्यग्दर्शन प्राप्त किया था, वह भी महावीर की भाँति विवाह न करने का निश्चय करके वैराग्यपूर्वक आत्मभावना में जीवन व्यतीत कर रही थी। एक बार चन्दनाकुमारी अपनी सहेलियों

के साथ नगर के बाहर उद्यान में क्रीड़ा कर रही थी, तभी उसके लावण्यमय यौवन से आकर्षित होकर एक विद्याधर ने उसका अपहरण कर लिया, परन्तु बाद में अपनी पत्नी के भय से उसने चन्दना को कौशाम्बी के वन में छोड़ दिया। कहाँ वैशाली और कहाँ कौशाम्बी! वन के भील सरदार ने उसे पकड़ लिया और एक वेश्या को सौंप दिया। एक के बाद एक होनेवाली इन घटनाओं से चन्दना व्याकुल हो गयी कि अरे, यह क्या हो रहा है ?

.....ऐसी अद्भुत सुन्दरी को देखकर वेश्या विचारने लगी कि कौशाम्बी के नागरिकों ने ऐसी रूपवती स्त्री कभी देखी नहीं है। मैं इसे रूप के बाजार में बेचकर अच्छा धन कमाऊँगी – ऐसा सोचकर वह सती चन्दनबाला को वेश्याओं के बाजार में बेचने के लिये ले गयी।

अरे रे! इस संसार में पुण्य-पाप की कैसी विचित्रता है! एक सती नारी वेश्या के हाथों बिक रही है! ....किन्तु चन्दना तो महान धर्मात्मा है न! उसके पास तो पुण्य–पाप के उदय में भी आत्मा को उनसे भिन्न रख सके – ऐसी ज्ञानचेतना, प्रभुवीर के प्रताप से विद्यमान है। अहो! जहाँ की महारानी मृगावती स्वयं चन्दनबाला की बहिन है, उस कौशाम्बी के वेश्या बाजार में महावीर की मौसी एक दासी के रूप में बिक रही है!

वेश्या आतुरतापूर्वक प्रतीक्षा कर रही है कि कोई बड़ा ग्राहक आये तो उसे चन्दना को बेचकर धन कमा लूँ। इतने में एक बड़े सज्जन सेठ वहाँ से निकले। बाजार में खड़ी हुई चन्दना का रूप देखकर वे आश्चर्यचकित हो गये। अरे, राजकुमारी समान यह

कन्या यहाँ कैसे आ गयी होगी ? जो दासी के रूप में बेची जा रही है ? सङ्कटग्रस्त होने पर भी, आत्मतेज को सम्पन्न उसकी मुखमुद्रा से सेठ को ऐसा लगा कि यह अवश्य कोई संस्कारी कुलवान कन्या है; इसके मुख पर किञ्चित् विषय–लालसा नहीं है। फिर भी बीच बाजार में वेश्या के रूप में बिक रही है.... अवश्य ही इसमें कोई रहस्य होना चाहिए। इस कन्या को मैं इस सङ्कट से बचा लूँ, जिससे यह किन्हीं दुष्टों के चंगुल में न फँस जाए – ऐसा विचार करके सेठ उसके पास गये और पूछताछ करने लगे।

उन सज्जन सेठ को वहाँ देखकर नगरजनों के आश्चर्य का पार नहीं रहा!... अरे, नगर के यह महान श्रावक धर्मात्मा सेठ वृषभदत्त भी इसके सौन्दर्य पर मोहित हो गये, 'किन्तु यह असम्भव है!' ....तो फिर किसलिए वे यहाँ आकर बात कर रहे हैं ? इस प्रकार लोगों में भिन्न–भिन्न प्रकार का कौतूहल फैल गया।

सेठ वृषभदत्त निकट आकर चन्दना को देखने लगे। वह धीमे–धीमे कुछ बोल रही थी.... उसके मुँह से निकलते हुए शब्द सुनकर सेठ एकदम चौंक पड़े.... अरहन्त.... अरहन्त....। अरे, यह तो 'णमोकार' मन्त्र जप रही है... अवश्य ही यह कोई उच्च संस्कारी जैन कन्या है, जो ऐसे घोर सङ्कट के समय नमस्कार मन्त्र का जाप कर रही है। धन्य है इसे!.... मेरे कोई सन्तान नहीं है, मैं इसे अपने घर ले जाऊँगा और अपनी पुत्री के रूप में पालन करूँगा। ऐसा सोचकर सेठ ने उसे खरीद लेने का निश्चय किया और वेश्या को मुँहमाँगी स्वर्ण मुद्राएँ देकर चन्दना को छुड़ा लिया। धन्य है उनका धर्म वात्सल्य!

घर में प्रवेश करते ही सेठ ने कहा – 'पुत्री! तुम किसी उच्च कुल की कन्या हो; तुम्हारी प्रत्येक चेष्टा, तुम्हारे निर्विकारी नेत्र और तुम्हारे वस्त्र – यह सब तुम्हारी कुलीनता का परिचय देते हैं। बेटी! तुम निर्भय होकर रहो। मैं जिन तीर्थङ्करदेव का अनुयायी जैन श्रावक हूँ.... आज से तुम मेरी धर्मपुत्री हो और मैं तुम्हारा धर्मपिता।

दासी के रूप में बिक कर भी स्वयं एक सज्जन जैन श्रावक के घर में आ गयी है, यह जानकर चन्दना को सन्तोष हुआ; उसे इतनी प्रसन्नता हुई मानों वह महावीर की मङ्गल छाया में ही आ गयी हो.... उसका हृदय पुकार उठा – 'जैनधर्म से रहित चक्रवर्ती पद भी अच्छा नहीं है; भले ही दासीपना हो परन्तु जैनधर्म में वास हो तो वह भी अच्छा है।' ऐसी कठिन परिस्थिति में भी उसे वीरकुमार के साथ हुई धर्मचर्चा का स्मरण हुआ और वह अपूर्व क्षण याद आया, जब उसने वीरकुमार के मार्गदर्शन में स्वयं निर्विकल्प आत्मानुभूतिपूर्वक सम्यग्दर्शन प्राप्त किया था। अनुकूल या प्रतिकूल प्रसङ्गों में घिर जाने से आत्मा को भूल जाए, वह ऐसी कोई साधारण स्त्री नहीं है; वह तो चैतन्यतत्त्व की ज्ञाता, मोक्ष की साधक है। ऐसी प्रतिकूलता में भी ज्ञानचेतना किञ्चित् चिगती नहीं है, पृथक् की पृथक् ही रहती है। राजपुत्रीपना या दासीपना; सत्कार या तिरस्कार, इन सबसे चन्दना के चैतन्य की प्रभा भिन्न की भिन्न रहती है। वाह चन्दना!.... धन्य है तुम्हारी चैतन्यप्रभा!

✦ ✦ ✦

वाह रे उदय! एक मुमुक्षु धर्मात्मा राजकुमारी वर्तमान में दासी बनकर पराये घर में निवास कर रही है। सेठ–सेठानी को पता नहीं

है कि यह दासी कौन है ? अरे, यह दासी तो जगत् के परमेश्वर की मौसी है, धर्म का एक रत्न है, भारत के श्राविका संघ की शिरोमणि है और कौशाम्बी नगरी की महारानी मृगावती की लाड़ली बहिन है ! जो वर्तमान में कर्मोदयवश दासी बनी हुई है; तथापि पुण्य का ऐसा कोई योग है कि दासीपना भी सेठ वृषभदत्त जैसे एक सज्जन –धर्मात्मा के घर में मिला है.... जहाँ शीलधर्म की रक्षा सुगम है।

परन्तु अरे उदय ! चन्दना के सौन्दर्य को देखकर सेठानी को सन्देह हुआ कि मेरी कोई सन्तान न होने से सेठ अवश्य मुझे छोड़कर इस चन्दना को मेरी सौत बनाएँगे ! नहीं तो इस घर में दास–दासियों की क्या कमी थी ? जो इसे ले आये। सती चन्दना सबकुछ जानते हुए भी धैर्यपूर्वक सहन करती है; सेठानी के प्रति हृदय में द्वेषभाव भी नहीं आने देती। वीरनाथ के बतलाये हुए चैतन्यतत्त्व का विचार करने से दासीपने के दु:ख का विस्मरण हो जाता है। वह संसार से विरक्त होकर चिन्तन करती है कि मैं तो चैतन्य की महान स्वाधीन विभूति से भरपूर हूँ, यह सब तो पूर्व कर्मों से छूटने की चेष्टा है। प्रभु महावीर के प्रताप से मेरी ज्ञानचेतना अब कर्मों से पृथक् रहकर मोक्षमार्ग को साधती रहती है...।

✦ ✦ ✦

एक दिन सेठ वृषभदत्त बाहर से थके हुए घर आये। सेठानी कहीं बाहर गयी थी, कोई नौकर–चाकर भी घर में नहीं थे; इसलिए सदा की भाँति चन्दना पानी ले आयी और पितातुल्य सेठजी के पाँव धोने लगी। पाँव धोते–धोते उसके कोमल केशों का जूड़ा

खुल गया और केश धूलधूसरित होने लगे; इसलिए सेठ ने निर्दोषभाव से वात्सल्यपूर्वक पुत्री के केश हाथ से ऊपर उठा लिये। ठीक उसी समय सुभद्रा सेठानी आ पहुँची और चन्दना के खूबसूरत केशों को सेठ के हाथ में देखकर क्रोध से आग बबूला हो गयी, उसे लगा कि मेरी अनुपस्थिति में ये दोनों एक–दूसरे से प्रेमालाप कर रहे थे। बस, उसकी शङ्का निर्णय में बदल गयी और उसने निश्चय कर लिया कि किसी भी प्रकार चन्दना को घर से निकालना है.... रे देव! तेरे भण्डार में क्या–क्या भरा है ?

अहा! कर्मोदय तथा धर्मी जीव के परिणामों की विचित्रता तो देखो! यह कर्मोदय भी चन्दना के लिये वरदानरूप बन जाएगा.... कर्मोदय से व्याकुल हो जाना, वह धर्मी जीवों का काम नहीं है.... उस समय भी अपनी धर्मसाधना में आगे बढ़ते रहना ही धर्मात्माओं की पहिचान है। वे जानते हैं कि —

जो कर्म के ही विविध उदय, विपाक जिनवर ने कहे,
वे मम स्वभाव नहीं अरे, मैं एक ज्ञायक भाव हूँ।
सब जीव में समता मुझे, नहिं बैर किसी के संग मुझे,
इसलिए आशा छोड़कर मैं, करूँ प्राप्ति समाधि की॥

अब, सुभद्रा सेठानी भयङ्कर वैरबुद्धि से चन्दना को अपमानित करने तथा बदला लेने को तत्पर है। एक दिन जब सेठ नगर से बाहर गये हुए थे, तब सेठानी ने चन्दना को एकान्त में बुलाकर उसके सुन्दर केश काटकर सिर मुँडवा दिया। अरे, अत्यन्त रूपवती राजपुत्री को कुरूप बना देने का प्रयत्न किया.... इतने से उसका क्रोध शान्त नहीं हुआ तो चन्दना के हाथ–पाँव में बेड़ियाँ डालकर

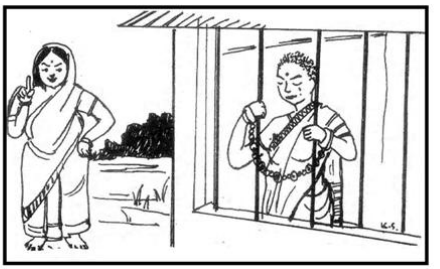

उसे एक अन्धेरी कोठरी में बन्द कर दिया; ऊपर से तरह–तरह के कटु वचन कहे; भोजन में भी प्रतिदिन सुबह–सुबह मात्र उबले हुए उड़द और गरम पानी दिया।

अरे, सिर मुँडवाकर जिसे बेड़ी पहिना दी गयी हो, उस सुकोमल निर्दोष स्वानुभवी राजकुमारी का उस समय क्या हाल होगा? उसकी आँखों से आँसू बह रहे हैं; मन में वीरनाथ प्रभु का स्मरण है। उसे विश्वास है कि मेरे महावीर मुझे सङ्कट से उबारने अवश्य आयेंगे.... जिन महावीर ने मुझे सम्यक्त्व देकर भव बन्धन से मुक्त किया है, वे ही प्रभु मुझे दर्शन देकर इन बेड़ियों से भी छुड़ायेंगे। इस प्रकार वीर प्रभु के स्मरण में लीन होकर वह भूख–प्यास को भी भूल जाती थी.... क्षणभर तो उसका आत्मा मुक्तरूप से किसी देहातीत अगम्यभाव में निमग्न हो जाता था।

ऐसी स्थिति में एक दिन बीता.... रात बीती.... दूसरा दिन भी बीत गया.... सेठ वृषभदत्त नहीं आये! तीसरा दिन बीत गया.... तब भी सेठ जी नहीं आये.... चन्दना को तीन दिन के उपवास हो गये.... तीन दिन तक कोठरी में बन्द और बेड़ियों में जकड़ी हुई वह राजकुमारी, आहार–जल के बिना एकाकी पड़ी है और कड़वे –मीठे संस्मरणों में खो गयी है, प्रतिक्षण प्रभु महावीर का स्मरण

करते हुए सम्यक्त्व का मधुर स्वाद ले–लेकर जी रही है। सोच रही है कि या तो अब प्रभु के दर्शन हों या समाधिमरण.....।

इस प्रकार विचार करते–करते तथा प्रभु के दर्शनों की भावना भाते–भाते तीन दिन बीत गये.... चौथे दिन प्रात:काल सेठ आ गये। घर का वातावरण कुछ सूना–सूना बेचैन–सा लग रहा था; चन्दना कहीं दिखायी नहीं दी; इसलिए बुलाया, 'चन्दना.... बेटी चन्दना! किन्तु कहीं से उत्तर न पाकर सेठ चिन्ता में पड़ गये; उनके मन में तरह–तरह की शङ्काएँ होने लगीं.... अरे, चन्दना कहाँ गयी? वह निर्दोष कन्या कोई अशुभ कार्य तो कर नहीं सकती। मुझसे या सुभद्रा से पूछे बिना वह कहीं जा भी नहीं सकती।.... तो फिर हुआ क्या? कहाँ गयी वह?....

सेठानी से पूछा तो कहती है – मैं कुछ नहीं जानती। दास –दासियों को भी कुछ पता नहीं; वे कुछ बोलते भी नहीं हैं... सेठ व्याकुल हो गये। प्राणों से भी प्रिय पुत्री कहाँ गयी? अन्त में उदास होकर एक वृद्ध दासी से पूछा – 'बहिन, तुम्हें मालूम है चन्दना कहाँ है? तुम सब उदास क्यों हो? कुछ बोलते क्यों नहीं?' दासी ने कोई उत्तर नहीं दिया, परन्तु सेठ की ओर देखकर सिसकने लगी। उसकी आँखों से आँसू गिरने लगे..... एक गहरा नि:श्वास छोड़कर कोठरी की ओर सङ्केत करके वह चली गयी।

सेठ ने तुरन्त कोठरी की खिड़की के पास जाकर देखा तो भीतर चन्दना दिखाई दी.... बाहर से ताला लगा हुआ था। चन्दना का मुँडा हुआ सिर और हाथ-पाँव में पड़ी हुई बेड़ियों को देखकर सेठ से रहा नहीं गया.... वे करुण चीत्कार कर उठे – 'अरे बेटी

चन्दना! तेरी यह दशा!! और फिर भी मुँह से आह तक नहीं करती? अरे, किस दुष्ट ने तेरी यह दशा की है?'

चन्दना कुछ बोली नहीं, मात्र स्नेहपूर्ण नेत्रों से सेठ की ओर देखती रही.... मानों उसके अमृत झरते नेत्र उनसे शान्तभाव रखने को कह रहे हों।

सेठ ने तुरन्त कोठरी का द्वार खोला और बेड़ियाँ काटने के लिये स्वयं लुहार को बुलाने दौड़े।

सेठजी के आने से तीन दिन की उपवासी चन्दना विचारने लगी – यदि महावीर प्रभु पधारें तो मैं उन्हें आहार देकर ही पारणा करूँगी। वह ऐसी अन्तरङ्ग भावना भा रही है।

यदि जीव की भावना सच्ची हो तो उसका फल भी मिले बिना नहीं रहता.... यदि जीव को भावना का फल न मिले तो सारा जगत् शून्य हो जाए। जिसे आत्मा की भावना हो, उसे आत्मा की प्राप्ति होती ही है। सच्ची आत्मभावना भानेवाले को यदि आत्मसुख की प्राप्ति न हो तो आत्मतत्त्व ही शून्य हो जाए, उसका अस्तित्व ही सिद्ध नहीं हो। यदि पापी जीव के पापभाव का फल न हो तो नरकगति ही शून्य हो जाए; जीव के पुण्यभाव न हो तो जगत् में देवगति ही शून्य हो जाए; जीव के रत्नत्रयभाव का फल न हो तो सिद्धगति ही शून्य हो जाए।

इस प्रकार यदि जीव के शुभ–अशुभ या शुद्धभावों का फल न हो तो संसार की चार गतियाँ अथवा सिद्धगति ही नहीं रहेगी और सब जगत् को शून्य हो जाना पड़ेगा, किन्तु नहीं, सच्ची भावना का सच्चा फल आता ही है.... भावना फलित हुए बिना नहीं रहती।

देखो, इधर चन्दना उत्तम भावनाएँ भा रही हैं.... कि वीर प्रभु पधारें... तो आहारदान दूँ... ठीक उसी समय – प्रभु महावीर पधारे।

पाँच मास और पच्चीस दिन के उपवासी प्रभु महावीर आहार हेतु नगर में पधारे हैं। उनका शरीर दुर्बल नहीं हुआ, उनकी मुद्रा निस्तेज नहीं हुई; अपितु तप के दिव्य तेज से चमक रही है; उनके चैतन्य का प्रतपन अनोखा है! ऐसे प्रभु वीर मुनिराज, वृषभदत्त सेठ के घर की ओर आ रहे हैं... चन्दना ने दूर से प्रभु को अपने घर की ओर आते देखा तो उसका रोम–रोम, प्रदेश–प्रदेश हर्षातिरेक से.... भक्ति से तथा आश्चर्य से पुलकित हो उठा.... 'पधारो प्रभु पधारो!' प्रभु निकट आये और हर्षविभोर चन्दना, प्रभु का सत्कार करने के लिये आगे बढ़ी.... आश्चर्य! उसकी बेड़ियाँ खुल गयीं, उसका रूप सौन्दर्य इतना उत्कृष्ट लगने लगा मानों सिर भी पूर्ववत् सुन्दर केशों से सुशोभित हो रहा हो।

सारा वातावरण एकदम बदल गया। बन्धनमुक्त चन्दना का लक्ष्य तो प्रभु की ओर है। बन्धन था और टूट गया, उसका भी लक्ष्य उसे नहीं है... जिस प्रकार स्वानुभूति के काल में मुमुक्षु साधक को बन्ध-मोक्ष का लक्ष्य नहीं रहता, तथापि बन्धन टूट जाते हैं; आत्मदर्शन में लीन साधक के मोहबन्धन अचानक ही खुल जाते हैं... उसी प्रकार प्रभु–दर्शन में लीन चन्दना की बेड़ी का बन्धन टूट गया.... आनन्दपूर्वक वह द्वार पर आयी; प्रभु की परमभक्तिसहित वन्दना करके पड़गाहन किया – अहो प्रभो! पधारो.... पधारो.... पधारो....!

वीर प्रभु की मधुर दृष्टि चन्दना पर पड़ी... तो वह कृतार्थ हो

गयी, 'लोग मुझे नहीं पहिचानते, किन्तु मेरे प्रभु महावीर तो जानते हैं ?' प्रभु के दर्शनों से वह जीवन के सर्व दुःख भूल गयी.... भक्तिपूर्वक वीर मुनिराज को आहार हेतु आमन्त्रित किया.... क्षणभर के लिये प्रभु वहाँ ठहरे... और देखा... तो दासी के रूप में तीन दिन की उपवासी राजकुमारी चन्दना आहारदान देने हेतु खड़ी है.... दूसरे भी अनेक अभिग्रह पूरे हो गये.... और 175 दिन के उपवासी तीर्थङ्कर मुनिराज ने चन्दना के हाथ से पारणा किया।

ज्यों ही चन्दना ने प्रभु के हाथ में उड़द का प्रथम ग्रास रखा कि दाता और पात्र दोनों के दैवीय पुण्यप्रभाव से उसका उत्तम खीररूप परिणमन हो गया ! उत्तम खीर से विधिपूर्वक प्रभु का पारणा होने से चारों ओर आनन्द मङ्गल छा गया; देवगण आकाश में जय-जयकार करने लगे और रत्नवृष्टि होने लगी; देवदुन्दुभी बज उठी.... समस्त कौशाम्बी नगरी में हर्ष एवं आश्चर्य फैल गया कि – अरे, यह किसका उत्सव है ?.... और जब उन्होंने जाना कि आज वीर मुनिराज का पारणा हो गया है, उसी के हर्षोपलक्ष्य में देवगण यह महोत्सव कर रहे हैं.... तब नगरजनों के आनन्द का पार नहीं रहा।

मुनिराज महावीर प्रतिदिन नगरी में पधारते और बिना आहार किये लौट जाते.... उन प्रभु ने आज आहार ग्रहण किया.... नगरी में यह समाचार फैलते ही लोग हर्ष से दौड़ते हुए उधर आने लगे

कि चलो, उस भाग्यशाली आत्मा के दर्शन करें और अभिनन्दन करें.... जिसके हाथ से यह महान कार्य हुआ है। लोगों ने जब देखा कि वृषभदत्त सेठ की एक दासी के हाथ से प्रभु ने आहार लिया है, तब वे आश्चर्यचकित हो गये.... अरे! लोगों को क्या पता कि वह दासी नहीं, किन्तु प्रभु महावीर की मौसी है.... उनकी श्रेष्ठ उपासिका है...।

प्रभु को पारणा कराकर चन्दना धन्य हो गयी।...आहार ग्रहण करके वे वीर योगीराज तो मानों कुछ भी नहीं हुआ हो – ऐसे सहजभाव से वन की ओर गमन कर गये और वहाँ जाकर आत्मध्यान में लीन हो गये। जब तक प्रभु जाते हुए दिखाई दिये, तब तक चन्दना उन्हें टकटकी बाँधे देखती रही.... आकाश में देव और पृथ्वी पर जनसमूह उसे धन्यवाद देकर, उसकी प्रशंसा कर रहे थे.... किन्तु चन्दना तो सारे जगत् को भूलकर, समस्त परभावों से पार, चैतन्यतत्त्व के निर्विकल्प ध्यान में शान्तिपूर्वक बैठी थी.... उसकी गम्भीरता अद्भुत थी।

इधर वृषभदत्त सेठ के घर में मुनिराज के आहारदान का प्रसङ्ग बनने से आनन्द–मङ्गल छाया हुआ है.... उधर सेठ स्वयं तो बेड़ी कटवाने हेतु लुहार को बुलाने गये थे, वे वापिस लौट रहे हैं.... मार्ग में आनन्दमय कोलाहल देखकर लोगों से पूछा – 'यह क्या हो रहा है ? किस बात का है इतना हर्षमय कोलाहल ?'

तब प्रजाजन कहने लगे – 'अरे सेठ! आपके तो भाग्य ही खुल गये!.... आपके आँगन में तो महावीर मुनिराज का पारणा हुआ है! पाँच मास और पच्चीस दिन के उपवास के पश्चात् पारणे

का धन्य अवसर आपको प्राप्त हुआ है। आपके गृह–आँगन में चन्दना ने भगवान को आहारदान दिया है.... उसी का यह उत्सव हो रहा है.... देव भी आपके आँगन में रत्नवृष्टि एवं जय–जयकार कर रहे हैं।'

सेठ तो आश्चर्यचकित होकर घर की ओर दौड़े.... हर्षानन्दन का स्वयंभूरमण समुद्र उनके हृदय में उछलने लगा.... क्या हुआ ? कैसे हुआ ? चन्दना की बेड़ी किसने काटी ? उसने प्रभु को किससे, किस प्रकार पारणा कराया ? ऐसे अनेक प्रश्न हर्ष के समुद्र में डूब गये.... वे घर पहुँचे तो वहाँ सारा वातावरण ही बदल गया था। कहाँ कुछ क्षणपूर्व का अशान्त क्लेशमय वातावरण और कहाँ यह उल्लासपूर्ण आनन्द ! चन्दना का अद्‌भुत रूप पहले से भी अधिक सुन्दर देखकर वे आश्चर्यचकित हो गये और हर्ष से बोल उठे – 'वाह बेटी चन्दना ! धन्य है तू ! तूने मेरा घर पावन किया.... कौशाम्बी नगरी की शोभा बढ़ा दी.... तुझे पाकर मैं धन्य हो गया.... तू तो देवी है.... अरे रे, हम तुझे नहीं पहचान सके और अभी तक दासी बनाकर रखा। बेटी ! हमारा अपराध क्षमा कर दे ! तू दासी नहीं है, तू तो जगत्पूज्य माता है।'

चन्दना बोली – 'पिताजी, वह बात भूल जाइये.... मुझ पर आपका महान उपकार है.... आपने ही मुझे सङ्कटकाल में शरण देकर मेरी रक्षा की है।'

यह आश्चर्यमय घटना देखकर सुभद्रा सेठानी तो दिग्मूढ़ हो गयी.... उसके पश्चाताप की कोई सीमा नहीं थी; वह चन्दना के चरणों में गिरकर क्षमायाचना करने लगी – 'बेटी ! मैं तुझे नहीं

पहिचान सकी, मुझ पापिन ने तुझे बहुत कष्ट दिये.... मुझे क्षमा कर दे बेटी।'

चन्दना ने उसका हाथ पकड़कर कहा – 'माता! वह सब भूल जाओ, मेरे ही कर्मोदय से वह सब हुआ, परन्तु प्रभु महावीर के मङ्गल–पदार्पण से आपका घर पावन हो गया और हम सब धन्य हुए! मानों महावीर का अभिग्रह पूर्ण होने के लिये ही यह सब हुआ था।'

✦ ✦ ✦

आत्म–मन्थन करती हुई चन्दना विचार रही है कि अहा! एक आहारदान की भावना से मेरी बेड़ी के बन्धन टूट गये.... तो परम चैतन्य की निर्विकल्प भावना से भव के बन्धन टूट जाएँ – इसमें क्या आश्चर्य? आत्मभावना द्वारा मैं अपने भव बन्धन को भी अल्प काल में अवश्य ही तोड़ डालूँगी। महावीर प्रभु के दर्शनमात्र से मेरे बाह्य बन्धन छूट गये तो अन्तर में चैतन्य प्रभु के दर्शन से भवबन्धन भी टूटने में अब क्या विलम्ब?

(शास्त्रकार प्रमोद से कहते हैं – वाह री वाह, चन्दना सती! धन्य है तुम्हारा शील! धन्य है तुम्हारा धैर्य और धन्य है तुम्हारी भावना!!! तुम महान हो। प्रभु महावीर जब सर्वज्ञ होंगे, तब उनकी धर्मसभा में जो स्थान 14000 मुनियों के नायकरूप में गणधर–गौतमस्वामी का होगा, वही स्थान 36000 आर्यिकाओं के बीच तुम्हारा होगा। हृदय में परम हर्ष एवं वात्सल्य उमड़ आता है, तुम्हारे ऐसे उत्तम–उज्ज्वल जीवन को जानकर।)

✦ ✦ ✦

सारी कौशाम्बी नगरी उमड़ पड़ी है महावीर मुनि को पारणा

करानेवाली उन चन्दना देवी के दर्शन करने तथा उन्हें अभिनन्दन देने को। अहा, आज तक जिसे हम दासी समझते थे, वह तो भगवती देवी निकली। उन्होंने वीर प्रभु को पारणा कराके अपनी कौशाम्बी नगरी का सम्मान बढ़ाया और उसे विश्व प्रसिद्ध कर दिया। अपनी नगरी में वीर प्रभु का आहार नहीं होने का जो कलङ्क लग रहा था, उसे आज चन्दना ने आहारदान देकर मिटा दिया। बहुतों को तो आश्चर्य हो रहा था कि आहारदान और किसी के हाथ से नहीं, एक दासी के हाथ से हुआ।

(अरे नगरजनों! कलङ्क तो तुम्हारी नगरी में चन्दना जैसी सती दासीरूप में बिकी, उसका था.... प्रभु महावीर ने उस दासी के ही हाथ से पारणा करके वह कलङ्क मिटा दिया।....दासी प्रथा दूर कर दी.... मनुष्य, मनुष्य को बेचे, वह कलङ्क धो दिया तथा यह भी प्रचारित किया कि धर्मसाधना में धनवान होने का कोई महत्त्व नहीं है.... सद्गुणों का महत्त्व है।)

नागरिकों के मन में प्रश्न उठने लगे कि यह चन्दना देवी हैं कौन? कहाँ की हैं? दिखने में तो पुण्यात्मा लगती हैं.... इस प्रकार सब उनका परिचय प्राप्त करने को आतुर थे.... इतने में राज्य की महारानी मृगावती अपनी नगरी में सेठ वृषभदत्त के घर मुनिराज महावीर के पारणे के समाचार सुनकर हर्षसहित वहाँ आ पहुँचीं.... और पूछने लगीं 'किसके हाथ से हुआ प्रभु का पारणा?' ....और वे देखती हैं तो एकदम चौंक पड़ती हैं – अरे! यह कौन है?.... यह तो मेरी छोटी बहिन चन्दनबाला! अरे चन्दन.... चन्दन... तू यहाँ कैसे?.... ऐसा कहकर वे चन्दना से लिपट पड़ीं। अद्भुत था वह दृश्य!

दोनों बहिनों का मिलन देखकर तथा चन्दना, महारानी मृगावती की छोटी बहिन है – यह जानकर नगरजन तो आश्चर्य में पड़ गये और एक–दूसरे की ओर देखते हुए कहने लगे – 'अरे, यह दासी नहीं, यह तो महावीर प्रभु की मौसी हैं ! सेठ–सेठानी भी चकित रह गये... वे डर रहे थे कि अरे रे, इन राजकुमारी से दासीपना कराया... उसके लिये न जाने राजमाता हमें क्या दण्ड देंगीं...' हमारा सर्वस्व छीनकर हमें नगर से बाहर निकाल देंगीं ! चन्दना उनके भाव समझ गयी और तुरन्त राजमाता के समक्ष सेठ–सेठानी का अपने माता–पिता के रूप में परिचय देते हुए कहा – 'दीदी ! इन्हीं ने सङ्कट के समय मेरी रक्षा की है, ये माता –पिता से कम नहीं हैं, मुझ पर इनका महान उपकार है... इन्हीं के प्रताप से मुझे यह अवसर प्राप्त हुआ है।' सेठ–सेठानी, चन्दना का विवेक, क्षमा एवं उदारता देखकर गद्गद् हो गये और कहने लगे —

'हे राजमाता ! हमारे घर में ऐसा अमूल्यरत्न होने पर भी हम इसे परख नहीं पाये.... यह कई बार उत्तम धर्मचर्चा करती थीं परन्तु हमें खबर नहीं पड़ने दी कि स्वयं राजपुत्री हैं। धन्य है इनकी गम्भीरता ! इनके पुण्य–प्रताप से तो हमारे आँगन में वीर प्रभु का पदार्पण तथा पारणा हुआ। धन्य हमारे भाग्य ! यह सब चन्दना की उत्तम भावना का प्रताप है.... बेटी चन्दना ! हमें क्षमा करना।'

वीर प्रभु को पारणा कराने के पश्चात् चन्दना ने भी चार उपवासों के तप का पारणा किया.... पश्चात् रानी मृगावती ने कहा – 'बहिन चन्दना ! मेरे साथ चलो और राजमहल में आनन्दपूर्वक रहो।'

परम वैरागी चन्दना बोली – 'अरी बहिन! इस संसार में आनन्द कैसा ? मैंने इस संसार की असारता देख ली है; अब इस संसार से बस होओ! अब तो मैं भी वीर प्रभु के मार्ग पर चलूँगी और आर्यिका बनकर उनके संघ में रहूँगी।'

मृगावती ने कहा – 'बहिन चन्दना! तेरी भावना उत्तम है, किन्तु महावीर प्रभु तो अभी मुनिदशा में विचर रहे हैं, मौन धारण कर रखा है, किसी को दीक्षा भी नहीं देते। जब वे केवलज्ञान प्राप्त करेंगे, तब हम दोनों उनकी धर्मसभा में जाकर आर्यिकाव्रत धारण करके उनके चरणों में रहेंगे। तब तक धैर्य रखकर घर में ही धर्मध्यान करो और हमें सत्सङ्ग का लाभ दो। तुम कौशाम्बी में इतने दिन रहीं, इतने सङ्कट सहे.... और हमें खबर तक नहीं पड़ी।'

चन्दना ने कहा – 'दीदी! यह सब कर्मों की विचित्रता है.... और मुझ पर अकेले सङ्कट ही कहाँ आये हैं ?.... देखो न, आज वीर प्रभु के दर्शन तथा आहारदान का महान लाभ भी तो प्राप्त हुआ है; वह क्या कम भाग्य की बात है ? संसार में सर्व जीवों को शुभ और अशुभ, हर्ष और शोक के प्रसङ्ग तो आते ही रहते हैं किन्तु

अपना ज्ञान स्वभाव है, हर्ष–शोक से पार।
उस स्वभाव को साधकर, होना भव से पार॥

'तुम्हारी बात सच है बहिन! एक ओर तुम्हारा दासी जीवन देखकर शोक और दूसरी ओर तुम्हारे ही हाथ से वीर प्रभु का पारणा देखकर हर्ष – इस प्रकार शोक और हर्ष दोनों एक साथ.... इनमें से मैं शोक का वेदन करूँ या हर्ष का ? नहीं; हर्ष और शोक दोनों से परे चैतन्यभाव ही आत्मा का सच्चा स्वरूप है और उसी

में सच्चा सुख है – यह बात स्पष्ट समझ में आती है।

✦ ✦ ✦

पाठकों! इस घटना में चन्दना की बेड़ी टूट गयी, वह दासत्व से छूट गयी परन्तु वास्तव में अकेली चन्दना ही नहीं, सारे भारतवर्ष से दासत्व के / गुलामी के बन्धन टूट गये.... दासत्व प्रथा की जड़ उखड़ गयी; नारियों के शील की महान प्रतिष्ठा हुई और भारत की नारियों में अपनी आत्मशक्ति का विश्वास पैदा हुआ। भारत की सन्नारियों ने विश्व में उत्तम स्थान प्राप्त किया। अहा, अपने देश के पास जो श्रेष्ठ, सदाचार एवं अध्यात्म का अमूल्य वैभव है वह क्या दुनिया के किसी और देश के पास है?

चौबीस तीर्थङ्करों तथा समस्त चक्रवर्तियों को जन्म देनेवाली इस भारतभूमि का गौरव विश्व में महान है.... भारत में जन्म लेनेवाले हम सब गौरवपूर्वक कह सकते हैं कि 'हम उस देश के वासी हैं, जिस देश में होते तीर्थङ्कर। हमारा जन्म तीर्थङ्करों के देश में हुआ है.... तीर्थङ्कर हमारे देश में जन्मे हैं। तीर्थङ्करों का और हमारा देश एक ही है।' धन्य, मेरी प्यारी भारतमाता! मुनिरूप से विचरते तीर्थङ्कर के चरणों का साक्षात् स्पर्श करने का महाभाग्य तुझे प्राप्त हुआ है.... 'वन्दे मातरम्।'

✦ ✦ ✦

राजगृही में चिन्तातुर बहिन चेलना, वैशाली में बहिन प्रियकारिणी त्रिशला तथा चन्दना के पिताजी राजा चेतक और प्रजाजन सब को चन्दना के मिल जाने की खबर सुनकर तथा उसके हाथ से वीर मुनिराज का पारणा होने के समाचार जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई।

अब, इधर चन्दना अपनी बहिन मृगावती के साथ कौशाम्बी के राजमहल में रहती हैं और वैराग्यपूर्ण जीवन बिताती हैं; स्वानुभूति में अधिकाधिक परिणाम लगाती हैं; दिन–रात महावीर के विचारों में तल्लीन रहकर समवसरण के सपने देखती हैं कि कब वर्धमान प्रभु को केवलज्ञान हो और कब मैं प्रभु के समवसरण में जाकर आर्यिका बनूँ। प्रतिदिन प्रभु को केवलज्ञान होने के समाचार की प्रतीक्षा करती है। वीर प्रभु राजगृही की ओर सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्र के आस–पास विचर रहे हैं.... वहाँ से कोई भी यात्री आता तो उन्हें बुलाकर आतुरता से समाचार पूछती हैं कि तुमने प्रभु को देखा ? प्रभु को केवलज्ञान हुआ ?.... वे इस समय कहाँ विराजते हैं ? क्या करते हैं ?

एक यात्री ने कहा – 'बहिन ! मैं वीर प्रभु के दर्शन करके आ रहा हूँ। जाम्भिक ग्राम में ऋजुवालिका नदी के तट पर प्रभु ध्यान में लीन खड़े थे.... और अब तो केवलज्ञान की तैयारी लगती है; क्योंकि प्रभु अति उग्ररूप से ध्यान में एकाग्र हों – ऐसा लगता था। किन्तु बहिन ! क्या प्रभु को केवलज्ञान होने की बात कहीं छिपी रहेगी ? ....अरे ! केवलज्ञान होते ही तीनों लोक में उसके समाचार फैल जाएँगे और आनन्द ही आनन्द छा जाएगा.... आकाश से देवों के समूह धरती पर उतरेंगे.... अब तो हम शीघ्र ही वह धन्य अवसर देखेंगे.... और तीर्थङ्कररूप में प्रभु की दिव्यध्वनि सुनकर धन्य बनेंगे।

✦ ✦ ✦

ऋजुवालिका के किनारे : प्रभु को केवलज्ञान

महावीर मुनिराज, कौशाम्बी नगरी में चन्दनाकुमारी के हाथ

से पारणा करने के पश्चात् उद्यान में जाकर ध्यान मग्न हो गये। पश्चात् वे सिद्धपद साधक सन्त, विहार करते हुए अनन्त सिद्धों के सिद्धिधाम सम्मेदशिखर पधारे। सिद्धिधाम में वे भावी सिद्ध, ध्यान में बैठे थे, वह दृश्य वास्तव में अद्भुत था। प्रभु के चरण स्पर्श से शिखरजी की पावन भूमि पुनः पावन हुई; दो तीर्थों का मिलन हुआ – एक भावतीर्थ और दूसरा स्थापना तीर्थ अथवा एक चेतनतीर्थ और दूसरा अचेतनतीर्थ। हमें ऐसा लगेगा कि क्या भगवान तीर्थयात्रा हेतु आये होंगे? अरे, प्रभु तो स्वयं ही चलते –फिरते जीवन्त–तीर्थ हैं। शिखर सम्मेद तो स्थापना तीर्थ है, जबकि प्रभु तो स्वयं रत्नत्रयरूप परिणमित जीवन्त–तीर्थ हैं। मोक्षयात्रा तो सदा कर ही रहे हैं और साक्षात् रत्नत्रय तीर्थरूप परिणमित ऐसे महात्माओं के प्रताप से ही भूमि–पर्वतों को तीर्थपना प्राप्त हुआ है।

सम्मेदशिखर तीर्थ के निकट 15–20 किलोमीटर दूर जाम्भिक ग्राम के समीप ऋजुवालिका नदी बहती है; जैसा सुन्दर नाम वैसी ही सुन्दर नदी है। महावीर प्रभु सम्मेदशिखर से विहार करते हुए उस नदी के तट पर आये और एक स्फटिक समान स्वच्छ सुन्दर शिला पर ध्यानस्थ हुए। वैशाख मास की तीव्र तपन में भी प्रभु तो मानों चैतन्यशान्ति की हिमशीतल गुफा में बैठे–बैठे अपूर्व वीतरागी शीतलता का वेदन कर रहे हों.... और मानों प्रकृति भी अनुकूल होकर प्रभु की सेवा कर रही हो, तद्नुसार एक घटादार शाल्मली वृक्ष प्रभु को शीतल छाया दे रहा है। अहा! चैतन्य के साधक को सारा जगत् अनुकूल ही वर्तता है।

प्रभु ध्यान में खड़े हैं.... अहा! ऐसे वीतरागी महात्मा मेरे तट पर पधारे!.... इस प्रकार हर्षतरङ्गों से उछलती कल–कल करती नदी मानों आज विशेष हर्षित हो रही हो, तद्नुसार जाम्भिक ग्राम के निकट वह दृश्य देखने के लिये क्षणभर थम जाती थी। अहा, मेरे किनारे आज कोई अद्भुत योगीराज आकर ध्यान लगा रहे हैं। प्रात:काल से ध्यानमग्न योगीराज... न तो कुछ बोलते हैं, न खाते हैं और न पानी पीते हैं! यह नदी का किनारा, यह ग्रीष्म का ताप और यह शीतल मिष्ट जल.... जो भी यात्री यहाँ आता है, वह शीतल जल पिये बिना नहीं रहता परन्तु यह योगीराज तो ग्रीष्म के प्रचण्ड ताप में खड़े होने पर भी पानी का नाम तक नहीं लेते....।

इस प्रकार मानों नदी को आश्चर्य हो रहा है, वह सोच रही है, क्या इन्हें गर्मी नहीं लगती होगी? क्या इन्हें तृषा नहीं सताती? ....मैं उछलकर इनके मुखद्वार से हृदय में प्रविष्ट हो जाऊँ और अपनी शीतलता से इनकी तृषा मिटाकर सेवा करूँ!.... किन्तु नहीं, वे यहाँ पानी के लिये नहीं आये.... आँख उठाकर वे पानी की ओर देखते तक नहीं हैं.... वे तो आँखें झुकाए अन्तर में कुछ और ही देख रहे हैं। उनकी मुद्रा देखकर लगता है कि उन्हें बाह्य में कुछ भी खोजने की इच्छा नहीं है.... उनके मुख पर क्षुधा–तृषा की आकुलता के भाव भी दिखायी नहीं देते, उस पर तो परमशान्ति एवं प्रसन्नता झलक रही है।

भक्ति तरङ्गों से कल–कल करती हुई ऋजुका नदी मानों अपनी उस ध्वनि से उनकी स्तुति कर रही है कि अहा! मैं शीतल स्वभावी होने पर भी मुझ से अधिक शीतलता–शान्ति सम्पन्न इस

योगीराज को तो मैंने आज ही देखा है, अन्तर में वे न जाने कैसी अद्भुत शीतलता का वेदन कर रहे हैं कि उन्हें पानी की बाह्य शीतलता की इच्छा नहीं है। ऐसे योगीराज मेरे तट पर पधारे, जिससे मैं धन्य हो गयी हूँ। अहा! इन योगीराज की चरण–रज से मैं भी पावन हो गयी हूँ।

इधर मोह से युद्ध करने के लिये वीर योद्धा तैयार खड़े हैं.... वीर राजा का महावीरपना आज सचमुच जागृत हो उठा है; क्षायिक –सम्यक्त्व उनकी सेना का सेनापति है और अनन्त गुणों की विशुद्धिरूप सेना शुक्लध्यान के श्रेणीरूप बाणों की वर्षा कर रही है; अनन्त आत्मवीर्य उल्लसित हो रहा है और अनन्त सिद्ध भगवन्त उनके पक्ष में आ मिले हैं। केवलज्ञानलक्ष्मी विजयमाला लेकर तैयार खड़ी है और मोह की समस्त सेना प्रतिक्षण घट रही है। अरे, देखो.... देखो! प्रभु तो शुद्धोपयोगरूप चक्र की धार से मोह का नाश करने लगे हैं, क्षपकश्रेणी में आगे बढ़ते–बढ़ते आठवें.... नौवें.... दशवें गुणस्थान में तो क्षणमात्र में पहुँच गये हैं। प्रभु अब सर्वथा वीतरागी हो गये.... और सूर्यास्त से पूर्व तो वीरप्रभु के

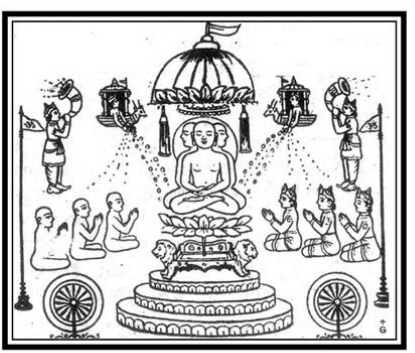

अन्तर में जो कभी अस्त न हो – ऐसा केवलज्ञान सूर्य जगमगा

उठा.... अहा! प्रभु महावीर सर्वज्ञ हुए.... अरहन्त हुए.... परमात्मा हुए.... 'णमो अरहंताणं।'

सर्वज्ञ प्रभु महावीर, राग और इन्द्रियों के बिना ही परिपूर्ण सुख और ज्ञानरूप परिणमित हुए। अभूतपूर्व थी वह दशा! इन्द्रियाँ विद्यमान होने पर भी मानों अविद्यमान हों – इस प्रकार प्रभु ने उनका सम्बन्ध सर्वथा छोड़ दिया। 'भगवान भले ही अतीन्द्रिय हुए और हमारा साथ छोड़ दिया, फिर भी हमें प्रभु के साथ रहने में ही लाभ है' – ऐसा मानकर वे जड़ इन्द्रियाँ अभी प्रभु का साथ नहीं छोड़ती थीं। प्रभु तो इन्द्रियों से निरपेक्ष रहकर स्वयमेव सुखी थे। पराधीन इन्द्रियसुख से ठगे जा रहे जगत् को प्रभु ने बतला दिया कि आत्मा, इन्द्रिय विषयों के बिना ही स्वाधीनरूप से सुखी है; सुख तो आत्मा का स्वभाव है, इन्द्रियों का नहीं।' शुद्धोपयोग के प्रभाव से आत्मा स्वयं परम सुखरूप परिणमता है।

इन्द्रियातीत तथा लोकोत्तम ऐसे वे वीर भगवान, केवलज्ञान होते ही पृथ्वी से 5000 धनुष ऊपर अन्तरिक्ष में विराजमान हुए। अहा, पृथ्वी का अवलम्बन उनको नहीं रहा और अब वे फिर कभी भी पृथ्वी पर नहीं उतरेंगे। उनका शरीर छायारहित परम औदारिक हो गया; सबको देखनेवाले प्रभु स्वयं भी सर्व दिशाओं में दिखने लगे। प्रभु के केवलज्ञान का महोत्सव करने तथा अरहन्त पद की पूजा करने स्वर्ग से इन्द्रादि देव पृथ्वी पर आ पहुँचे। इन्द्र ने स्तुति करते हुए कहा – 'हे देव! आप वीतरागता एवं सर्वज्ञता द्वारा जगत में सर्वोत्कृष्ट सुन्दरता को प्राप्त हुए हैं; आप परम इष्ट हैं।'

सर्वज्ञ परमात्मा का साक्षात्कार करके हजारों लाखों जीव पावन हुए। कुबेर ने अत्यन्त भक्तिसहित संसार की सर्वोत्कृष्ट विभूति द्वारा समवसरणरूप जिनेन्द्रसभा की रचना की। ऐसी रचना वह इन्द्र की आज्ञा से करता होगा या प्रभु की तीर्थङ्करप्रकृति से प्रेरित होकर? .....यह तो वही जाने! परन्तु यह रचना पूर्ण करते ही आश्चर्यचकित होकर उसने कहा –

'अहो देव! आपके सान्निध्य के कारण आपका समवसरण जैसा सुशोभित होता है, वैसा हमारा स्वर्ग भी शोभा नहीं देता!'

तभी मानों उसके अन्तरङ्ग से आवाज आयी – कैसे शोभा देगा? ....अरे कुबेर! यहाँ तो मोक्ष प्राप्त होता है, तुम्हारे स्वर्ग में कहाँ मोक्ष मिलता है? हे कुबेर! तुम स्वर्गलोक की उत्कृष्ट शोभा यहाँ ले आये परन्तु इन सर्वज्ञदेव की चैतन्य विभूति के समक्ष तुम्हारी इस जड़ विभूति का क्या मूल्य?'

सम्पूर्ण नीलमणि की शिला पर पृथ्वी के आधार बिना प्रभु के समवसरण की दिव्य रचना हुई परन्तु उस दिव्य शोभा में मुमुक्षु का चित्त नहीं लगता था क्योंकि उसका चित्त तो सर्वज्ञ प्रभु के चरणों में ही लगा है। उसे तो देखना है साक्षात् परमात्मा को!.... चेतनवन्त वीतराग देव को प्रत्यक्ष देखकर उनकी उपासना करना है.... और रागरहित आत्मा का स्वाद लेना है। प्रभु की शोभा कहीं बाह्य ठाठ-बाट में नहीं है, उनकी शोभा तो सर्वज्ञता एवं वीतरागता से है; इसलिए उसी में मुमुक्षु का चित्त स्थिर होता है। हे प्रभो! आपके शुद्ध चेतनस्वरूप को जानने से हमें अपना भी ऐसा ही शुद्धात्मा अनुभूति में आता है – यह आपका उपकार है। इस प्रकार सर्वज्ञ

की सभा में प्रवेश करते हुए मुमुक्षु का गौरव बढ़ जाता था और उसके परिणाम विशुद्ध होते थे। उसे ऐसी अचिन्त्य अनुभूति होती थी, मानों अपने ज्ञान में ही सर्वज्ञ बैठे हों!

प्रभु के चारों ओर दिव्य सभामण्डप है, जहाँ मोक्ष के साधक सभाजन बैठे हैं और भगवान महावीर के दर्शन का आनन्द ले रहे हैं। श्रीमण्डप की शोभा, सर्वार्थसिद्धि की शोभा से भी बढ़कर है। अहा! यह तो सर्वज्ञ की सभा.... परमात्मा का दरबार.... तीर्थङ्कर की धर्म सभा! उसकी अद्‌भुतता का क्या कहना! गणधर एवं इन्द्र जिस सभा में बैठते थे, वहाँ जगत् की सर्व लक्ष्मी–समस्त शोभा एकत्रित हुई थी। केवलज्ञान लक्ष्मी का जहाँ निवास हो, वहाँ अन्य लक्ष्मी को तो कौन पूछेगा?

अहा! एक ओर भगवान की 'केवलज्ञान–श्री', अर्थात् सर्वोत्कृष्ट ज्ञानलक्ष्मी की शोभा और दूसरी ओर समवसरण की दिव्य शोभा; इस प्रकार जीव और अजीव दोनों ने अपनी–अपनी सर्वोत्कृष्ट शोभा धारण की थी परन्तु उनमें से जो जीव उत्कृष्ट शोभावान 'सर्वज्ञ–महावीर' को जान ले, वह जीव सम्यग्दृष्टि होकर अक्षय चैतन्यलक्ष्मी के भण्डार अपने में देख लेता है।

वीतरागी, शान्तभावरूप परिणमित आत्मा कैसा होता है? उसे प्रत्यक्ष देखकर उन्हें आत्मा के शान्तस्वभाव की प्रतीति हो जाती है। अहा, सर्वज्ञ तीर्थङ्कर जिसके नायक, गणधर जिसके मन्त्री और देव जिसके द्वारपाल हों, उस दरबार का क्या कहना! भगवान ऋषभदेव की धर्मसभा (समवसरण) बारह योजन व्यास की थी और भगवान महावीर की एक योजन व्यास की है परन्तु

दोनों धर्मसभाओं में भगवन्तों ने जिस चैतन्यतत्त्व का प्रतिपादन किया, जो मोक्षमार्ग बतलाया, वह तो एक समान ही था।

उत्तम छाया तथा दिव्यप्रकाश द्वारा जो प्रभु की सेवा कर रहा था, वह अशोकवृक्ष आश्चर्य उत्पन्न करता था कि जड़ के बिना इतना विशाल वृक्ष कैसे बना ? ....और देखो, यह भी एक आश्चर्य की बात है कि वहाँ जगत के श्रेष्ठ सिंहासन होने पर भी प्रभु उस पर बैठते नहीं हैं; उससे ऊपर–अन्तरिक्ष में बैठकर ऐसा प्रगट करते हैं कि यह रत्नसिंहासन, कोई निजपद नहीं है; निजचैतन्य का पद तो अन्तर में अतीन्द्रिय ज्ञान–आनन्द द्वारा निर्मित है.... उस पर प्रभु आरूढ़ हैं।

ज्ञानानन्द पद में विराजमान सर्वज्ञ महावीर को देखकर भव्यजीव भी ज्ञानानन्द में लीन हो जाते थे.... और प्रभु की दिव्यवाणी का श्रवण करने के लिये अत्यन्त आतुर थे। प्रभु कैसा अद्‌भुत बोलेंगे ? कैसा अचिन्त्य आत्मस्वरूप बतलायेंगे.... प्रभु अभी बोलेंगे.... प्रात:काल बोलेंगे.... मध्याह्न में बोलेंगे.... सायंकाल में बोलेंगे ! ....कल तो अवश्य बोलेंगे !.... इसी आशा में दिवसों पर दिवस बीत रहे हैं जीवों के झुण्ड के झुण्ड समवसरण में आ रहे हैं और साक्षात् परमात्मा के दर्शनों से हर्षित होते हैं.... परन्तु भगवान की दिव्यध्वनि नहीं खिरती।

यद्यपि वीरप्रभु अभी बोलते नहीं हैं परन्तु मौन रहकर, अनिच्छा से गगनविहार करते हैं। विहार करते-करते वे राजगृही में विपुलाचल पर पधारे। वैशाख शुक्ला दशमी के दिन प्रभु को केवलज्ञान हुआ था; वह शेष वैशाख माह पूरा बीत गया, ज्येष्ठ माह भी बीत गया

और अब आषाढ़ भी पूरा होने लगा है.... ग्रीष्म ऋतु समाप्त हुई.... छियासठ दिन बीत चुके हैं, किन्तु भगवान की दिव्यध्वनि नहीं खिरती; तथापि भव्यजीव थके नहीं हैं, वे तो प्रभु की वाणी सुनने के लिये समवसरण में ही बैठे हैं; वहाँ उन्हें भूख नहीं लगती और न प्यास; थकान भी नहीं लगती और निद्रा भी नहीं आती। मानों क्षुधा–तृषारहित भगवान के सान्निध्य में उनकी भी क्षुधा–तृषा एवं निद्रा शान्त हो गयी हो।

अब तो आषाढ़ भी पूर्ण होकर श्रावण मास प्रारम्भ हो चुका है.... इस प्रकार श्रावण कृष्णा प्रतिपदा आयी; वर्षाऋतु प्रारम्भ हो गयी। अब तो प्रभु के मुख से भी दिव्यध्वनि की वर्षा अवश्य होगी – ऐसे विश्वासपूर्वक सभाजन भगवान की ओर दृष्टि लगाये बैठे थे....।

इतने में अचानक एक ऋषि–महात्मा ने समवसरण में प्रवेश किया; उनका नाम था इन्द्रभूति गौतम! मानस्तम्भ के निकट आते ही उनका मान विगलित हो गया और प्रभु की दिव्यता देखते ही वे विनीत हो गये। अहा, ऐसी अद्भुत वीतरागता! यह आत्मा अवश्य ही सर्वज्ञ परमात्मा हैं – ऐसा विश्वास आ गया और प्रभु के पादमूल में नम्रीभूत होकर उसी समय उन्होंने संयम धारण किया।

इन्द्रराज हर्षपूर्वक यह सब देखते रहे और उन महात्मा गौतम को आदरपूर्वक मुनिवरों की सभा में ले गये। ज्यों ही मुनिराज इन्द्रभूति-गौतम मुनिवरों की सभा में जाकर प्रभु को हाथ जोड़कर बैठे कि तुरन्त सर्वज्ञ महावीर के सर्वाङ्ग से दिव्यध्वनि खिरने लगी —

अहा! वह आश्चर्यकारी दिव्यध्वनि सुनकर सर्व जीव आनन्दमग्न हो गये; उसमें परम चैतन्यतत्त्व का अचिन्त्य स्वरूप श्रवण करके अनेक जीव ऐसे अन्तर्लीन हुए कि तत्क्षण निर्विकल्प होकर आत्म-अनुभूति करके सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को प्राप्त हुए। इस प्रकार तीर्थङ्कर भगवान महावीर ने रत्नत्रयतीर्थ का प्रवर्तन किया.... धर्मचक्र का प्रवर्तन किया।

अहा! जिस कल्याणकारी क्षण की प्रतीक्षा सती चन्दनबाला कर रही थी, आज वह क्षण आ पहुँचा। वीर प्रभु के दर्शन एवं वाणी श्रवण करके विरागी चन्दनबाला ने भी अनेक साधर्मी बहिनों के साथ आर्यिकाव्रत ग्रहण कर लिया, वे समस्त आर्यिकासंघ की प्रधान आर्यिका होकर स्व-पर आत्म-कल्याण में तत्पर हो गयी।

✦ ✦ ✦

समवसरण में एक बार राजा श्रेणिक, गौतम स्वामी से पूछते हैं – 'हे प्रभो! महासती चन्दना को इतने अधिक दु:ख क्यों सहन करने पड़े?' इस प्रश्न के उत्तर में गौतमस्वामी कहते हैं कि 'हे राजन! जीवों को अपने कर्मोदय के अनुसार ही इष्टानिष्ट संयोगों की प्राप्ति होती है। महासती चन्दना को प्राप्त कष्टों में भी इसके द्वारा किये गये परिणाम एवं तदनुसार हुआ कर्मबन्ध ही निमित्तकारण है। इस सम्बन्धी सम्पूर्ण वृतान्त इस प्रकार है —

मगधदेश में अग्निमित्र नाम का ब्राह्मण रहता था, उसके दो स्त्रियाँ थीं। उनमें एक ब्राह्मणी थी, उसके शिवभूति नाम का पुत्र था और दूसरी वैश्य थी, उसके चित्रसेना नाम की पुत्री हुई। शिवभूति के शोमिला नाम की स्त्री थी। पुत्री चित्रसेना का विवाह देवशर्मा नाम ब्राह्मण के साथ हुआ था। एक बार देवशर्मा की मृत्यु होने से चित्रसेना विधवा होने से अपने पुत्रों के साथ भाई शिवभूति के घर रहने गयी।

शिवभूति अपनी बहिन चित्रसेना और उसके पुत्रों का भरण –पोषण प्रेमपूर्वक करता था परन्तु पापी शोमिला (भावी चन्दना) को यह सहन नहीं हुआ; इसलिए उसने क्रोधित होकर मिथ्या आक्षेप किया कि मेरा पति अपनी बहिन चित्रसेना के साथ कुत्सित व्यवहार करता है। इस मिथ्या आक्षेप से चित्रसेना को बहुत दु:ख हुआ, अत: उसने क्रोधित होकर निदान किया कि इसने मुझ पर मिथ्या आरोप लगाया है, इसलिए मैं मरकर अगले भव में इसका बदला लूँगी।

एक बार शोमिला ने शिवगुप्त मुनिराज को आहारदान किया, तब उसके पति शिवभूति ने दान की अनुमोदना की। समय बीतने पर शिवभूति मृत्यु प्राप्त कर कान्तपुर नगर में राजा सुवर्णवर्मा के यहाँ महाबल नामक पुत्र हुआ और शोमिला मृत्यु प्राप्तकर चम्पानगरी के श्रीषेण राजा की कनकलता नाम की (भावी चन्दना) पुत्री उत्पन्न हुई। पूर्व भव के स्नेह से महाबल का विवाह कनकलता के साथ हुआ। दोनों पति–पत्नी प्रेमपूर्वक रहते थे। एक बार वे उद्यान में विहार कर रहे थे, वहाँ मुनिगुप्त मुनिराज को आहार देने का भक्तिपूर्वक लाभ प्राप्त हुआ।

एक बार चैत्र माह में महाबल वन में घूम रहा था, वहाँ वह सर्प के डसने से मृत्यु को प्राप्त हुआ। पति की मृत्यु होने से कनकलता भी तलवार से अपना घात करके मृत्यु को प्राप्त हुई।

✦ ✦ ✦

उज्जयिनी नगरी में धनदेव नाम का सेठ रहता था। उसकी पत्नी का नाम धनमित्रा था। महाबल का जीव उनके यहाँ नागदत्त नाम का पुत्र हुआ। नागदत्त के अर्धस्वामिनी नाम की एक छोटी बहिन थी। जो कि पूर्वभव में भी चित्रसेना नाम की बहिन थी।

पलाश नगर में महाबल नाम का राजा था, उसके काञ्चनलता नाम की रानी थी। कनकलता का जीव मरकर उनकी पद्मलता नाम की पुत्री हुई।

धनदेव सेठ ने एक अन्य स्त्री के साथ विवाह करके पहली पत्नी धनमित्रा का परित्याग कर दिया; इसलिए धनमित्रा अपने पुत्र–पुत्रियों के साथ परदेश चली गयी। वहाँ शिवगुप्त मुनिराज को अपना पुत्र नागदत्त शास्त्राभ्यास कराने के लिए सौंप दिया। कुछ ही समय में नागदत्त, महापण्डित हो गया तथा राज्य मान्य होने से, अच्छा धन प्राप्त होने से, माता और बहिन भाई अपनी आजीविका चलाने लगे।

एक बार नागदत्त, धन कमाने के लिए पलाश नगर गया। वहाँ पद्मलता (पूर्वभव की पत्नी कनकलता) के साथ विवाह हुआ और धर्म की आराधना करके संन्यास मरण करके दोनों पति –पत्नी स्वर्ग में देव–देवी हुए। वहाँ से च्युत होकर (देव तो) विद्याधरों का राजा पवनवेग का पुत्र मनोवेग हुआ और देवी,

अर्थात् पद्मलता का जीव, राजा चेतक की पुत्री चन्दना हुई। शिवभूति के भव में उसकी बहिन चित्रसेना पर चन्दना के जीव ने मिथ्या आक्षेप किया था; वह चित्रसेना, मनोवेग की पत्नी मनोवेगा हुई। मनोवेग ने पूर्व भव के स्नेह से वश होकर राजा चेतक की पुत्री चन्दना का हरण किया है। पूर्व भव में शिवभूति की स्त्री शोमिला ने अपनी ननद चित्रसेना पर मिथ्या आरोप लगाया, इसलिए चित्रसेना ने दूसरे भव में बदला लेने का निदान किया था। चित्रसेना के जीव ने मनोवेगा होकर चन्दना को जङ्गल में फिकवाकर बहुत दु:ख का कारण होकर पूर्व भव का वैर लिया है।

चन्दना का हरण करनेवाला विद्याधर मनोवेग इसी भव में मोक्ष जाएगा और चन्दना भी समाधिमरण करके अच्युत स्वर्ग में देव होगी। वहाँ से मनुष्य होकर वह देव, मुक्ति प्राप्त करेगा।

इस प्रकार करुणासागर गौतमस्वामी के श्रीमुख से महासती चन्दना के पूर्व भवों की भवावली जानकर सभाजन वैराग्य को प्राप्त हुए। कालान्तर में भगवान महावीर निर्वाण पधारे और चन्दना का जीव, देव हुआ, जहाँ से चयकर आगामी काल में मुक्ति प्राप्त करेगा। ●● *(– चौबीस तीर्थङ्कर पुराण एवं उत्तर पुराण के आधार पर)*

11

महासती सुलोचना का जीवन प्रसङ्ग

चमत्कार चैतन्य का

हस्तिनापुर के महाराजा सोमप्रभ का पुत्र जयकुमार, भरत चक्रवर्ती का धर्मी और शूरवीर सेनापति था। एक दिन जयकुमार अपनी रानी सुलोचना के साथ परिवारजनोंसहित महल की छत पर बैठा हुआ था। उन्होंने ऊपर आकाश में उड़ते हुए एक कबूतर-कबूतरी को देखा, जिसे देखते ही जयकुमार के मुख से – 'हा! प्रभावती तू कहाँ है ?' यह शब्द निकले और उसे मूर्च्छा आ गयी, जिससे वह बेहोश हो गया।

सुलोचना को भी उन कबूतर-कबूतरी को देखते ही जातिस्मरण ज्ञान हुआ और वह भी – 'हा! मेरा रतिकर कहाँ है ?' इन शब्दों को बोलकर मूर्च्छित हो गयी। जब वे दोनों होश में आये, तब अपने पति की आज्ञा मानकर, रानी सुलोचना ने अपने पूर्व भवों का वर्णन परिवारजनों के सामने इस प्रकार किया –

❖ ❖ ❖

जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह में पुष्पकलावती नाम का देश है। उसमें मृणालवती नगरी के राजा सुकेतु थे। उस नगरी में रतिवर्मा नाम का सेठ रहता था। उसकी स्त्री का नाम कनकश्री और पुत्र का

नाम भवदेव था। भवदेव, चरित्रहीन था। उसी नगरी में श्रीदत्त नाम का सेठ रहता था, उसकी पत्नी का नाम विमलश्री और पुत्री का नाम रतिवेगा था। अशोकदेव नाम का एक तीसरा सेठ भी वहाँ रहता था, उसकी पत्नी का नाम जिनदत्ता और पुत्र का नाम सुकान्त था। सुकान्त हमेशा धर्मकार्यों में रचा-पचा रहता था। भवदेव के माता-पिता ने रतिवेगा के माता-पिता के समक्ष भवदेव के साथ रतिवेगा के विवाह का प्रस्ताव रखा, जिसके फलस्वरूप दोनों पक्ष सहमत हुए।

एक बार भवदेव धन कमाने की इच्छा से परदेश जा रहा था। उस समय उसने श्वसुर श्रीदत्त सेठ से कहा – 'हे तात! मैं बारह वर्ष तक वापस नहीं जाऊँ तो तुम रतिवेगा का विवाह अन्यत्र कर सकते हो। कर्मसंयोग से हुआ भी ऐसा ही। अत: बारह वर्ष व्यतीत होने के पश्चात् श्रीदत्त सेठ ने रतिवेगा का विवाह अशोक सेठ के पुत्र सुकान्त के साथ विधिपूर्वक कर दिया। तत्पश्चात् जब भवदेव परदेश से वापस आया और उसने सारा वृतान्त सुना तो वह अत्यन्त क्रोधित हुआ, उसने सुकान्त और रतिवेगा को मार डालने का निर्णय लिया।

यह बात जानकर भय के मारे सुकान्त और रतिवेगा वन में चले गये। वहाँ एक सुन्दर सरोवर था। उस सरोवर पर शक्तिषेण नाम का राजा ठहरा हुआ था। वे दोनों शक्तिषेण की शरण में पहुँच गये तथा निर्भय होकर रहने लगे। उन दोनों के महान पुण्योदय से वहाँ भी एक चारण ऋद्धिधारक मुनिराज आहार के लिए पधारे। राजा शक्तिषेण ने प्रसन्नचित्त से नवधाभक्तिपूर्वक मुनिराज को

आहार दिया तथा पूजा –भक्तिपूर्वक उनका सम्मान किया। इस विधि को देखकर दोनों दम्पति अत्यन्त हर्षित हुए और अनित्यादि बारह भावनाओं का चिन्तवन करते–करते, मन में दयाभाव धारण करके वहीं अपना समय व्यतीत करने लगे।

एक बार अवसर मिलते ही दुष्ट भवदेव ने वहाँ आकर दोंनो दम्पतियों को जलाकर मार डाला और राजा शक्तिषेण के सुभटों ने दुष्ट भवदेव को मार डाला। इसलिए कहावत है कि जो दूसरों के लिए कुआँ खोदता है, उसके लिए पहले से ही कुआँ तैयार रहता है।

❖ ❖ ❖

पूर्व विदेह की पुण्डरीकिणी नगरी में प्रजापाल नाम का राजा राज्य करता था और वहाँ एक कुबेरमित्र नाम का सेठ भी रहता था। उस सेठ की बत्तीस स्त्रियों में धनवती नाम की सेठानी सबसे मुख्य थी। इस सेठ के घर सुकान्त का जीव, रतिकर नाम का कबूतर और रतिवेगा का जीव, रतिसेना नाम की कबूतरी हुई। यह दोनों कबूतर–कबूतरी सेठ के घर में आनन्दपूर्वक अपना समय व्यतीत करने लगे।

एक बार ऋद्धिधारी मुनिराज आकाशमार्ग से गमन करते हुए सेठ के यहाँ आहार के लिए पधारे। उन्हें देखकर सेठ –सेठानी के हृदय में अत्यन्त आनन्द हुआ। उन्होंने शुद्धभाव से मुनिराज का पड़गाहन करके, नवधाभक्तिपूर्वक आहारदान दिया। उस समय कबूतर–कबूतरी के जीव ने भी भक्तिभाव से मुनिराज के चरण कमलों के दर्शन किये ओर पंख फैलाकर चरणों का स्पर्श किया। मुनिराज के दर्शनमात्र से ही दोनों को अपनी पूर्व भव का

जातिस्मरणज्ञान हो गया और उन्होंने आहारदान की बहुत अनुमोदना की, जिसके प्रभाव से उनके महान पुण्य का बन्ध हुआ।

एक बार वे दोनों कबूतर-कबूतरी, दाना चुगने के लिए दूसरे गाँव में गये। वहाँ पर उनके पूर्व भव का शत्रु भवदेव का जीव मरकर बिल्ली हुआ था, वह क्रोधावेश से इन दोनों को मारकर खा गया। इसलिए ज्ञानियों का कहना है कि कभी भी किसी के साथ वैरभाव मत करो, यह वैरभाव ही भव-भवान्तर में जीव को दु:ख देनेवाला है।

❖ ❖ ❖

विजयार्द्ध की दक्षिण श्रेणी में गङ्गाधर देश की शींखली नाम सुन्दर नगरी का राजा आदित्यगति और रानी शशिप्रभा थे। रतिकर नाम का कबूतर (सुकान्त का जीव) मरकर उन राजा-रानी का हिरण्यवर्मा नाम का पुत्र हुआ। विजयार्द्ध की उत्तर श्रेणी के गौरी देश के भोगपुर नाम की नगरी के विद्याधर राजा वायुधर की स्वर्णप्रभा नाम की रानी थी। उसके गर्भ से वह रतिसेना नाम की कबूतरी (रतिवेगा का जीव) प्रभावती नाम की पुत्री हुई। युवावस्था होने पर प्रभावती का विवाह हिरण्यवर्मा के साथ हुआ। योनानुयोग अमुक दिनों के पश्चात् प्रभावती ने एक कबूतर के जोड़े को उड़ते देखा और उसे देखते ही प्रभावती को अपने पूर्व भव की याद आ गयी। तत्पश्चात् एक दिन प्रभावती और हिरण्यवर्मा ने एक चारण ऋद्धिधारी मुनि के समीप जाकर अपने पूर्व भव का वृतान्त सुना। जिसे सुनकर अपने पूर्वभव सम्बन्धी ज्ञान होने पर उन दम्पति में अत्यन्त गाढ़ी प्रीति हो गयी।

किसी समय किसी वैराग्य प्रसङ्ग को प्राप्त करके हिरण्यवर्मा,

संसार-शरीर और भोगों से विरक्त हो गया और अपने पुत्र को राज्य सौंपकर स्वयं ने जिनदीक्षा धारण कर ली। अपने पति को दीक्षित होते देखकर प्रभावती ने भी गुणवती आर्यिका के समीप आर्यिका व्रत धारण कर लिये।

कुछ दिनों के बाद गुणवती आर्यिका के साथ प्रभावती ने वहाँ से विहार किया और विहार करते-करते पुण्डरिकिणी नगरी में आ पहुँची। वहाँ प्रभावती को देखकर धनवती सेठानी ने गुणवती आर्यिका से पूछा - 'हे माता! यह कौन है, जिसे देखकर मेरे हृदय में स्नेह उत्पन्न हो रहा है? और इसका कारण क्या है? - वह मुझे बताओ।'

सेठानी के वचन सुनकर स्वयं प्रभावती ने कहा - 'हे देवी! क्या तुम्हें अपने घर में रहनेवाले कबूतर युगल याद नहीं? याद करो, मैं तुम्हारे घर में रतिसेना नाम की कबूतरी थी।'

यह बात सुनकर सेठानी को बहुत ही आश्चर्य हुआ और उसने पूछा कि रतिकर कबूतर कहाँ है? उत्तर में प्रभावती ने कहा - 'वह भी मरकर विद्याधरों का राजा हिरण्यवर्मा हुआ है, परन्तु अब मुनिदीक्षा धारण करके विहार करते-करते इस नगरी में आये है। सेठानी ने मुनि के पास जाकर भक्तिपूर्वक नमस्कार किया और तत्पश्चात् प्रभावती के उपदेश से सेठानी भी आर्यिका हो गयी।'

एक बार मुनिराज हिरण्यवर्मा ने सात दिन तक श्मशान में प्रतिमा आसन से योग धारण किया। वहाँ दुष्ट बिलाड़ा (भवदेव का जीव) विद्युतचोर ने सेठानी की दासी के मुँह से इन मुनिराज के पूर्व भवों का वृतान्त सुना था, इसलिए विभङ्गावधि से मुनिराज को श्मशान में ध्यानस्थ जानकर वह विद्युतचोर वहाँ आया और मुनिराज हिरण्यवर्मा व अर्यिका प्रभावती को जलती चिता में एक साथ फेंक दिया। उस समय वे दोनों अग्नि के तीव्र ताप के परीषह से शुद्ध और समताभावों से प्राण त्यागकर अपने पुण्य-प्रताप से स्वर्ग में ऊँची जाति के देव हुए। जब राजा को इस दुष्कृत्य का पता चला तो राजा ने विद्युतचोर को मार डालने की आज्ञा दे दी। दोनों देव-देवी ने अवधिज्ञान से राजा का यह विचार जानकर, राजा को समझाया और शान्त कर दिया।

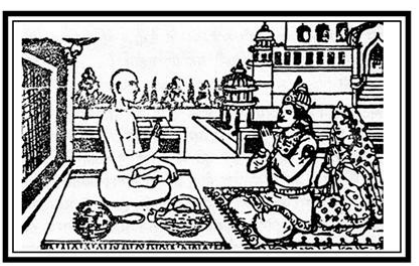

कुछ समय व्यतीत होने पर एक बार वे दोनों देव-देवी फिर से वहाँ आये और उन्होंने महामुनि भीम को देखकर नमस्कार किया, उनसे धर्मोपदेश सुना। तत्पश्चात् देव ने कहा – 'हे स्वामिन! आपके इस छोटी उम्र में दीक्षा लेने का कारण क्या है?'

उसके उत्तर में मुनिराज ने कहा – 'मैं इस पुण्डरीकिणी नगरी में एक दरिद्र कुल में जन्मा था। मेरा नाम भीम है। एक बार अवसर

मिलने पर मैंने एक मुनिराज से धर्म का उपदेश सुना। उस समय मुझे जातिस्मरण ज्ञान हो गया था। जिससे मुझे अपनी पूर्व भव की सब बातों का पता चल गया। मैं विचार करने लगा कि –

● मैं अपने पहले भव में भवदेव नाम का वैश्य पुत्र था, उस भव में मैंने रतिवेगा और सुकान्त को मार दिया।

● तत्पश्चात् जब वे मरकर कबूतर-कबूतरी हुए, तब मैं बिल्ली बनकर पूर्व भव के द्वेषवश उन्हें मार दिया।

● तत्पश्चात् वे हिरण्यवर्मा और प्रभावती हुए, तब मैं विद्युतचोर बना और जब वे दोनों मुनि-आर्यिका के वेश में थे, तब मैंने उन्हें जलती हुई चिता में जला दिया। इस महापाप के कारण महादु:खों का स्थान जो नरक है, वहाँ मैं गया और अनेक प्रकार के भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी आदि के महान कष्ट सहन करने पड़े। नरक में से निकलकर मुझे संसारचक्र में जो चक्कर लगाने पड़े, उससे मेरा आत्मा इतना संक्लेशित हो गया कि उसका शब्दों में वर्णन नहीं कर सकता। उसी समय मैं विरक्त होकर दिगम्बर साधु हो गया।'

इस विचित्र कथा को सुनकर इस देवयुगल को बहुत आश्चर्य हुआ और उन्हें अवधिज्ञान द्वारा समस्त बातें स्पष्टरूप से ज्ञात हो गयीं – 'हे प्रभु! जिनको आपने पहले कितनी ही बार मारा है, वे दोनों हम ही हैं' – ऐसा कहकर उन्होंने भीममुनि की वन्दना की और दोनों स्वर्ग में वापस चले गये। वहाँ महामुनि भीम ने बारह भावनाओं का चिन्तवन करके, कठिन तपश्चर्या करके केवलज्ञान प्राप्त किया और घाति-अघाति कर्मों का नाश करके मोक्षपद प्राप्त किया।

अहा! देखो, भव-भव में बैर के परिणाम धारण करके मनुष्य जीव को मारा, कबूतर के जीव को मारा और मुनि-आर्यिका को जिन्दा जला दिया – ऐसे पापी भवदेव के जीव ने भी क्षणभर में संसार के दु:ख से विरक्त होकर द्रव्यदृष्टि के बल से आत्मध्यान लगाकर, इन जयकुमार और सुलोचना के जीव के पूर्व ही, भीम महामुनि होकर मोक्ष प्राप्त कर लिया। अहा! वस्तुस्वरूप की अगाध महिमा का क्या कहना! भव-भव में अन्य जीवों को मारनेवाला, स्वयं उनके पूर्व मोक्ष चला गया। यह सब निर्दोष त्रिकाली चैतन्य सामान्य स्वभाव के आश्रय का ही प्रताप है।

❖ ❖ ❖

इस सम्पूर्ण वृतान्त का समापन करते हुए सुलोचना अपने स्वामी / पति जयकुमार को याद दिलाती है – हे नाथ! उस समय हम महामुनि भीम की वन्दना करके स्वर्ग में चले गये थे और स्वर्ग के सुख भोगकर, स्वर्ग से चयकर आप राजा सोमप्रभ के पुत्र कुमार जयदेव हुए और मैं राजा अकम्पन की पुत्री सुलोचना हुई हूँ। यही कारण है कि कबूतरों के जोड़े को देखकर अपने को जातिस्मरणज्ञान भी हो गया है। इस प्रकार अपने पूर्व भवों की कथा सुनकर वे दम्पति और उनके परिवारजन अत्यन्त सन्तुष्ट हुए।

❖ ❖ ❖

एक बार अनेक राजाओं द्वारा पूजित राजा जयकुमार का चित्त संसार की क्षणभङ्गुरता की तरफ गया और इतना वैराग्यचित्त हो गया कि उन्होंने संसार को एकदम अनित्य समझकर जिनदीक्षा धारण करने का निर्णय कर लिया। अपने निर्णयानुसार वे श्री आदिनाथस्वामी के समवसरण में पहुँचे। भगवान के श्रीमुख से

धर्म श्रवण करते-करते, संसार शरीर और भोगों से विरक्त होकर दिगम्बर दीक्षा धारण कर ली तथा थोड़े ही दिनों में आदिनाथस्वामी के बहत्तरवें (72 वें) गणधर बनकर घातिकर्मों का नाश करके, केवलज्ञानी बन गये। सुलोचना भी आर्यिका व्रत धारणकर स्वर्ग में गयी और वहाँ से आकर मनुष्य होकर मुक्ति प्राप्त करेगी।

इस कथा से हमें यह बोध प्राप्त होता है कि एक समय के पापपरिणाम से पूर्णत: आत्मतत्त्व पापी नहीं हो जाता। पापपरिणाम के काल में भी निज शुद्ध चैतन्यसत्ता तो पाप के अभावस्वभावरूप विद्यमान है। उस शुद्ध चैतन्यसत्ता का अवलम्बन लेनेवाला जीव, पर्याय में पवित्रता प्रगट कर परमात्मा बन सकता है। इसलिए पात्र आत्मार्थी जीवों को स्वयं को एवं पर को भी पर्यायदृष्टि से देखने की आदत का परित्याग करके सबको द्रव्यस्वभाव से ही देखने की आदत डालना चाहिए। सम्यग्दर्शन एवं वीतरागता की प्राप्ति का यही एकमात्र उपाय है।●●

(- आदिपुराण भाग 2 में से)

12

संयम–पथ अनुगामिनी

महासती : राजुलमती

महाराजा श्रीकृष्ण की राजसभा में श्री नेमिकुमार का बड़ा सम्मान था। एक बार भव्य राजसभा में श्री नेमिकुमार पधारे। समस्त भक्तजनों ने खड़े होकर उन्हें आदरपूर्वक नमस्कार किया। महाराज श्रीकृष्ण ने भी आगे बढ़कर श्री नेमिकुमार को हाथ पकड़कर अपने साथ सिंहासन पर बिठाया। अहा! एक राजचक्री और दूसरे धर्मचक्री!! उनसे राजसभा सुशोभित हो उठी।

अहा! जहाँ एक वर्तमान तीर्थङ्कर और दूसरे भावी तीर्थङ्कर – ऐसे दो तीर्थङ्कर महात्मा एक साथ विराजते हों, उस सभा की अद्भुत शोभा का क्या कहना।

राज्यसभा में अनेक प्रकार की चर्चाएँ हो रही थीं। तभी चर्चा चल पड़ी कि इस समय सभा में सर्वाधिक बलवान कौन

है ? किसी ने कहा – भीम सबसे बलवान है; किसी ने कहा अर्जुन; किसी ने युधिष्ठिर का नाम लिया; कई लोगों ने श्रीकृष्ण के बल की प्रशंसा करते हुए कहा कि उनमें एक हजार सिंह का बल है; कई लोगों ने बलभद्र के बल की प्रशंसा की।

सम्पूर्ण चर्चा को ध्यानपूर्वक सुनकर अन्त में बलभद्र ने हँसते-हँसते नेमिनाथ की ओर दृष्टि करके कहा – 'सभाजनो! इस समय श्री नेमिकुमार यहाँ विराज रहे हैं, ये ही सबसे अधिक बलवान है; इनके अचिन्त्य बल की तुलना किसी से नहीं हो सकती। अरे! ये तो इन्द्र से भी अधिक बलवान हैं। ये चाहे तो अपनी अँगुली से बात ही बात में मेरुपर्वत को तथा सारी दुनिया को उलट-पुलट कर सकते हैं।'

अहा! ये तो तीर्थङ्कर जीव हैं। अरे! इनका आत्मिक बल तो अतुल्य है ही, शारीरिक बल भी वचनातीत है। मुझे आश्चर्य हो रहा है कि ऐसे महा बलवान पुरुष की उपस्थिति में आप दूसरों के बल की चर्चा कर रहे हैं। अरे! क्या तेजस्वी सूर्य के समक्ष सामान्य तारामण्डल की महिमा शोभास्पद है।

श्रीकृष्ण को अपने बल का अत्यन्त गौरव था; अत: उनसे बलभद्र की यह बात सहन नहीं हुई। उन्होंने शक्तिपरीक्षण हेतु नेमिकुमार को मल्लयुद्ध का निमन्त्रण दिया... परन्तु...

'आप तो मेरे ज्येष्ठ भ्राता हैं, आपके साथ मल्लयुद्ध मुझे शोभा नहीं देता।' – ऐसा कहकर नेमिकुमार ने इन्कार कर दिया।

अन्त में, अन्य प्रकार से नेमि-कृष्ण दोनों के बल की परीक्षा हुई और नेमिकुमार के बल की सर्वोत्कृष्टता सिद्ध हुई।

श्रीकृष्णसहित सारी सभा ने श्री नेमिकुमार की प्रशंसा करके अभिनन्दन किया। अरे! उस समय स्वयं इन्द्र ने आकर नेमिकुमार की स्तुति की।

यद्यपि नेमिकुमार को भी उस समय चारित्रमोहजनित मान का किञ्चित विकल्प आ गया था परन्तु शरीर से भिन्न चैतन्य के अनन्त बल की प्रतीति होने से वे प्रभु अपनी आत्मचेतना में मान -कषाय को प्रविष्ट नहीं होने देते थे, भेदज्ञान के बल से उसे चेतना से बाहर ही रखते थे। उन्हें शरीर के बल का मद नहीं था। अशरीरी एवं निर्मान निज परमात्मतत्त्व की साधना उनको निरन्तर चलती ही रहती थी। वास्तव में वे एक 'राजयोगी' थे और उन्हें अल्प काल में 'योगीराज' बनना था। उनका जीवन जगत् के सामान्य जीवों की अपेक्षा विशिष्ट था। श्रीकृष्ण भी उनका आदर -सत्कार करते थे। इस भरतक्षेत्र के एक भावी तीर्थङ्कर की सेवा करते थे।

❖ ❖ ❖

राज्यसभा की उपर्युक्त घटना के पश्चात् श्रीकृष्ण के मन में चिन्ता रहने लगी कि नेमिकुमार कदाचित् मेरा राज्य लें लेंगे तो...।

अरे रे! वैरागी नेमिकुमार को ऐसे तुच्छ राज्य का कहाँ मोह था? उन्होनें तो जन्म से ही तीन लोक का राज्य प्राप्त किया था; मेरु पर अभिषेक करके इन्द्र भी उनके सेवक बन गये थे; वे श्रीकृष्ण के इस छोटे से राज्य को क्यों लेते? परन्तु तीव्र राज्यलिप्सा के कारण श्रीकृष्ण को ऐसा भय हुआ कि कदाचित् नेमिकुमार मेरा

राज्य ले लेंगे। इस कारण वे ऐसा कोई उपाय विचारने लगे कि 'नेमिकुमार शीघ्र जिनदीक्षा ले लें। अरे रे मोह!'

❖ ❖ ❖

एक बार महाराजा श्रीकृष्ण अपनी रानियों सहित सरोवर के किनारे क्रीड़ा करने गये। श्रीकृष्ण के साथ नेमिकुमार भी वहाँ गये थे और अपनी भाभियों (सत्यभामा, रुक्मणी, जाम्बुवती आदि) के साथ हास्य-विनोद कर रहे थे। जलक्रीड़ा के पश्चात् नेमिकुमार ने सत्यभामा से कहा – 'भाभी, मेरा यह वस्त्र भी धो देना।'

नेमिकुमार द्वारा सहजभाव से कही गयी इस बात को सुनकर सत्यभामा तुनककर बोली – 'कुँवरजी! तुम मुझे वस्त्र धोने का आदेश देनेवाले कौन हो? मैं क्या तुम्हारी दासी हूँ? मेरे पति श्रीकृष्ण त्रिखण्डाधिपति, नागशैय्या में शयन करनेवाले, दैवीय शंख फूँकनेवाले तथा सुदर्शनचक्र चलानेवाले हैं, उनके जैसा एक भी पराक्रम क्या तुमने कभी किया है?.... वस्त्र धुलवाना हो तो विवाह कर लो न!' इस प्रकार कटाक्षपूर्वक ताना दिया।

सदा गम्भीर और शान्त रहनेवाले नेमिकुमार को भाभी के कटाक्ष वचनों से किञ्चित मान का भाव जागृत हो गया। वे कुछ भी बोले बिना मन्द-मन्द मुस्कराहट के साथ सीधे राजभवन में गये और वहाँ श्रीकृष्ण की नागशैय्या पर चढ़ कर क्रीड़ा करने लगे। नेमिकुँवर के पुण्यप्रताप से उस नागशैय्या के देव शान्त रहे और उनका सम्मान किया। फिर एक हाथ की अँगुली पर उन्होंने सुदर्शनचक्र घुमाया और दूसरे हाथ में दैवीय शंख लेकर उसे नासिका द्वारा जोर से फूँक दिया।

उस शंखध्वनि से द्वारिका में चारों ओर हाहाकार मच गया। हाथी–घोड़े आदि भयभीत होकर इधर–उधर भागने लगे। नगर में कोलाहल मच गया कि यह क्या हुआ ? समुद्र में लहरें उछलने लगीं। महाराजा श्रीकृष्ण विचार में पड़ गये कि अरे! मेरे सिवा दूसरा कौन शूरवीर है, जो शंख फूँक रहा है ?

यह सब पराक्रम अपने लघु भ्राता नेमिकुमार का है – ऐसा जब उन्हें ज्ञात हुआ, तब वे मन ही मन प्रसन्न हो उठे कि अब नेमिकुमार के मन में कुछ गर्व जागृत हुआ है; इसलिए अब वे विवाह के लिए अवश्य सम्मति देंगे।

नेमिकुमार की आयु एक हजार वर्ष थी, उसमें से अभी 300 वर्ष व्यतीत हुए थे, तथापि अभी तक वे विवाह के लिए सम्मत नहीं हुए थे। श्रीकृष्ण तुरन्त नेमिकुमार के पास गये और उन्हें समझाकर शान्त करते हुए कहा – 'हे देव! आप तो महान हैं, मुझसे भी अधिक शूरवीर हैं; आपकी वीरता को कौन नहीं जानता ? सत्यभामा ने आपको नहीं पहिचाना, इसलिए उसने आपका अनादर किया। प्रभो! उसके अपराध को क्षमा करो और प्रसन्न होओ।'

नेमिकुमार तो मानों कुछ हुआ ही न हो – इस प्रकार मन्द –मन्द मुस्कराते हुए, श्रीकृष्ण के साथ विनोद करते–करते राजमहल में चले गये। वहाँ जाकर वे आत्मध्यान में बैठ गये और शान्त चैतन्यतत्त्व में उपयोग लगाकर उसकी भावना करने लगे –

मैं क्रोध नहिं, नहिं मान, त्यों ही लोभ–माया हूँ नहीं।
कर्ता न कारयिता न; अनुमंता भी कर्ता का नहीं॥

निर्ग्रन्थ है, निष्काम है, निःक्रोध अरु निर्मान है।
निःशल्य और नीराग, निर्मद, सर्व दोष-विमुक्त है॥
सब जीव में समता मुझे, ना वैर किसी के साथ भी।
जगत आशा छोड़कर, प्राप्ति करूँ मैं समाधि की॥

– ऐसे आत्मभावना से उस समय निर्विकल्प होकर प्रभु नेमिकुमार ने क्षणमात्र में सर्व विभाव झरा दिये। वाह, धर्मात्मा की ज्ञानचेतना की शूरवीरता कोई अद्भुत है!

❖ ❖ ❖

उपरोक्त घटना से बलभद्र तथा श्रीकृष्ण को ऐसा लगा कि अब दीर्घ काल के पश्चात् नेमिकुमार के चित्त में किञ्चित राग जागृत हुआ है; इसलिए इस अवसर का लाभ उठाकर नेमिकुमार को वैवाहिक बन्धन में बाँध देना चाहिए। ऐसा विचार करके महाराज समुद्रविजय की सम्मतिपूर्वक उन्होंने नेमिकुमार के विवाह का निश्चय किया और श्रीकृष्ण स्वयं राजकुमारी राजुल की मँगनी करने जूनागढ़ गये।

जूनागढ़ पहुँचने पर राजा उग्रसेन ने श्रीकृष्ण का जोरदार स्वागत किया। अत्यन्त वात्सल्यभाव से उन्होंने कहा – 'हे स्वामी! मेरे आँगन में पधारकर आपने मुझे उपकृत किया है। कहिये, आपकी क्या आज्ञा है?'

श्रीकृष्ण ने कहा – 'हे राजन्! हमारे नेमिकुँवर, जो कि तीर्थङ्कर होनेवाले हैं एवं सर्व गुणसम्पन्न हैं, उनके लिए आपकी पुत्री राजकुमारी राजुल सर्व प्रकार से योग्य है; इसलिए आप स्वेच्छा से नेमिकुमार के साथ राजुलमती के विवाह सम्बन्ध की स्वीकृति प्रदान करें – ऐसी हमारी भावना है।'

'अहा! राजुलकुमारी को नेमिकुमार जैसा पति मिले, इससे अधिक सौभाग्य की बात और क्या हो सकती है? हमारा अहोभाग्य कि आपने स्वयं ऐसी भावना व्यक्त की है!' –ऐसा कहकर महाराज उग्रसेन ने श्रीकृष्ण की बात को सहर्ष स्वीकार कर लिया।

❖ ❖ ❖

जब राजमती ने जाना कि श्री नेमिकुमार मेरे पति होंगे, तब उनके हृदय में कोई दिव्य हर्ष की अनुभूति हुई – 'अहा! एक तीर्थङ्कर महात्मा मेरे जीवनसाथी बनेंगे! उन धर्मात्मा के सहवास से मैं धन्य हो जाऊँगी।'

❖ ❖ ❖

इधर द्वारिका में नेमिकुमार भी राजमती के साथ विवाह के लिए तैयार हो गये। नेमिकुमार, राजमती के साथ विवाह करेंगे – यह बात जानकर सारी नगरी में कौतूहल के साथ हर्ष छा गया। राजमाता शिवादेवी भी अत्यन्त हर्षित होकर पुत्रवधु का मुख देखने के लिए आतुर हो गयीं।....परन्तु 'जो–जो देखी वीतराग ने, सो–सो होसी वीरा रे, अनहोनी कबहूँ नहीं होसी'....।

❖ ❖ ❖

एक ओर तो नेमि–राजुल के विवाह का अवसर निकट आ रहा था। द्वारिका और जूनागढ़ के प्रजाजन, यह आनन्दोत्सव देखने को आतुर थे; जबकि दूसरी ओर श्रीकृष्ण के चित्त में शान्ति नहीं थी, उनका अन्तर एक अव्यक्त भय से अशान्त था; सत्यभामा और राज्यसभावाली घटना के पश्चात् उन्हें चिन्ता थी कि कुमार नेमिनाथ मेरी अपेक्षा अधिक बलवान एवं पराक्रमी हैं, वे बात ही

बात में मुझे पराजित कर सकते हैं; इसलिए विवाह के पश्चात् कदाचित् वे मुझसे यह राज्य छीन लेंगे तो..... ?

एक बार अपने मन की यह चिन्ता उन्होंने ज्येष्ठ भ्राता बलदेव के सम्मुख व्यक्त की, तब गम्भीर बलभद्र ने कहा – 'हे भाई कृष्ण! हम जानते हैं कि श्री नेमिकुमार तीर्थङ्कर होनेवाले हैं, जन्मते ही इन्द्रों ने उनकी सेवा की थी, वह भी हम सबने प्रत्यक्ष देखा है। यद्यपि वंश परम्परा से तो महाराजा समुद्रविजय के पश्चात् राज्य के अधिकारी वे ही हैं, परन्तु वे अति वैराग्यवान हैं; उन्हें तो पहले से ही राज्य अथवा भोगों की कोई आकाँक्षा नहीं है; इसलिए वे यह राज्य ले लेंगे – ऐसा भय रखने का कोई कारण मुझे तो दृष्टिगोचर नहीं होता है। अरे! उनके आगमन से तो अपने राज-दरबार की शोभा बढ़ा जाती है। उनका चित्त तो संसार से इतना उदास है कि वैराग्य का कोई प्रसङ्ग आने पर वे संसार का परित्याग करके जिनदीक्षा लेकर मुनि हो जाएँगे।

❖ ❖ ❖

बलभद्र की बात सुनकर श्रीकृष्ण के चित्त में किञ्चित् शान्ति हुई और वे ऐसा कोई प्रसङ्ग उपस्थित करने की युक्ति सोचने लगे कि जिसे देखकर नेमिकुमार को वैराग्य हो जाए और वे राज्य का परित्याग कर वन में चले जाएँ।

❖ ❖ ❖

आखिर वह समय आ ही गया। जगत् के जीवों का सौभाग्य जगने का स्वकाल निकट था। यही कारण है कि रागवर्द्धक वैवाहिक प्रसङ्ग भी वैराग्य में परिणमित हो गया। सत्य ही है कि

उपदानगत् योग्यता के अनुसार ही कार्य होता है एवं तब तद्नुकूल निमित्त सहज प्राप्त होते जाते हैं।

दूल्हा बने नेमिकुमार ने राजमती का वरण करने के लिए बारातसहित जूनागढ़ की ओर प्रस्थान किया। विभिन्न प्रकार के मङ्गल वाद्य-शहनाई आदि के स्वरों से सारा वातावरण गूँज उठा। बारात की शोभा अद्भुत थी। श्रीकृष्ण और बलभद्र जैसे महापुरुष जिसका सञ्चालन कर रहे हों; हजारों राजा-महाराजा जिसके बाराती बने हों, और रथ में विराजमान नेमिकुमार जिस बारात के दूल्हा हों, उस बारात की शोभा का तो कहना ही क्या था! दिव्य अलङ्कारों तथा प्रसन्नकारी मुद्रा से सुशोभित नयनाभिराम कुमार, राजुल के नेत्रों एवं चित्त को आकर्षित कर रहे थे।

बारात आनन्दपूर्वक जूनागढ़ में पहुँच रही है; राजमहल के झरोखे में सहेलियों के साथ विनोद करती हुई राजकुमारी राजुल अपने हृदय सम्राट को एकटक निहार रही है।

इतने में अचानक ही खरगोश, हिरण आदि पशुओं का करुण स्वर नेमिकुमार के कानों में पड़ा। एक बाड़े में बन्द भूखे-प्यासे पशु, नेमिकुमार की ओर देखकर करुण क्रन्दन कर रहे थे, मानों वे अपनी रक्षा के लिए पुकार रहे थे कि 'प्रभो हमें बचाओ...बचाओ!'

पशुओं की करुण पुकार सुनकर दूल्हा नेमिकुमार चौंक उठे।

रथ को वहीं रोक कर उन्होंने पूछा – अरे! आनन्द के वातावरण में यह करुण क्रन्दन कैसा? यहाँ इन पशुओं को क्यों बन्द कर रखा है?

बाड़े के रखवालों ने हाथ जोड़कर कहा – प्रभो! महाराजा श्रीकृष्ण की आज्ञा से यहाँ इन पशुओं को बन्द किया गया है।

नेमिकुमार अधिक चौंके और पूछा – अरे! श्रीकृष्ण की आज्ञा से इन पशुओं को बन्द किया है! लेकिन किसलिए? ऐसी आज्ञा उन्होंने क्यों दी?

रखवालों ने कहा – हे देव! श्रीकृष्ण महाराजा ने हमें आदेश दिया है कि इन पशुओं को देखकर नेमिकुँवर पूछें तो कह देना कि आपकी बारात में आये हुए माँसाहारी राजाओं के लिए यह पशु यहाँ रखे गये हैं।

'अरे! क्या बारात में माँसाहारी राजा हैं? और उनके आहार के लिए ये निर्दोष पशु?' – नेमिकुमार को आश्चर्य हुआ। नहीं, मेरी बारात में माँसाहारी राजा नहीं हो सकते और श्रीकृष्ण तो जानते हैं कि मैं तीर्थङ्कर हूँ, मेरे आस-पास भी किसी प्रकार की हिंसा या माँसाहार नहीं हो सकता। अवश्य ही इसमें श्रीकृष्ण का कोई मायाचार है; तुरन्त ही उन अवधिज्ञानी भगवान ने श्रीकृष्ण के मन की बात जान ली।

अरे! मैं उनका राज्य छीन लूँगा – ऐसे भय के कारण मेरे हृदय में वैराग्य जागृत करने के लिए उन्होंने यह प्रपञ्चपूर्ण युक्ति बनाई है। अरे! धिक्कार है इस संसार को! धिक्कार है ऐसी राज्यलिप्सा को! वाह श्रीकृष्ण! धन्य है तुम्हें कि इस मायाचार

द्वारा तुमने मुझे वैराग्य का निमित्त प्राप्त कराया। तुम सहर्ष इस राज्य का उपभोग करो, मैं तो अपने मोक्ष साम्राज्य की साधना करूँगा। बस होओ इस संसार से.... मुझे नहीं चाहिए राज्य और नहीं करना है विवाह।

वैरागी कुमार ऐसा विचार कर रहे थे कि उसी समय मतिज्ञान की निर्मलता से उन्हें पूर्व भवों का जातिस्मरण हुआ; उसमें चिन्तागति विद्याधर, सुप्रतिष्ठ राजा तथा अहमिन्द्र के भव स्पष्ट दृष्टिगोचर हुए। उनकी विशुद्धि एकदम बढ़ने लगी और उन्होंने निश्चय किया कि यह असार संसार त्यागकर आज ही मैं जिनदीक्षा ग्रहण करूँगा और अपने परमात्मपद को साधूँगा।

उन्होंने उसी समय सारथी को आज्ञा देते हुए कहा – 'सारथी! रथ को मोड़ो.... मुझे न तो विवाह करना है और न संसार में रहना है। मैं तो निज चैतन्य की उपासना करके शाश्वत् सिद्धपद की प्राप्ति करूँगा। चलो, रथ को गिरनार की ओर मोड़ लो।'

❖ ❖ ❖

नेमिकुमार, संसार से विरक्त होकर रथ को मोड़कर वन की ओर जा रहे है; उन्हें विवाह नहीं करना है – यह समाचार सुनते ही चारों ओर हाहाकार मच गया। महाराजा समुद्रविजय तथा बलभद्र आदि ने उन्हें विवाह करने के लिए तरह–तरह से समझाया, किन्तु वे अपने निर्णय में अडिग रहे। श्रीकृष्ण को भी अपने कृत्य के लिए पश्चाताप हुआ, परन्तु संसार के पिञ्जरे से छूटा हुआ सिंह वैराग्य से वन की ओर चलने को तत्पर हुआ, वह फिर से संसार के पिञ्जरे में बन्द होने के लिए क्यों आता?

समुद्र को तैरकर किनारे आया हुआ मनुष्य, फिर से समुद्र में क्यों जाएगा ?

श्रीकृष्ण ने तुरन्त उन पशुओं को बन्धन मुक्त कर दिया, परन्तु आश्चर्य हुआ कि वे जीव दौड़कर वन की ओर भागने के बदले नेमिकुमार के निकट आकर निर्भयता से उनके चरणों में बैठ गये और उनकी वैराग्यपूर्ण शान्तमुद्रा देखने लगे, मानों उनको भी वैराग्य हुआ हो और मृत्यु से छुड़ाने के लिए प्रभु का उपकार मान रहे हों – 'हे प्रभो! जिस प्रकार आपने हमें इस समय मरण से छुड़ाया है; उसी प्रकार सदा के लिए जन्म-मरण के बन्धन से छुड़ाकर हमारा उद्धार करो।'

अहा! अद्भुत था वह दृश्य। चारों ओर आश्चर्य का कोलाहल और वैराग्य का वातावरण था। माता शिवादेवी ने जब यह जाना कि पुत्रवधू का मुख देखने की उनकी आशा टूट गयी है और पुत्र, विवाह के बदले वैराग्य प्राप्त करके वन की ओर प्रयाण कर रहा है, तब उन शूरवीर माता ने धैर्यपूर्वक उस वैराग्य प्रसङ्ग को सह लिया। वे कोई साधारण स्त्री तो थीं नहीं, वे तो तीर्थङ्कर की माता थीं और 300 वर्ष तक साथ रह कर अपने पुत्र नेमिकुमार के वैराग्यमय जीवन को प्रत्यक्ष देखा था।

माता शिवादेवी विचार करने लगी – 'मेरा पुत्र, सांसारिक बन्धन में नहीं पड़कर परमात्मपद की साधना हेतु जा रहा है, यह तो श्रेष्ठ प्रसङ्ग है, आनन्द की बात है' – ऐसा विचारकर उन शूरवीर शिवामाता ने मन ही मन में प्रभु के वैराग्य का अनुमोदन किया। अपने लाड़ले पुत्र को मैं कुछ ही समय पश्चात् परमात्मारूप

में देखूँगी और उसकी छाया में अपना कल्याण करूँगी – ऐसे समाधानपूर्वक उन्होंने अपने मन को मनाया।

❖ ❖ ❖

नेमिकुमार, संसार से विरक्त होकर जिनदीक्षा हेतु तैयार हुए हैं। प्रभु के इस वैराग्य प्रसङ्ग से स्वर्गलोक के इन्द्रों के सिंहासन भी डोलने लगे। **मानों चारित्र के वीतरागी वैभव के समक्ष राग का वैभव काँप उठा।** इन्द्र–इन्द्राणी ने नेमिकुमार की दीक्षा का प्रसङ्ग जानते ही तुरन्त दीक्षा कल्याणक मनाने हेतु देवोंसहित सौराष्ट्र देश में आ पहुँचे। प्रथम ब्रह्मस्वर्ग से ब्रह्मचारी लौकान्तिकदेव आये और स्तुति करके कहने लगे – 'हे प्रभो! विवाह के अवसर पर वैराग्य का आपका यह प्रसङ्ग, जगत के जीवों को वैराग्य की महान प्रेरणा देगा; सुख संसार के विषयों में नहीं है, किन्तु आत्मा की वीतरागता में ही है – ऐसा धर्म सन्देश आपके जीवन से जगत को प्राप्त होता रहेगा, और दीक्षा के पश्चात् केवलज्ञान प्राप्त करके दिव्यध्वनि द्वारा आप अनेक जीवों का कल्याण करेंगे। अहा! राग के प्रसङ्ग में भी वैराग्य का यह अद्भुत दृश्य निश्चित ही वैराग्य के सन्मुख राग की पराजय का जयघोष कर रहा है। प्रभो! हम आपके इस वैराग्य की हार्दिक अनुमोदना करते हैं।

तत्पश्चात् इन्द्रगण 'देवकुरु' नामक सुन्दर शिविका लेकर आये। उसमें विराजमान होते समय इन्द्र ने सहारा देने हेतु अपना हाथ बढ़ाया, वह हाथ पकड़कर जगत के नाथ पालकी में विराजमान हुए। अहा! त्रिलोकीनाथ ने जिसका हाथ पकड़ा हो, उसके महाभाग्य का क्या कहना!

❖ ❖ ❖

बारात में आये हुए हजारों राजा दूल्हा नेमिकुमार का वह वैराग्य-प्रसङ्ग देखकर क्षणभर तो विचार में पड़ गये कि अब क्या करें ? दूल्हा बने प्रभु नेमिकुमार तो दीक्षा लेने वन में जा रहे हैं; उन्हें छोड़कर क्या हमें विषयभोगों में फँसना उचित है ? नहीं, कदापि नहीं। राजा विवेकवान थे, उन्होंने निर्णय किया कि जब राजुल को ब्याहने के लिए कुमार के साथ सांसारिक बारात में आये थे, तो अब कुमार की मोक्षपुरी की बारात में भी बाराती बनकर साथ रहेंगे। हम भी कुमार के साथ दीक्षा लेंगे। ऐसा निश्चय करके एक हजार राजा भी कुमार के साथ वनगमन हेतु तैयार हो गये।

वाह, अब नेमिकुमार की बारात मुक्तिसुन्दरी को ब्याहने चल पड़ी।

❖ ❖ ❖

श्री नेमिकुमार की बारात मुक्ति सुन्दर को वरने गिरनार पर्वत की ओर चल पड़ी, वहाँ सहस्त्राम्रवन में पहुँचने पर उस तपोवन के फलाच्छादित हजारों आम्रवृक्षों ने मानों झुक-झुककर प्रभु का स्वागत किया। अहा! कैसी सुरम्य एवं अद्भुत थी, उस वन की शोभा! मानों मुक्तिसुन्दरी के परिणय का स्वयंवर मण्डप!

श्रावण शुक्ल षष्ठी - जो कुमार नेमिनाथ का जन्मदिन है, वही उनका दीक्षा दिवस बन गया। वैरागी ने बारह वैराग्य भावनाओं के चिन्तनपूर्वक सर्व परिग्रह का परित्याग किया। मुकुट एवं हार उतार दिये; हाथ का कंकण तोड़कर आभूषण भी त्याग दिये और अपरिग्रही-दिगम्बर हो गये। दीक्षावन की एक उज्ज्वल शिला पर बैठकर 'नमः सिद्धभ्य' - ऐसे मङ्गलोच्चारपूर्वक हाथ जोड़कर

सिद्ध भगवन्तों को वन्दन किया और आत्मचिन्तन में शुद्धोपयोगी होकर साक्षात् श्रमण बन गये।

अहो! दूल्हा राजा के वेष की अपेक्षा इन जिनराजा के वीतरागी वेष में प्रभु अधिक शोभायमान हो रहे थे।

अहा! आत्मध्यान में लीन उन नेमि मुनिराज के अचिन्त्य रत्नत्रय वैभव को देख कर मोक्षसुन्दरी भी उन पर मुग्ध हो गयी और मानो तुरन्त ही मन:पर्ययज्ञान को प्रभु के पास भेज कर सन्देश कहलाया कि 'हे स्वामी! मैं मोक्षसुन्दरी आपका वरण करने हेतु शीघ्र ही आ रही हूँ।'

प्रभु के साथ हजारों राजाओं ने भी मुनिदीक्षा धारण की। बीच में तीर्थङ्कर मुनिराज और आस-पास चारों ओर एक हजार मुनिवर जहाँ विराज रहे हों, उस तपोवन की शान्ति एवं शोभा का क्या कहना! वन के उस शान्त वातावरण से आकर्षित होकर गिरिवन के वनराज भी वहाँ आकर शान्ति से बैठ गये और मुग्ध होकर मुनिवरों के सन्मुख देखकर स्वयं भी आँखें मूँदकर शान्ति से ऐसा प्रयोग करने लगे। अहा, मोक्ष को साधने में शार्दूल सिंह के समान शूरवीर मुनिवरों के चरणों में वन के सिंह भी नमन करें, इसमें क्या आश्चर्य है!

❖ ❖ ❖

एक ओर सहस्राम्रवन में नेमिप्रभु आत्मध्यान कर रहे हैं,

दूसरी ओर राजमहल के झरोखे में खड़ी हुई राजकुमारी राजुल अपने दूल्हे राजा नेमि को वैराग्य प्राप्त करते देखकर, रथ से उतरकर वन की ओर जाते देखकर मन ही मन में कहने लगी – 'अरे प्रभो! यदि आपको विवाह नहीं करना था तो फिर बारात लेकर यहाँ तक किसलिए आये? दूल्हा क्यों बने? या फिर क्या पशुओं की भाँति मुझे भी संसार-बन्धन में छुड़ाने के लिए यह एक नाटक ही था? क्या अपने साथ मुझे भी मोक्षपुरी की राह में ले जाने हेतु आप यहाँ पधारे थे? धन्य हो प्रभो! आपकी लीला अपार है! अहा! यह तो मेरे हित का ही कोई दैवी सङ्केत है।

हे देव! आप मुनि होकर वन में जाएँगे, तो मैं क्या रो-धोकर संसार में ही बैठी रहूँगी? – नहीं; मैं भी वीरपुत्री हूँ, आपकी अर्द्धाङ्गिनी कहला चुकी हूँ, तो मैं भी आपके ही मार्ग पर आऊँगी। आपको छोड़कर दूसरे मार्ग पर नहीं जाऊँगी। आप होंगे मुनिराज, तो मैं बनूँगी आर्यिका; आप होंगे परमात्मा तो मैं होऊँगी एकावतारी!'

माता-पिता एवं पारिवारिकजनों ने राजुल को बहुत समझाया कि – 'बेटी! अभी तुम्हारा विवाह नहीं हुआ है; नेमिकुँवर के साथ सात फेरे नहीं हुए हैं, इसलिए तुम अभी कुमारिका ही हो। बेटी! हम किसी दूसरे राजकुमार के साथ तुम्हारा विवाह करेंगे।'

दृढ़प्रतिज्ञ राजमति ने उन सबकी बात अनसुनी करके दृढ़तापूर्वक कहा – 'फेरे नहीं हुए उससे क्या? मैं नेमिकुमार को हृदय से वरण कर चुकी हूँ, वे ही मेरे स्वामी और जीवनसाथी हैं; मेरे हृदय में किसी और को स्थान नहीं है। अब सांसारिक भोगों के बदले मोक्ष की साधना में मैं उनकी सङ्गिनी बनूँगी और अपने नाथ

के धर्म पथ पर चल कर अपना आत्मकल्याण करूँगी।' इस प्रकार धर्मवीर राजमती ने आर्यिका बनने का अपना दृढ़निश्चय प्रगट किया।

राजमति का ऐसा दृढ़ वैराग्य देखकर सबके मुँह से धन्यवाद के उद्‌गार निकल पड़े – धन्य राजुल! तू अपने हृदयेश्वर नेमिप्रभु के रङ्ग में ऐसी रङ्ग गयी कि मोक्षपुरी तक उनका साथ नहीं छोड़ा, परन्तु तूने उन्हें नहीं छोड़ा। अनेक राजकुमारियाँ भी राजुल के साथ दीक्षा लेने को तैयार हो गयीं।

'अरे! मेरे स्वामी मोक्ष में आनन्द करें और मैं संसार भ्रमण करके दु:खी होऊँ – ऐसा कदापि नहीं हो सकता। मैं भी प्रभु के साथ ही रहूँगी।' – ऐसे निश्चयपूर्वक सैकड़ों राजकुमारियों सहित राजमति ने दीक्षा ग्रहण की और गिरनार की गिरी गुफा में आत्मासाधना करने लगी।

जब नेमिप्रभु को केवलज्ञान प्राप्त हुआ, तब समवसरण में राजुलमति गणिनी संघ की प्रधान बनी। नेमिप्रभु तो आत्मसाधना पूर्ण कर मुक्तिधाम पधारे; राजुलमति ने भी आत्मसाधना पूर्वक देवपर्याय प्राप्त की और वहाँ से चयकर मनुष्यभव में अपनी आत्मसाधना पूर्ण करके साध्यरूप सिद्धदशा प्राप्त करेगी।

(ब्रह्मचारी हरिभाई द्वारा लिखित चौबीस तीर्थङ्कर पुराण के आधार पर)

13

धर्म को न छोड़ दें!

'तीर्थयात्रा के बहाने सीता को रथ में बैठाकर ले जाओ; तीर्थयात्रा कराकर वापिस आते हुए सिंहाटवी जङ्गल में अकेले छोड़कर तुम वापिस लौट आना।' – महाराज राम ने सेनापति कृतान्तवक्र को आदेश दिया।

'महाराज! पवित्र सीता माता को यह सजा किस अपराध की दी जा रही है?' सेनापति कृतान्तवक्र ने दु:खी मन से पूछा।

'सेनापति! लोकापवाद के कारण सीता को वन भेजना ही पड़ेगा। अधिक बहस मत करो। शीघ्र जाकर इस कार्य को पूर्ण करो।'

इच्छा न होते हुए भी स्वामी के आदेश का पालन करना आवश्यक हो गया। तीर्थयात्रा के बहाने वह महासती सीता को रथ में बैठाया और महाराज राम के कहे अनुसार सभी तीर्थों की यात्रा कराके वापिस आते हुए बीच मार्ग में एक सघन जङ्गल मिला तो सेनापति ने वहीं रथ रोक लिया।

नीची गर्दन और सजल नेत्रों से वह महारानी की ओर निहारने लगा।

'क्या बात है सेनापति? तुम रो क्यों रहे हों? और इस रथ को बीच जङ्गल में रोक क्यों दिया है?' सीता ने पूछा।

धीरे-धीरे करुण स्वर में सेनापति कहने लगा – 'हे महारानी! हो सके तो मुझे माफ कर देना; अब आपको इसी जङ्गल में रहना होगा।'

सरल स्वभावी सीता, सेनापति के मन के यथार्थ भावों से अनभिज्ञ थी; अतः अत्यन्त सरलभाव से उन्होंने पूछा – 'हे कृतान्तवक्र! क्या हो गया तुम्हें? यह तुम क्या कह रहे हो? इस भयानक जङ्गल में मेरे रहने का क्या कारण है? क्या यहाँ भी कोई तीर्थक्षेत्र है?'

पवित्र हृदयी सीता के कोमल शब्द सुनकर सेनापति का हृदय भर उठा, आँखों से अश्रुधारा बह निकली; काया की दशा कुछ विलक्षण हो गयी, परन्तु वह क्या कर सकता था, स्वामी का आदेश जो था उसके सामने।

नीचे मुख करते हुए सेनापति ने कहा – 'हे महारानी! लोकापवाद के कारण आपको इस सघन जङ्गल में छोड़ने की आज्ञा महाराजश्री ने दी है और दुर्भाग्य कहो कि यह पाप मुझे ही करना पड़ रहा है।'

चारों तरफ के भयानक जङ्गल को देख गर्भवती सीता एक समय को तो काँप उठी, परन्तु तुरन्त ही उसका विवेक जागृत हो गया।

ज्ञानी पुरुष प्रतिकूलताओं में घबराते नहीं, वरन् धैर्य रखते हुए विवेक से काम लेते हैं। 'ज्ञान सर्व समाधान कारक है' – इस उक्ति के अनुसार, आपतित जटिल समस्या का समाधान सीता के सम्यग्ज्ञान ने सहज कर लिया।

वे स्वयं जागृत होकर बोलीं – **'हे सेनापति! इसमें किसी का दोष नहीं है, सभी जीव अपने पूर्व कृत कर्मों का ही फल भोगते हैं; कोई किसी का भला-बुरा नहीं कर सकता है; जीव स्वयं अपने भले-बुरे परिणामों से सुखी और दुःखी होता है। अतः परिणाम सुधारने का उपाय करना चाहिए और परिणाम बिगड़ने का भय रखना चाहिए।'**

विवेकी सीता के यह विचार सुनकर जब सेनापति जाने लगा तो जाते हुए सीता से कहने लगा – 'हे माता! महाराजश्री को आपका कोई सन्देश...'

'हाँ! एक सन्देश स्वामिन् से अवश्य कहना है।' बीच में ही बात काटते हुए गम्भीर मुद्रा में सीता बोली – **'हे सेनापति! मेरे त्याग की तो कोई बात नहीं परन्तु एक बात अवश्य ध्यान रखें कि जैसे लोकापावाद के भय से बिना विचारे उन्होंने मुझे छोड़ दिया; वैसे ही अन्य किसी संसारी मोही प्राणियों के कहने में आकार अपने धर्म को न छोड़ दें।'** महारानी सीता के इस महान कटुसत्य को बार-बार मन में दोहराते हुए सेनापति आगे बढ़ गया। ●●

(- पण्डित विनोद जैन 'चिन्मय')

14

धर्म नहीं छोड़ा

महाविदेहक्षेत्र में स्वर्ग के समान पुण्डरीक देश में त्रिभुवनानन्द नगर में राजा चक्रधर चक्रवर्ती राज करते थे। चक्रवर्ती की एक अनंगसरा नाम की पुत्री थी, जिसके गुण ही उसके आभूषण थे। उसके समान सुन्दर अद्‌भुत रूपवान कोई दूसरी स्त्री नहीं थी।

प्रतिष्ठितपुर का राजा पुनर्वसु विद्याधर, चक्रधर चक्रवर्ती की कन्या अनंगसरा को देखकर उस पर मोहित हो गया और उसका अपहरण करके उसे विमान में बिठाकर ले गया। चक्रवर्ती ने क्रोध में आकर उसके साथ युद्ध शुरु कर दिया। उसका विमान तोड़ डाला, जिससे पुनर्वसु ने व्याकुल होकर कन्या को आकाश से नीचे फैंक दिया।

शरद ऋतु के चन्द्रमा की ज्योति समान पुनर्वसु की पर्णलघु विद्या से कन्या एक भयानक जङ्गल में आ गिरी। उस भयानक जङ्गल में अनेकों दुष्ट वनचर जीव रहते थे। उस जङ्गल में विद्याधरों का भी प्रवेश नहीं था। जहाँ सूर्य की एक किरण भी प्रवेश न कर सके – ऐसे महाअन्धकारपूर्ण नाना प्रकार की बेलों से घिरे हुए; ऊँचे-ऊँचे वृक्षों से भरे हुए; चीता, बाघ, सिंह, गेंडा, रीछ इत्यादि

अनेकों वनचरों से युक्त; ऊँची-नीची भूमि में गहरे-गहरे गड्ढ़ों से युक्त उस महा-भयङ्कर वन में वह कन्या अत्यन्त दु:खी होती हुई चारों दिशाओं में अपने माता-पिता को ढूँढती हुई उन्हें याद कर -करके विलाप करती / रोती।

हाय! मैं इन्द्र समान शक्ति और वैभव से सम्पन्न चक्रवर्ती की पुत्री होकर भी कर्मोदय वशात् ऐसी अवस्था में आ पड़ी। अब मैं क्या करूँ? इस जङ्गल का तो कोई आदि-अन्त भी दिखाई नहीं देता। इस वन को देखकर मुझे बहुत डर लगता है। मैं इस वन में असहाय पड़ी हूँ, यहाँ से मुझे कौन बचायेगा? हे पिता! आप महापराक्रमी हो, मेरी रक्षा करो; हे माता! आप तो ममता की मूर्ति हो, आपने मुझे कल्पनातीत दु:खों को सहन करके अपने गर्भ में धारण किया, जन्म दिया, आप मेरी सुध लीजिए। हे भाई! आप मुझे एक क्षणमात्र भी अकेला नहीं छोड़ते थे, अब इस भयानक जङ्गल में मैं अकेली दु:खी हूँ, मेरी सहायता करके मुझे बचाओ। अरे भवितव्य! किस कारण से इतना भयानक दु:ख मेरे ऊपर आ पड़ा है कि जहाँ चाहने पर भी मौत नहीं आती। अब मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ?

इस प्रकार बहुत समय तक विलाप करते हुए वह दु:खी होती रही। उसके विलाप को देखकर अत्यन्त दुष्ट पशु भी करुणा से भर गये। वह कन्या भूख से परेशान होकर शोक-सागर में डूबी फल-फूलों से अपना पेट भरने लगी। कर्मयोग से कई शीतकाल के दु:ख सहने पड़े। कैसा है शीतकाल? जो कमल के वन की शोभा को नष्ट करनेवाला है। अनेक ग्रीष्म ऋतुओं का ताप सहन

करना पड़ा। ग्रीष्म का इतना भयङ्कर आताप कि जिससे जल के समूह सूख गये। और दावानल से अनेकों वृक्ष जलकर राख हो गये तथा अनेक जीव-जन्तु जलकर मर गये। वर्षा काल की भयङ्कर वर्षा के अन्धकार से सूर्य की ज्योति दब गयी। सूर्य की ज्योति को दबानेवाली भयङ्कर वर्षा से उस कन्या का मलिन शरीर भी चित्राम की भाँति कान्तिरहित, दुर्बल, बिखरे हुए केश, लावण्यरहित ऐसा हो गया कि जैसे सूर्य के प्रकाश से चन्द्रमा का प्रकाश क्षीण हो जाता है। फलों से नम्रीभूत वृक्षों के नीचे बैठे-बैठे वह पुत्री अपने पिता को याद करती हुई रोती रहती है। विचारती है कि मेरा जन्म चक्रवर्ती के घर में हुआ परन्तु पूर्व जन्मकृत पाप के उदय से मैं ऐसी भयङ्कर दु:ख अवस्था में आ पड़ी। उन दु:खों को याद कर-करके ऐसे रोती मानों आँसुओं की धार बरसात की भाँति रुकती ही नहीं।

इस प्रकार वन में रहते हुए वृक्षों से जो फल नीचे गिरते, उनका भक्षण करती। बेला-तेला, उपवास करने से शरीर भी सूख गया, कमजोर हो गया, फिर भी मात्र एक समय जल-फल खाकर पारणा कर लेती।

पुष्पों की सेज पर सोनेवाली चक्रवर्ती की पुत्री, जिसे अपने स्वयं के केश भी चुभते थे, वह आज विषम भूमि पर दु:खी होकर सोती है। जो अपने पिता तथा परिजनों के साथ आनन्दमयी बातें करती थी, उनकी मधुरवाणी सुनकर प्रसन्न हुआ करती थी, आज वही भयङ्कर वन में सिंह, सियार आदि भयङ्कर जानवरों की भयानक और करकस आवाजों को सुनकर भयानक रात्रि व्यतीत करती है।

इस प्रकार अनेक दु:खों के बीच रहकर उस बालिका ने तीन हजार वर्ष तक उस भयानक जङ्गल में अनशनादि तप किये। सूखे फल-फूलों को खाकर तथा झरनों का प्रासुक जल पीकर अपना जीवन-यापन किया। एक सौ हाथ भूमि से आगे नहीं जाने की प्रतिज्ञा लेकर दिग्व्रत-देशव्रत आदि का पालन किया और क्रमश: महावैराग्य को प्रगट कर सम्पूर्ण खान-पान का त्याग कर सल्लेखना (समाधिमरण) की तैयारी कर ली।

✦ ✦ ✦

एक दिन उसी जङ्गलमार्ग से एक अरहदास नामक विद्याधर सुमेरुपर्वत की वन्दना करके वापस जा रहा था कि उसे वह चक्रवर्ती की पुत्री उस भयानक जङ्गल में दिखाई दी। जब उसने उस पुत्री को यह कहते हुए धैर्य बंधाया कि 'आप हमारे साथ चलो हम तुम्हें तुम्हारे पिता चक्रवर्ती महाराज चक्रधर के पास पहुँचा देते हैं' परन्तु एक सौ हाथ के बाहर नहीं जाने की प्रतिज्ञा बताते हुए उस कन्या ने उनके इस अनुरोध को स्वीकार नहीं किया। तब उस विद्याधर ने शीघ्र ही चक्रवर्ती महाराज चक्रधर के पास जाकर उनकी पुत्री के समाचार सुनाये, जिसे सुनते ही चक्रवर्ती अपने बाईस हजार पुत्रों सहित वहाँ आ पहुँचे।

चक्रवर्ती चक्रधर वहाँ पहुँचकर क्या देखते हैं कि उसकी

पुत्री को एक अजगर सर्प खा रहा है, पुत्री अजगर सर्प के मुख पड़ी है और शान्तभाव से समाधिमरण के लिए तैयार है। पुत्री ने अपने पिता से अजगर को अभयदान दिलाया और स्वयं समाधिमरणपूर्वक देह त्याग कर तीसरे स्वर्ग में गयी।

इस प्रकार पुत्री द्वारा पुरुषार्थपूर्वक देह एवं देह का मोह छोड़ता हुआ देखकर चक्रवर्ती अपने बाईस हजार पुत्रों के साथ वैराग्य को प्राप्त हुए और उन्होंने वीतरागी दिगम्बरी दीक्षा धारण कर ली।

यहाँ जिस पुनर्वसु विद्याधर ने अनंगसरा का अपहरण किया था, वह उसे खोजते-खोजते अत्यन्त दु:खी हुआ और पश्चाताप करते हुए संसार से विरक्त होकर, द्रुमसैन मुनिराज के पास मुनिदीक्षा धारण कर महातप करते हुए अन्त में समाधिपूर्वक मरण कर स्वर्ग में देव हुआ और वहाँ से चय कर राजा दशरथ का पुत्र लक्ष्मण हुआ। अनंगसरा भी स्वर्ग में चय कर द्रोणमेघ की पुत्री विशल्या हुई। पुनर्वसु ने अनंगसरा को प्राप्त करने का निदानबन्ध किया था, अत: लक्ष्मण की विशल्या से शादी हुई।

जैन शासन की श्रद्धा-भक्ति से भविष्य में दोनों ही जीव मोक्ष प्राप्त करेंगे।

- ब्रह्मचारी हरिलाल जैन

15

एक भावनात्मक निबन्ध —

आर्यिका माताजी के सत्सङ्ग से प्राप्त लाभ

भगवान महावीर के समवसरण के साथ विहार करते-करते 36000 आर्यिका संघ की शिरोमणि महासती चन्दना माताजी का एक बार हमारी नगरी में आगमन हुआ.... चारों ओर आनन्द ही आनन्द छा गया। परमधीर गम्भीर वैरागी माताजी की मुद्रा, अध्यात्मतेज से चमक रही थी। महाभाग्य से आज माताजी का आहारदान भी हमारे आँगन में हुआ और हमें उनकी भक्ति का लाभ प्राप्त हुआ।

आहारदान के पश्चात् मैं और मेरी मुमुक्षु सखियाँ माताजी के साथ-साथ उनके संघ में गयीं। अहा... ऐसी धर्म माता का साथ छोड़ना किसे अच्छा लगेगा ? यह तो मेरे जीवन का आनन्दकारी प्रसङ्ग था।

आहार के पश्चात् दोपहर के समय में आर्यिका चन्दना माताजी सामायिक कर रही थीं, वे तो चैतन्य का ध्यान करते-करते निर्विकल्प समरस पी रही थीं। उनकी निर्विकल्प ध्यानमुद्रा हमें बहुत अच्छी लगी और हमें भी चैतन्य की अद्भुत महिमा जागृत हुई। देखा-देखी हम भी उनकी तरह ध्यान धारण करके सामायिक करने बैठ गयीं। अहा... चैतन्य की महिमा का चिन्तवन करने से

हमें कोई अद्भुत शान्ति जागृत होती थी; वीतरागता का कोई अद्भुत वातावरण वहाँ छा गया था।

जब माताजी ने ध्यान पूरा किया, तब हमने 'नमोस्तु-नमोस्तु' कहकर माताजी के चरणों में वन्दन किया.... और माताजी ने हमारे ऊपर अभिदृष्टि करके, हमें धर्म का आशीर्वाद दिया। फिर विनयसहित जिज्ञासापूर्वक मैंने पूछा – 'अहो माताजी! आपके दर्शन से महान आनन्द होता है। हे माता! हमें यह जानने की जिज्ञासा होती है कि ऐसा बहुमूल्य मनुष्यपना और उत्तम जैन धर्म प्राप्त करके, अब हमें अपने जीवन को सफल बनाने हेतु क्या करना चाहिए? वह आप कृपा करके समझाइये।'

अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक माताजी ने कहा – 'बहिन, सुनो! तुम्हारी जिज्ञासा अच्छी है। ऐसा मनुष्यपना और जैनधर्म प्राप्त करके संसार की चारों गतियों की थकान उतारनी है और मोक्षसुख को साधना है। आत्मा अनादि काल से निजस्वरूप को भूलकर चारों गतियों में परिभ्रमण करके दु:खी हो रहा है, अब भवभ्रमण का फेरा टालने का सुअवसर है; अत: ऐसा कार्य करना चाहिए कि जिससे भवभ्रमण चक्कर मिट जाए और आत्मा को शान्ति प्राप्त हो।'

मुमुक्षु बहिन – माताजी, इस भव का फेरा / परिभ्रमण कैसे मिटेगा?

माताजी – बहिन! उसके लिए पहले आत्मा का स्वरूप पहिचानना होगा।

मुमुक्षु बहन – हे माता! आत्मा का स्वरूप कैसा है? कृपा करके समझाइये।

माताजी – बहिन! आत्मा, शरीर से भिन्न ज्ञानस्वरूपी है, वह आँख से दिखायी नहीं देता; वह तो ज्ञानरूपी नेत्र से दिखता है। वह अरूपी, अपने गुण-पर्यायोंसहित, वीतरागस्वभावी, सत्-चित्-आनन्दस्वरूप है, उसके स्वभाव में परमात्मपना भरा हुआ है।

मुमुक्षु बहिन – हे माता! क्या यह आत्मा और परमात्मा – दोनों समान हैं?

माताजी – हाँ बहिन! स्वभाव से तो समान हैं और उसे पहिचानकर जो आत्मा, पुरुषार्थ करता है, वह स्वयं पर्याय में भी परमात्मा बन जाता है; परमात्मपना कोई बाहर से नहीं आता।

मुमुक्षु बहिन – माता! क्या अपना स्त्री का आत्मा भी भगवान हो सकता है?

माताजी – हाँ; जो भगवान हुए, वे भी उससे पहले हमारी तरह संसार में ही थे, वे निज आत्मस्वरूप को पहचानकर, उसे साधकर सिद्ध हुए और आज सिद्धालय में विराजमान हैं। स्त्रीपर्याय में भी आत्मा को पहचानकर मोक्ष की साधना प्रारम्भ हो सकती है और फिर स्त्रीपर्याय को छेदकर, साधना पूर्ण करके अपना आत्मा भगवान बन सकता है।

मुमुक्षु बहिन – वाह माता! कैसी आनन्द की बात है!! वास्तव में आज आपने उत्तम मार्ग बताकर उपकार किया है। हमें

आत्मा की साधना शीघ्र करनी चाहिए। हे माताजी! हमारे संसार परिभ्रमण की थकान उतर जाए – इसलिए हमें विशेष उपदेश दीजिए।

माताजी – सुनो बहिन! आत्मा की गहरी जिज्ञासा से धर्मात्मा का सङ्ग करना चाहिए; संसार का परिचय जितना बने, उतना कम करके साधर्मी का परिचय बढ़ाना चाहिए। जिनमन्दिर जाकर हमेशा बहुमान से अरहन्त देव के स्वरूप का विचार करना; सर्वज्ञ वीतराग देव का स्वरूप कैसा है? उनके और मेरे स्वरूप में किस प्रकार समानता है और किस प्रकार अन्तर है? इस विचार से आत्मा का शुद्ध स्वरूप समझकर, सम्यग्दर्शन का बहुत गहरा प्रयत्न करना चाहिए।

मुमुक्षु बहिन – माताजी! ऐसी स्त्रीपर्याय में सम्यग्दर्शन प्राप्त करना कठिन नहीं पड़ता?

माताजी – बहिन! आत्मा की सच्ची लगन से प्रयत्न करे तो स्त्रीपर्याय में भी सम्यग्दर्शन अवश्य होता है। वीरप्रभु के संघ में 36000 आर्यिकाएँ है, वे सब स्त्रियाँ ही तो है न! फिर भी आत्मा को पहिचानकर वे सब कैसे आनन्द से आत्मसाधना कर रही हैं। स्त्रीपर्याय देखकर निरुत्साहित मत होना, अपितु आत्मा की जिज्ञासा बढ़ाना। स्त्रीपर्याय में केवलज्ञान नहीं होता परन्तु आत्मज्ञान तो हो सकता है। देखो, भगवान महावीर के जीव को सिंह की पर्याय में सम्यग्दर्शन हुआ; तो फिर यह तो मनुष्य अवतार मिला है; इसलिए उसमें उत्साह से वीतरागी देव–गुरु–धर्म की सच्ची सेवा करके, आत्मा का स्वरूप समझकर और सम्यग्दर्शन प्रगट करके आत्मा को मोक्षमार्ग की साधना में जोड़ देना।

मुमुक्षु बहिन – माताजी! आपकी मधुर वाणी सुनते ही आत्मा में सम्यग्दर्शन के लिए झनझनाहट हो जाती है, मानों हमनें आत्मा को अनुभव में लेकर सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लिया हो।

माताजी – अहा! सम्यग्दर्शन में तो बहुत-बहुत गम्भीरता है। सम्यग्दर्शन होते ही चैतन्यस्वरूपी सम्पूर्ण आत्मा जैसा है, वैसा पूरा -पूरा ज्ञान में, श्रद्धा में आ जाता है; उसके अनन्त गुणों का स्वाद अनुभूति में आ जाता है; निरन्तर कोई अपूर्व शान्ति का वेदन होता है। सम्यग्दर्शन में वीतरागता है। सम्यग्दर्शन होते ही अपूर्व हित और मोक्ष का मार्ग प्रारम्भ हो जाता है; इसलिए बारम्बार जिज्ञासा से सत्सङ्ग और अनुभूति का प्रयोग आवश्यक है। यही सन्त गुरुओं की शिक्षा है, यही उनका आशीर्वाद है और जो ऐसा करे, उसे ही देव-गुरु के सच्चे स्वरूप की पहचान कहा जाता है। वस्तुत: उसका ही मनुष्यपना सार्थक होता है।

मुमुक्षु बहिन – वाह माता! सम्यग्दर्शन की महिमा वास्तव में अद्भुत आश्चर्यकारी है। यही शीघ्र करने योग्य है परन्तु यह न हो, तब तक हमें क्या करना चाहिए?

माताजी – बहिन! तुम्हारी जिज्ञासा अच्छी है। सम्यग्दर्शन के बिना तो आत्मा के कल्याण का अन्य कोई उपाय तीन काल -तीन लोक में नहीं है; इसलिए जब तक साक्षात् सम्यग्दर्शन की उपलब्धि न हो, तब तक आत्मा की लगन से अधिकाधिक रसपूर्वक निरन्तर उसका ही प्रयत्न करना चाहिए। आत्मा की सच्ची लगन और सच्ची भावना कभी निष्फल नहीं जाती, उसका उत्तम फल आता ही है; इसलिए गहरी लगन से आत्मस्वभाव की

सच्ची समझ का और उसकी अनुभूति का प्रयोग करने में लगे रहना ही सम्यग्दर्शन का सच्चा, सरल और सुखकर उपाय है।

जैनधर्म प्राप्त करके जिसे आत्मस्वभाव की सच्ची रुचि जागृत हुई है और सम्यग्दर्शन की महिमा जानकर उसकी छटपटाहट हुई है, उसका प्रयत्न कभी निरर्थक नहीं जाता। चैतन्यस्वभाव की रुचिपूर्वक उसका ज्ञान और अनुभूति करने के लिए जो बारम्बार अभ्यास करता है, उस जीव को मिथ्यात्व का रस प्रतिक्षण घटता जाता है, मोह को तोड़ने का कार्य क्षण-क्षण उसे हुआ ही करता है। जिसे स्वभाव का उत्साह जागृत हुआ और ज्ञान की धारा स्वभाव सन्मुख हुई, उस जीव को अनन्त काल में पूर्व में नहीं हुई, ऐसी अपूर्व निर्जरा प्रारम्भ हो जाती है।

अहो! जिसने प्रसन्न चित्त में चैतन्यस्वरूप आत्मा की वार्ता भी सुनी है, वह भव्य जीव भविष्य में निश्चित ही निर्वाण को प्राप्त करता है इसलिए आत्मा का उत्साह और प्रेमपूर्वक उसकी श्रद्धा-ज्ञान-अनुभव का प्रयत्न करना; जिससे कल्याण अवश्य होगा।'

पूज्य आर्यिका-माताजी की यह बात सुनकर सभी मुमुक्षु बहनों को बहुत प्रसन्नता हुई। तत्पश्चात् चन्दना माताजी की संघस्थ दूसरी आर्यिका माताजी ने भी गम्भीरता से कहा –

बहिनों! माताजी ने आत्मा की बहुत आनन्ददायक बात समझायी है; ऐसा सुअवसर कभी-कभी ही आता है; इसलिए तुम गहन अभ्यास करना। देहबुद्धि से राग में सुख मानकर अनादि काल से विभाव का ही अभ्यास किया है, इस कारण जीव, समकित प्राप्त नहीं करके दु:खी ही हुआ है परन्तु अब महाभाग्य से ऐसा महावीर

शासन प्राप्त करके, देह से भिन्न और रागादि से भी विलक्षण – ऐसे परम चैतन्यलक्षणस्वरूप आत्मा को अनुभव में लेना; आत्मा को अनुभव में लेने के लिए गम्भीर होकर बारम्बार गहरे–गहरे उसके स्वभाव का अभ्यास करना, उसकी अपार महिमा को पहचानना, इससे अल्प काल में ही समकित प्राप्त करोगी, अपूर्व सुख प्राप्त करोगी और इस भव दु:ख से सदा के लिए परिमुक्त हो जाओगी।

माताजी की गम्भीरता भङ्ग करते हुए एक बहिन ने पूछा – 'माताजी! आपकी बातें अच्छी और हितकर भी हैं, परन्तु यह सब कार्य तो वृद्धावस्था में करने योग्य है न!'

माताजी कहती है – बहिनों! अच्छे काम में विलम्ब नहीं होता, वैसे ही धर्म के काम में शिथिलता मत करना; आत्महित के साधने में वायदा मत करना। कल करेंगे, बाद में करेंगे – ऐसा प्रमाद किसी काम का नहीं है। बहुत जीव ऐसा विचार करते हैं कि वृद्ध होंगे, तब धर्म करेंगे, परन्तु हे जीव! तू वृद्ध होगा ही – क्या गारण्टी है? वृद्धावस्था के पहले आयु पूरी नहीं हो जाएगी – इसकी क्या गारण्टी है? और अभी आत्मा की दरकार नहीं करता तो वृद्धावस्था में तो क्या करेगा?

इसलिए हे बहिन! जीवन की क्षणभंगुरता जानकर, आत्मा की पहचान का काम सबसे पहले कर लेने जैसा है। इस क्षणभंगुर शरीर का विश्वास करने योग्य नहीं है। संयोग बदलते देर नहीं लगती। अरे! खारे समुद्र जैसा यह संसार; उसमें जैनधर्म का मीठा अमृत प्राप्त हुआ है। ज्ञानियों ने तो विष के समान संसार को छोड़कर, चैतन्य का अमृत साध लिया है। अरहन्त के समान अपनी आत्मा को पहचान लिया है।

आर्यिका माताजी की गम्भीर तत्त्वचर्चा से प्रमुदित होकर एक छोटी बहिन ने सूक्ष्म तत्त्वजिज्ञासा से पूछा – हे माता! अरहन्तदेव की पहचान से आत्मा की पहचान होना कहा है, हम अरहन्तदेव को तो बहुत समय से पूजते हैं; आप हमें उनके परमार्थ स्वरूप की ऐसी पहचान करायें, जिससे हम आत्मा को पहचानकर सम्यक्त्व प्राप्त कर लें।

पूज्य माताजी ने कहा – धन्य है तुम्हारी जिज्ञासा को! छोटी उम्र में भी आत्मा समझने का ऐसा प्रेम जागृत होना अपूर्व हित का कारण है।

सुनो, अरहन्तदेव का आत्मा सर्वज्ञ है, रागरहित है; शरीर, वह कोई अरहन्त नहीं है, वाणी अथवा समवसरण भी अरहन्त नहीं हैं; अरहन्त तो आत्मा हैं। उनका द्रव्य चैतन्यमय है, उनके गुण चैतन्यमय हैं और उनकी पर्यायें भी शुद्ध चैतन्यमय है, उनमें रञ्चमात्र भी राग नहीं है। अरहन्त का आत्मा ऐसे शुद्ध द्रव्य–गुण–पर्याय –स्वरूप है, उसे पहचानते ही, अपनी आत्मा का परमार्थस्वरूप भी वैसा ही पहचानकर, आत्मा जब अन्तर्मुख होता है, तब द्रव्य–गुण –पर्याय के भेद के विकल्पों को भी लाँघकर वह जीव, निर्विकल्प अनुभूतिरूप सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है – यह एक अपूर्व दशा है।

अहा, सर्वज्ञ–अरहन्त! उनकी महिमा की क्या बात! इसे पहचानने पर ही सच्चा जैनत्व प्रारम्भ होता है।

मुमुक्षु बहनों ने अत्यन्त प्रसन्नता से कहा – वाह रे वाह माता! आज का प्रसङ्ग हमारे लिए स्वर्णिम प्रसङ्ग है। आज के आपके सत्सङ्ग से हमें सम्यक्त्व की ऐसी अपूर्व प्रेरणा मिली है कि अब

अल्प काल में ही हम आपके आशीर्वाद से आत्मा को पहचानेंगे और सम्यक्त्व प्राप्त करेंगे।

माताजी ने आशीर्वादपूर्वक कहा – हाँ, बहिन! यही करने योग्य है। पुण्य से लाखों-करोड़ों रुपयों का लाभ हो, उसकी अपेक्षा चैतन्य का लाभ मिले, वह तो अमूल्य है। पैसे से या पुण्य से उसकी प्राप्ति नहीं होती; पुण्य और पैसों से पार अन्तर की चैतन्य वस्तु के उल्लासपूर्वक उसकी प्राप्ति होती है और एक बार ऐसी वस्तु का अपने में अनुभव हुआ, वहाँ अपने में आत्मा का ऐसा अचिन्त्य निज वैभव देखा कि जिसके समक्ष सम्पूर्ण संसार के वैभव की कोई कीमत नहीं है। स्वयं का ऐसा वैभव प्राप्त करके, ज्ञानी दूसरों को दिखाते हैं कि अरे जीवों! तुम भी तुम्हारे आत्मा के ऐसे अद्भुत वैभव को अपने में देखो.... देखो। चेतो रे चेतो! ऐसा अवसर फिर से मिलना बहुत दुर्लभ है।

यह शरीर तो मिट्टी का क्षणभंगुर पुतला है। शृङ्गार करने से ऊपर से तो अच्छा लगता है परन्तु अन्दर तो मात्र अशुचिता भरी है और वृद्ध होने पर तो उसमें शृङ्गार भी सुशोभित नहीं होता। जीव का सच्चा शृङ्गार तो सम्यग्दर्शन-रत्न है। जो आत्मा की सच्ची जिज्ञासा करेगा, वह अवश्य सम्यग्दर्शन प्राप्त कर सकेगा। अभी ही उसका अवसर है। यदि अभी आत्मा की दरकार / गरज़ नहीं की तो फिर जब वृद्धावस्था आ जाएगी, तब तो इन्द्रियाँ शिथिल हो जाएँगी, आँख भी काम नहीं करेगी, कान में सुनाई नहीं देगा, जिनमन्दिर जाना मुश्किल पड़ेगा, घर में कोई तुम्हारी बात नहीं मानेगा, तुम्हारा अस्तित्व सभी को बोझरूप लगेगा, अनेक रोग

और कष्टों से शरीर घिर जाएगा, तब किस प्रकार आत्महित में जागृत रहोगे ? ऐसी वैराग्यमय परिस्थिति का विचार करके अभी सावधान हो जाओ और सबसे ममत्व त्यागकर शीघ्र स्वघर में आओ.... और अपने अनन्त गुणमय निज परिवार को देखो।

जीव ने अनादि काल से अपने को शरीरवाला ही माना है; शरीररहित आत्मा का सच्चा स्वरूप कैसा है ? – इसका कभी विचार भी नहीं किया; शरीर के भरोसे पर अनन्त बार जीवन व्यर्थ गँवा दिया है। अरे! शरीर तो मिट्टी का पुतला... रोग का घर है और जीवन तो वीणा की झङ्कार जैसा क्षणभंगुर है। इस अवसर में तुम्हें महाभाग्य से सर्वोत्कृष्ट सच्चे देव–गुरु–धर्म का समागम मिला है तो उनके द्वारा दर्शाये गये आत्मा को पहचानकर शीघ्र कल्याण कर लेना योग्य है। आत्मा को पहचानकर संयमी जीवन व्यतीत करना ही उत्तम है। इसलिए हमारा यही उपदेश है कि हे मुमुक्षुबहन! अन्तर में गहरे –गहरे जहाँ शान्ति का वेदन भरा हुआ है, वहाँ उतरकर ... चैतन्यस्वरूप का संवेदन करना... उसमें तुम्हें अपूर्व अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव होगा।

सभी मुमुक्षु बहिनें अत्यन्त भक्ति के उल्लास से एक साथ बोल उठी – वाह माताजी! अद्भुत महिमावन्त चैतन्य तत्त्व बताकर आपने परम उपकार किया है.... हम बहुत समय से जो खोजते थे और जीवन में जिसके लिए छटपटाते थे, वह आनन्दमय चैतन्यतत्त्व आज आपने हमें बता दिया; हमारा अपार चैतन्य वैभव बताकर, उसे साधने की विधि समझाकर आपने वास्तव में हमारा कल्याण किया है। अहो, कल्याणमयी माता! आपके उपकार का बदला किस प्रकार चुकायेंगे।

हे माता! ऐसा सुन्दर चैतन्य तत्त्व सुनकर मेरा मन संसार से विरक्त हो गया है; चैतन्य की अनुभूति के अतिरिक्त इस संसार में कहीं क्षणमात्र भी मुझे चैन नहीं पड़ता; सब असार-असार लगता है। पाँच इन्द्रियों के विषय नीरस लगते हैं; उन इन्द्रियों के वशीभूत होने के बदले अब चैतन्यरस से उसको जीत लेंगे और अतीन्द्रिय भाव से सम्यग्दर्शन प्राप्त करेंगे।

हे माता! अब एक क्षण भी इस संसार के परभाव में रहना हमें नहीं सुहाता; मुझे अपने साथ ही रखो, जिससे मैं आत्मा को समझकर, आर्यिका होकर अपना कल्याण करूँगी, और साथ रहकर आपकी सेवा करके अपना यह जीवन धन्य बनाऊँगी। अहा! अल्प काल में इस भव दु:ख से छूटकर सिद्धपद को प्राप्त करूँगी। अहो! जब आपके जैसी माताओं का साथ मुझे मिला तो अब मैं दु:ख में या अज्ञान में क्यों रहूँ? धर्म माता की गोद में मुमुक्षु बालक को क्या चिन्ता है?

हे मोक्षसाधक माता! मैं तो आपकी शरण में आते ही मानो मोक्षमार्ग में आ गयी हूँ.... अब आपके साथ-साथ मोक्ष के मार्ग में गमन करके सिद्धपद को प्राप्त करूँगी।

✦ ✦ ✦

हम धर्मवत्सल बहिनों में आत्मा का ऐसा उल्लास देखकर माताजी ने बहुत वात्सल्य से हमारे सिर पर हाथ रखकर अशीर्वाद दिया.... अहा! धर्म माता के स्पर्श से हमारा आत्मा चैतन्यभाव से जगमगा उठा।

[अमृत समान मधुर वाणी से उपदेश देकर और मङ्गल

आशीर्वाद देकर चन्दना माताजी ने मेरे आत्मा के कल्याण की अपूर्व प्रेरणा प्रदान की और दूसरे दिन उनका संघ विहार कर गया.... फिर क्या हुआ ? वह सुनो]

आर्यिका माताजी के समागम से मेरा आत्मा जागृत हो गया और अत्यन्त अपूर्व उमङ्ग से अध्यात्म रस से भीग गया। संसार से विरक्त मेरे चित्त को अब कहीं चैन नहीं पड़ता था, वह तो बस, एक चैतन्य को ही चाहता है; और इसके लिए मैं आर्यिका माताजी के साथ ही रहना चाहती हूँ। माताजी तो मात्र एक ही दिन के साथ में मुझे जगाकर आत्मा की अपूर्व प्रेरणा दे गयी और अन्य स्थान के लिये विहार कर गयी।

दूसरे दिन जब मैं जिनमन्दिर जाकर शास्त्र स्वाध्याय कर रही थी, तभी मेरे हृदय में आर्यिका माताजी द्वारा बहायी गयी अनुभूति की तरङ्गे ही चलती थी.... मैं अनुभूति के गहरे–गहरे मन्थन में उतरती जा रही थी। इतने में मेरी धर्मसखी आ पहुँची और मुझे देखते ही उसने कहा – दीदी! आज तू गम्भीर वैराग्यपूर्वक किसी गहरे विचार में लगती है, तुम्हारे मुखमण्डल पर आज कोई अपूर्व प्रसन्नता की झलक दिख रही है, लगता है आज अवश्य कोई आनन्दकारी प्रसङ्ग बना है। क्या हुआ है ? मुझसे तो कहो।

सखी! तुम्हारी बात सत्य है। कल आर्यिका संघ में परम वैरागी आर्यिका चन्दना माताजी का सत्सङ्ग हुआ; माताजी की गहन अनुभूति की गम्भीर छाया, उनकी मुद्रा पर भी झलक रही थी। माताजी ने महान कृपा करके मुझे आत्मानुभूति का रहस्य समझाया। बस, तब से अनुभूति के अतिरिक्त मुझे कहीं भी चैन नहीं पड़ती है।

वाह बहिन! तुम्हारी बात सुनकर मुझे भी अपार आनन्द हुआ है। बहिन! अनुभूति के उद्यम में मैं भी तुम्हारे साथ ही हूँ। माताजी के साथ क्या चर्चा हुई। मुझे भी तो समझाओ।

सुनो बहिन! माताजी के साथ तो अपूर्व लाभ मिला; माताजी को आहारदान दिया; माताजी की परम शान्त ध्यानदशा देखी.... अहा! क्या निर्विकल्प मुद्रा! वह तो चैतन्य की स्फुरणा जागृत करती थी। फिर माताजी ने आशीर्वाद दिया और मनुष्य अवतार की दुर्लभता समझाकर सम्यग्दर्शन की विधि बताई, उसके लिए गहरे-गहरे गम्भीर प्रयत्न करने की माताजी ने ऐसी प्रेरणा दी कि बस! अब आत्मा वह कार्य साधने के लिए निर्भय बना है.... इसके बिना अब एक क्षण भी चैन नहीं पड़ती।

बहिन! माताजी ने चैतन्य को किस प्रकार साधना बताया? – सखी ने पूछा।

मैंने कहा – सुनो बहिन! जिसमें शान्ति भरी है – ऐसे अपने आत्मा को देखने के लिए बारम्बार उत्सुकता करने को माताजी ने कहा है; अपने गुण-पर्यायों से सम्पन्न आत्मा कैसा है? रागरहित उसका ज्ञानस्वभाव कैसा है? – इसका लक्ष्य करके, अनुभव का प्रयोग करना चाहिए। आत्मा में परमात्मा बनने की सामर्थ्य है और स्त्रीपर्याय में भी वह परमात्मपद की साधना का प्रारम्भ कर सकती है, उसके लिए आत्मा की गहन जिज्ञासा से धर्मात्माओं का समागम करना चाहिए। अरहन्तदेव का आत्मा, रागरहित चैतन्यभावमय कैसा है? और वैसा ही स्वरूप अपने में किस प्रकार है? उसकी यथार्थ पहचान से जीव को सम्यग्दर्शन अवश्य होता है। वीरप्रभु

के शासन में हजारों-लाखों स्त्रियों ने सम्यग्दर्शन प्राप्त किया है और आर्यिका भी बन गयीं हैं। ऐसी माताजी का आदर्श जीवन देखकर अपने को भी आत्मा की लगन लगाकर, आत्मा को मोक्षमार्ग में जोड़ देना चाहिए। बहिन, सम्यग्दर्शन में अत्यन्त गम्भीरता, और अपूर्व शान्ति है। उसकी महिमा लाकर, गहरी-गहरी तन्मयता से स्वानुभूति के प्रयोग में लगे रहना ही सम्यग्दर्शन का सच्चा, सरल और सुखकर उपाय है।

– ऐसा बताकर अन्त में माताजी ने कहा था कि – सच्ची लगन और शान्ति की गहरी जिज्ञासा से अपने को उसका प्रयत्न करना चाहिए। वह कार्य कभी निरर्थक नहीं जाता, उसका उत्तम फल अवश्य मिलता है। अनुभूति का प्रयोग करते-करते क्षण-क्षण मिथ्यात्व का रस टूटता जाता है और चैतन्य का रस बढ़ता जाता है – इसी धारा से आगे बढ़ते-बढ़ते ज्ञानधारा स्वसन्मुख होकर मोह को तोड़ डालती है और अपूर्व सम्यक्त्व प्रगट करती है।

अहा बहिन! परम वात्सल्यपूर्वक यह सब समझाकर माताजी ने तो मानो साक्षात् सम्यग्दर्शन ही दे दिया हो – ऐसा अपार हर्षोल्लास होता है।

वाह बहिन! आप से यह सब वार्ता सुनकर मुझे भी अत्यन्त हर्ष हो रहा है; मेरा चित्त भी चैतन्य के प्रति उल्लसित होता है और मानो माताजी पुनः मेरे मस्तक पर हाथ रखकर आशीर्वाद देती हो – ऐसी तरङ्गे मुझे जागृत हुई है। बहन, अब तो शूरवीर होकर हमें माताजी के साथ अरहन्त भगवन्तों के मार्ग में प्रवेश लेना है। मुनिदशा का या केवलज्ञान का अवसर

तो हमें इस भव में नहीं है परन्तु सम्यग्दर्शन के लिए तो हमें अवसर मिला ही है; अत: सम्यग्दर्शन से जीवन कृतार्थ कर लेना चाहिए..... आत्मानुभूति करके माताजी के उपकार को आज से ही सफल करना चाहिए।

✦ ✦ ✦

इस प्रकार दोनों साधर्मी सखियाँ आत्मा की साधना में एक-दूसरे को प्रोत्साहन देती हुई आगे बढ़ती जाती हैं। चैतन्यस्वरूप की महानता को ज्ञान में चाहती है, बीच में विकल्प रहते हैं, उसमें उन्हें अशान्ति लगती है; इसलिए ज्ञान को उससे भिन्न करती जाती है; कभी-कभी चैतन्य की अस्पष्ट शान्ति दिखती है परन्तु वे उसमें सन्तोष नहीं मानती, आनन्द के साक्षात् अनुभव के लिए आगे ही आगे बढ़ती जाती हैं; अनुभूति होने में थोड़ी देर लगी तो भी निराशा नहीं होती, अपितु उत्साह बढ़ाती जाती है और नि:शङ्कता रखती हैं कि इसी मार्ग से मैं अधिक पुरुषार्थ करूँगी, इसलिए अब मुझे शीघ्र ही अवश्य आत्मप्राप्ति होगी; अब मैं आत्मा को प्राप्त किये बिना पीछे मुड़नेवाली नहीं हूँ अथवा बीच में अटकनेवाली नहीं हूँ। इस प्रकार धैर्य से अन्तर में अत्यन्त सूक्ष्मरूप ज्ञान और स्थूलरूप कषायों के स्वाद को भिन्न करती जाती हैं।

इस प्रकार प्रयत्न करते-करते एक धन्य दिवस वे दोनों सखियाँ गम्भीरता से गहरी आत्ममहिमापूर्वक अनुभूति के उद्यम में डूब गयीं ... और परम शान्ति से चैतन्यरस को कषायों से पृथक करके उसका स्वाद लेने लगीं। ●●

[- ब्रह्मचारी हरिलाल जैन, आत्मधर्म (गुजराती), वर्ष-32 अङ्क-9]

16

धर्ममाता की धर्मचर्चा

(बहिनश्री चम्पाबेन की आध्यात्मिक तत्त्वचर्चा)

प्रश्न : सम्यग्दर्शन का विषय उपादेय है या सम्यग्दर्शन?

समाधान : सम्यग्दर्शन प्रगट करने की अपेक्षा उपादेय है परन्तु वास्तव में सम्यग्दर्शन का विषय जो ध्रुवद्रव्य है, वह उपादेय, अर्थात् ग्रहण करने योग्य है। सम्यग्दर्शन तो पर्याय है, और पर्याय पर दृष्टि करने की नहीं होती; दृष्टि तो ध्रुवद्रव्य पर करना होती है; इसलिए वास्तव में तो परमपारिणामिकभावस्वरूप अनादि-अनन्त ध्रुव आत्मा उपादेय है। सम्यग्दर्शन प्रगट करना योग्य है परन्तु पर्याय पर दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन की पर्याय प्रगट नहीं होती, वह तो द्रव्य पर दृष्टि करने से प्रगट होती है; इसलिए वास्तव में तो ध्रुवद्रव्य-परमपारिणामिकभावस्वरूप जो आत्मा है, वह ग्रहण करने योग्य है - उपादेय है। सम्यग्दर्शन, केवलज्ञान आदि प्रगट करने की अपेक्षा से सब उपादेय है परन्तु उन पर दृष्टि करने से सुख प्रगट नहीं होता; इसलिए वास्तविक उपादेय तो ध्रुव आत्मा है। सम्यग्दर्शन प्रगट करने से सुख-आनन्द प्रगट होता है; इसलिए वह उपादेय है। इस प्रकार दोनों की अपेक्षाएँ भिन्न हैं। सम्यग्दर्शन, स्वानुभूति, केवलज्ञानादि सब उपादेय हैं परन्तु वे पर्याय होने से उन पर दृष्टि देने से सुख प्रगट नहीं होता। ध्रुव के ऊपर दृष्टि करने से (सुख) प्रगट होता है, इसलिए ध्रुव उपादेय है।

इस प्रकार किसी अपेक्षा से सम्यग्दर्शन उपादेय है और किसी

अपेक्षा से ध्रुव उपादेय है। उपादेय दोनों हैं परन्तु अपेक्षा भिन्न है। एक व्यवहार है और एक निश्चय है परन्तु वह व्यवहार ऐसा नहीं है कि वह कुछ है ही नहीं। सम्यग्दर्शनादि अनन्त शुद्धपर्यायें वेदन में आती हैं, इसलिए उपादेय हैं परन्तु वे अनन्त पर्यायें ध्रुव को ग्रहण करने से वेदन में आती हैं, इसलिए वास्तव में तो ध्रुव उपादेय है। सम्यग्दर्शन सर्वथा उपादेय नहीं है – ऐसा नहीं है; वह उपादेय है परन्तु व्यवहार-अपेक्षा से है और निश्चय-अपेक्षा ध्रुव उपादेय है।

प्रश्न : आत्मा का स्वभाव तो स्व-परप्रकाशक है; तो सम्यग्दृष्टि जीव को स्वानुभूति के काल में पर जानने में आता है या नहीं?

समाधान : स्वानुभूति के काल में उपयोग बाहर नहीं है, इसलिए परज्ञेय ज्ञात नहीं होते। अपना उपयोग अन्तर में है और उसमें अनन्त गुणों की पर्यायें जानने में आती हैं, इसलिए वहाँ भी स्व-परप्रकाशकपना मौजूद रहता है, उसका नाश नहीं होता। सम्यग्दर्शन-स्वानुभूति की पर्याय प्रगट होती है, उस समय स्वयं आनन्दगुण का वेदन करता है, अपने अनन्त गुण भी वेदन में आते हैं, इसलिए स्वयं अपने को जानता है और दूसरे गुण-पर्यायों को भी जानता है और इसलिए स्व-परप्रकाशकपना है। स्वानुभूति के काल में स्व को, अर्थात् ज्ञान स्वयं अपने को जानता है और पर, अर्थात् बाहरी ज्ञेय को नहीं जानता, किन्तु स्वयं अन्तर में ज्ञान -ज्ञेय-ज्ञातास्वरूप ऐसे अपने को अभेदरूप से जानता है, अपनी अनन्त पर्यायों को जानता है; उन अनन्त पर्यायों के नाम नहीं आते, परन्तु अपने को अनन्त पर्यायों का वेदन होता है, उसे जानता है। आत्मा चैतन्यचमत्कारस्वरूप है, वह अपनी अनेक प्रकार की पर्यायों को जानता है, वह अनुभव के काल में पर प्रकाशकपना है। तथा उपयोग बाहर हो, तब वह बाहरी जानकारी करता है, परन्तु उसमें एकत्व नहीं होता। (अनुभव काल में) स्वयं अपना ज्ञायक रहता है, ज्ञाता की धारा चलती है और जब उपयोग बाहर होता है, तब वह पृथक् रहकर पर को जानता

है, अर्थात् स्वयं अपने को जानता है और दूसरे को भी जानता है, इस प्रकार सविकल्पदशा में स्व-परप्रकाशकपना है तथा अन्तर में स्वयं अपने को जानता है और अपने अनन्त गुण-पर्यायों को जानता है, वह निर्विकल्पदशा के काल का स्व-परप्रकाशकपना है। अनेक प्रकार की पर्यायें उसको स्वानुभूति में परिणमित होती हैं, उन्हें जानता है तथा अपने को अभेदरूप से जानता है। इस प्रकार सब जानता है, वह निश्चय स्व-परप्रकाशकपना है।

पर को जानना, वह व्यवहार है, इसलिए वह पर को नहीं जानता – ऐसा उसका अर्थ नहीं है। व्यवहार, अर्थात् दूसरे को नहीं जानता और दूसरे को जानता है, वह कथनमात्र है – ऐसा नहीं है। पर को जानता है परन्तु वह दूसरा-बाहर का ज्ञेय हुआ, इसलिए व्यवहार कहा जाता है।

प्रश्न : विशेष शास्त्राभ्यास न हो, तथापि आत्मा की प्राप्ति हो सकती है ?

समाधान : शिवभूति मुनि को गुरु ने 'मा तुष-मा रुष' ऐसा कहा, परन्तु इतना भी वे भूल गये और 'तुष-माष' (याद) रह गया। वहाँ एक स्त्री दाल धो रही थी; वह छिलके (तुष) और दाल (माष) देखकर उन्हें लगा कि छिलके अलग हैं और दाल अलग है। उस पर से याद आया कि मेरे गुरु ने ऐसा कहा है कि 'आत्मा अलग है और शरीर, विभाव-राग-द्वेषादि अलग हैं' – इस प्रकार मेरा स्वभाव निराला है – ऐसा प्रयोजनभूत ग्रहण कर लिया और अन्तर में उतर गये; इस प्रकार अधिक शास्त्राभ्यास की आवश्यकता नहीं है परन्तु अन्तर की लगन, अन्तर का पुरुषार्थ एवं रुचि की आवश्यकता है। वह यथार्थ समझे तो हो सकती है और आत्मा का अस्तित्व ग्रहण करे तो हो सकती है।

अन्तरस्वरूप समझना जरूरी है। आत्मा दूसरे से भिन्न है, वह ज्ञायक है, आनन्द से भरपूर है, महिमावन्त है, वह कोई निराला ही तत्त्व है – ऐसा अन्तर से समझे तो हो सकती है। जिनेन्द्रदेव ने पूर्णता की

प्राप्ति कैसे की, गुरु किस प्रकार साधना कर रहे हैं, शास्त्र में कैसी बातें आती हैं, समझानेवाले गुरु क्या कर रहे हैं, क्या मार्ग बतला रहे हैं ? – वह स्वयं ग्रहण करे। प्रयोजनभूत-मूलभूत बात ग्रहण करे तो प्राप्ति हो सकती है। विशेष शास्त्राभ्यास करे, तभी प्राप्ति हो – ऐसा नहीं है; दिन-रात लगन लगनी चाहिए। बाहर की रुचि या रस हो तो यह न होवे, परन्तु आत्मा का रस लगना चाहिए। यह सब जो बाहरी है, वह अन्तर में नीरस लगे, अर्थात् अन्तर में से उसका रस सब छूट जाए, उसकी महिमा छूट जाए, तो आत्मप्राप्ति हो। एक आत्मा का रस लगे, दूसरी सब महिमा छूट जाए तथा अन्तर से ऐसा लगे कि यह संसार महिमावन्त नहीं है; महिमावन्त मेरा आत्मा ही है, तब (प्राप्त) हो।

मूल प्रयोजनभूत आत्मस्वभाव को पहिचाने, अर्थात् मेरे द्रव्य - गुण-पर्याय क्या हैं – ऐसे मूल प्रयोजनभूत स्वरूप को समझे तो आत्मप्राप्ति हो। उसके पुरुषार्थ में कमी है परन्तु अन्तर से सच्ची लगन लगे तो बारम्बार पुरुषार्थ करे, बारम्बार पुरुषार्थ हो। यथार्थ रुचि हो तो बारम्बार पुरुषार्थ हुआ ही करे। यदि रुचि मन्द पड़े तो बारम्बार पुरुषार्थ करके उग्र करे। लगन अन्तर से लगनी चाहिए। अन्तर से आत्मा की लगन लगे, उसे कहीं चैन नहीं पड़ता।

प्रश्न : लगन तो बहुत लगी है किन्तु पुरुषार्थ नहीं उपड़ता ?

समाधान : लगन लगे और पुरुषार्थ न उपड़े – ऐसा होता ही नहीं और पुरुषार्थ नहीं हो तो लगन ही नहीं लगी है। भीतर से प्यास लगी हो तो वह पानी ढूँढ़ने का प्रयत्न किये बिना रहता ही नहीं परन्तु भीतर प्यास ही नहीं लगी है। लगन लगे तो पुरुषार्थ होवे ही और तब मार्ग मिले बिना नहीं रहता। गुरुदेव ने अत्यन्त स्पष्टतापूर्वक विधि बतलाई है, परन्तु स्वयं को भीतर से लगे तो विधि ढूँढ़े न ? सचमुच लगन लगी ही नहीं है। विधि एक ही है कि आत्मा को पहिचानना, आत्मा का अस्तित्व ग्रहण करना। आत्मा कौन है ? आत्मा शाश्वत् है, वह किस प्रकार है ?

– आदि विचार करके निर्णय करे तथा एकत्वबुद्धि तोड़ने का प्रयत्न करे। परमार्थ पन्थ एक ही है, परन्तु वह स्वयं करता नहीं है।

प्रश्न : बाहर की मिठास अभी छूटती नहीं है, तो आत्मा की प्राप्ति के लिये क्या करें ? कैसे आगे बढ़े ?

समाधान : आत्मा सबसे निराला कोई अपूर्व है, इस प्रकार आत्मा को पहचाने तो भव का अन्त हो। गुरुदेव ने ज्ञायक को पहचानने का मार्ग बतलाया है, उसे पहचाने तो भव का अन्त हो। आत्मा की मिठास लगनी चाहिए। अन्तर से आत्मा की मिठास और उसकी जरूरत लगे तो पुरुषार्थ हो। आत्मा की मिठास लगती नहीं और बाहर की मिठास लगती है तो बाहर का मिलता है और यदि आत्मा की मिठास लगे तो आत्मा मिलता है। आत्मा की मिठास नहीं लगती तो आत्मा कहाँ से मिले ? उसे अन्तर से आत्मा की अपूर्वता लगनी चाहिए। जैसे भगवान कोई निराले हैं, वैसे ही मेरा आत्मा, भगवान के समान है – इस प्रकार पहचान करे तो आगे बढ़ सकता है।

प्रश्न : श्रीमद् राजचन्द्रजी के वचनामृत में आता है कि 'दूसरा कुछ मत खोज, एक सत्पुरुष को खोजकर उसके चरणकमल में सर्वभाव अर्पण करके प्रवृत्ति करता रह, फिर यदि मोक्ष न मिले तो मुझसे लेना।' – इसे विशेष स्पष्टता से समझाने की कृपा करें।

समाधान : तत्त्व को जिसने ग्रहण किया है, स्वानुभूति जिसने प्रगट की है, मार्ग जिन्होंने प्रगट किया है और जो मार्ग को जानते हैं – ऐसे एक सत्पुरुष को खोज; वे तुझे सब बतलायेंगे। तुझे अन्तर से कुछ समझ में नहीं आता तो सत्पुरुष को खोज और फिर वे सत्पुरुष जो कुछ कहें, उसका आशय ग्रहण कर ले।

मोक्ष मुझसे लेना, अर्थात् तुझे मोक्ष मिलना ही है; तूने सत्पुरुष को ग्रहण किया और पहचाना तो तुझे मार्ग मिलना ही है, मोक्ष प्रगट होना ही है। इसलिए 'मोक्ष न मिले तो मुझसे लेना' उसका अर्थ है कि तुझे मोक्ष मिलनेवाला ही है।

अनन्त काल से सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं हुआ, उसे देव-शास्त्र या गुरु मिलें और अपना उपादान तैयार हो तो प्राप्त हो, ऐसा निमित्त-उपादान का सम्बन्ध है; अन्तर से देशनालब्धि प्रगट हुई तो अवश्य सम्यग्दर्शन प्राप्त हो। सम्यग्दर्शन होता है अपने उपादान से, परन्तु निमित्त के साथ ऐसा सम्बन्ध होता है। इसलिए तू एक सत्पुरुष को खोज, उसमें तुझे सब कुछ मिल जाएगा। तुझे सत्पुरुष मिलें और मार्ग प्राप्त हुए बिना रहे – ऐसा नहीं बनता, अवश्य मार्ग मिलता ही है; क्योंकि सत्पुरुष के प्रति तुझे भक्ति एवं अर्पणता आई है और तूने सत्पुरुष को पहचाना है तो तुझे आत्मा पहचानने में आये बिना रहेगा ही नहीं।

जो भगवान को पहचाने, वह अपने को पहचाने और अपने को पहचाने, वह भगवान को पहचाने। भगवान के द्रव्य-गुण-पर्याय को पहचाने, वह अपने द्रव्य-गुण-पर्याय को पहचाने। तू सत्पुरुष को पहचान तो तुझे आत्मा पहचानने में आये बिना रहेगा ही नहीं। उससे तुझे अवश्य स्वानुभूति की प्राप्ति होगी और मोक्ष भी अवश्य मिलेगा ही। अनादि काल से अपने लिए अनजान मार्ग है, इसलिए सम्यग्दर्शन की तैयारी हो और सर्व प्रथम सम्यग्दर्शन हो, तब देव या गुरु का निमित्त अवश्य होता है, इसलिए तू सत्पुरुष को खोज – ऐसा कहते हैं। तू सत्पुरुष को पहचान तो तुझे आत्मा पहचानने में आये बिना नहीं रहेगा, ऐसा उसका अर्थ है।

स्वयं ने सत्पुरुष को ग्रहण किया-पहचाना कब कहने में आये ? कि आत्मा की प्राप्ति हो तब; यदि आत्मप्राप्ति न हो तो उसने सत्पुरुष को पहचाना ही नहीं-ग्रहण किया ही नहीं और उसका आशय ग्रहण किया ही नहीं। *(स्वानुभूतिदर्शन, बहिनश्री की तत्त्वचर्चा, पृष्ठ-26-30)*

आर्यिका माताजी के साथ में

चैत्र पूर्णिमा का सन्ध्या काल सुनहरे किरणों से खिल उठा था। रोज ही की भाँति मैं अपने कमरे की गैलरी में खड़ी होकर सामने बने मन्दिर के तीन भव्य और विशाल शिखरों को देख रही थी, जो कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र के प्रतीक है और जो मुझे मोक्षमार्ग की राह दर्शाते हैं। मैंने रोज ही की भाँति आँखें बन्द करके पञ्च परमेष्ठी का स्मरण किया। फिर आँखें खोल दीं; किन्तु आज कोई अपूर्व दृश्य देखने में आ रहा था।

अहा! सारे शरीर पर झनझनी फैल गई। मन गद्गद् हो उठा। खुशी के दो आँसू गालों पर लुढ़क गये। सामने ही आर्यिका माताजी अपने संघ सहित चली आ रही हैं। अहा! मेरा सौभाग्य, मोक्ष की साधक माताजी के साक्षात् दर्शन हुए। श्रद्धा से मस्तक झुक गया। दोनों हाथ जोड़कर वहीं से शुद्धात्म-नमस्कार किया। फिर आकाश की ओर देखा। आकाश से मानों रत्नों की वर्षा हो रही है, बहारें फूल बरसा रही हैं और पवन मधुर-मधुर राग सुना रहा है। आज पूज्य आर्यिका माताजी के शुभागमन से छिन्दवाडा शहर पवित्र हुआ है, धन्य हुआ है। उनके चरण-कमल के स्पर्श से यहाँ की भूमि भी निर्मल हो गई है। अहा! पेड़-पौधे के पत्ते भी एक-दूसरे से मिलकर तालियाँ बजाने लगे, मन-मयूर नाच उठा। पूज्य आर्यिका माताजी की जय से आकाश गूँज उठा।

मैं शीघ्र ही माताजी की ओर चली, किन्तु जब तक मैं उनके पास पहुँची, तब तक वे ध्यान में लीन हो गईं थीं। अहा! कितनी शान्त और गम्भीर मुद्रा थी उनकी, साक्षात् वीतरागता की मूर्ति को देखकर मैं अपनी आत्मप्यास बुझाऊंगी और मोक्ष के पथ पर चलूँगी। मुझे ऐसी प्रबल भावना जागृत होने लगी।

धीरे-धीरे कुछ क्षणों के पश्चात् वह गोधूली की बेला पर रात्रि ने अधिकार कर लिया। चन्द्रमा भी प्रसन्न हो अपनी और अधिक दूधिया चाँदनी छिड़ककर माताजी का स्वागत करने लगा। माताजी ने मौन धारण किया। मैं भी उनके निर्मल पैरों में नतमस्तक हो अपने घर लौट आई। रात भर वही शान्त-गम्भीर व वैराग्योत्पादक छवि चलचित्र की तरह आँखों में घूमती रही।

प्रात: उनके दर्शन को सभी लोग गये। माताजी का प्रवचन हुआ और प्रश्न-उत्तर भी। एक सूर्य गगन-पथ पर अग्रसर हो जगत की वस्तुओं को प्रकाशित कर रहा था और दूसरा सूर्य अपने ज्ञानालोक से मिथ्या-अन्धकार को भगाकर आत्मा में ज्ञान-ज्योति जगा रहा था। मैंने भी कहा माताजी से, 'माताजी! आपको देखकर मेरा जीवन धन्य हुआ, मुझे संसार से विरक्तता उत्पन्न हो गई है। संसार में मेरा मन नहीं लगता है। मुझे दीक्षा दीजिये। आपकी छत्रछाया में रहकर मैं भी अपना आत्मकल्याण करना चाहती हूँ।'

माताजी ने अत्यन्त सरल मुद्रा में कहा - 'बहन, इस समय तुम्हारा दीक्षा लेना योग्य नहीं है। तुम भावावेश में आकर ऐसा कह रही हो।'

नहीं माताजी, मैं भावावेश में बहकर ऐसा नहीं कह रही हूँ -

मैंने कहा।

माताजी कहने लगीं – हे भव्य आत्मा! सुनो, केवल बाह्य दीक्षा लेने से ही आत्मा का कल्याण नहीं होता। अगर ऐसी दीक्षा लेने से ही मोक्ष होता, तो ऐसी दीक्षा तो तुमने अनन्तों बार ली है और स्वर्गादि पद प्राप्त किया है। फिर भी अभी तक मोक्ष क्यों नहीं हुआ? इसका कारण है कि मोक्षमार्ग की सीढ़ी पर गलत तरीके से नहीं चढ़ा जाता। मोक्षमार्ग की प्रथम सीढ़ी सम्यग्दर्शन है। सम्यक्त्व के बिना जीव चारों गतियों में भटकता रहता है। अगर वह सीधे तीरके से प्रथम सम्यग्दर्शन और ज्ञान फिर चारित्ररूपी सीढ़ी पर चढ़े तो अवश्य ही मोक्ष में पहुँच जाय। अत: तुम भी सर्व प्रथम सम्यग्दर्शन प्राप्त करो। जैनधर्म का प्रारम्भ सम्यग्दर्शन से ही होता है।

'लेकिन माताजी, मैंने तो आज तक ऐसा सुना है कि व्रत, तप, दान, पूजा आदि प्रशस्त राग करो, वे ही मोक्ष के कारण हैं। इससे हमें आगे उत्तम कुल मिलेगा सच्चे देव-गुरु-शास्त्र का निमित्त मिलेगा, और फिर हम मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं' – मैंने कहा।

'अहो! मात्र प्रशस्त राग का उपदेश देकर और उसको मोक्ष का साधन दिखाकर वे बहुत बड़ी भूल करते हैं, क्योंकि ऐसा प्रशस्त राग तो हमने अनन्त बार किया है, और स्वर्गादि पद भी प्राप्त किया है। पूर्व में भी ऐसा प्रशस्त राग किया था, जिसके कारण आज तुम्हें पाँचों इन्द्रियाँ व मन मिला, मनुष्य पर्याय मिली, उत्तम जैन कुल मिला, सच्चे देव-गुरु-शास्त्र का निमित्त भी मिल गया। सभी कुछ तो मिल गया है। शुभराग की भूमिका पर तो तुम

पहुँचे हुए ही हो और पहले भी कई बार पहुँच चुके हो।

अब इसके आगे क्या करना है, सो समझो। अगर अभी भी शुभराग को ही मोक्षमार्ग मानकर, इसे अच्छा समझर, इसी में अटक जाओगे तो मिथ्यात्व का सेवन करके संसार में ही भटकते रहोगे, क्योंकि प्रशस्त राग भी तो कषाय है न! कषाय आत्मा का विकार है। अगर आत्मा कषाय से भिन्न अपने ज्ञानस्वभाव को भूलकर इसी राग में रस लेने लगेगा तो उसके भीतर का अपूर्व अध्यात्मतत्त्व छिपा ही रह जायगा। तब फिर उसे मोक्ष कैसे मिल सकेगा?

पहले हम कह चुके हैं कि सम्यग्दर्शन मोक्ष का बीज है और इस बीज की प्राप्ति किसी भी प्रकार के राग से कभी होती नहीं। मोक्षमार्ग और राग दोनों बिल्कुल विपरीत हैं। हाँ, जो कुदेव आदि को पूजते हैं, भक्ष्य-अभक्ष्य का कुछ भी विचार नहीं करते हैं, पाप से धर्म मानते हैं इत्यादि। ऐसे जीव को प्रशस्त राग का उपदेश देकर और सत्यमार्ग दिखाकर पाप कार्य से छुड़ाना चाहिए। अशुभ की अपेक्षा शुभ अच्छा है लेकिन शुद्ध की अपेक्षा दोनों ही हेय हैं। आग चाहे चन्दन की लकड़ी की हो या नाम की लड़की की, वह तो जलाने का ही काम करती है, इसी प्रकार शुभ और अशुभ दोनों प्रकार का राग तो त्याज्य ही है। सर्व राग रहित चैतन्यभाव है उस में ही शान्ति व सुख है।'

मैंने कहा – हाँ, माताजी आप बिल्कुल सही कहती हो। अत: आप ही बताइये कि मुझे अब क्या करना चाहिए?

पहले तुम्हें तत्त्व का सत्य निर्णय करना चाहिए, क्योंकि सर्व

प्रथम वस्तुस्वरूप की यथार्थ पहिचान करके सम्यग्दर्शन प्राप्त करना है – माताजी ने कहा।

धन्य हो माताजी, भाग्योदय से आज आपका दर्शन हुआ और सच्चा आत्महित का उपदेश प्राप्त हुआ। आपने सूखे हुए खेत को अमृत-जल से सींचकर हरा-भरा कर दिया है। माताजी, सम्यक्त्व के लिये आप के साथ ही रहकर वैराग्यपूर्वक अपना जीवन व्यतीत करूँगी, और आपकी सेवा करके कृतकृत्य होऊँगी तथा आपके सत्समागम से मैं जरूर भेदज्ञान की कला सीखूँगी – मैंने कहा।

माताजी के आहार का समय हो गया था। बहुत उमङ्ग और उत्साह से मैंने पड़गाहा और आहार दिया। मेरे ये हाथ भी आहार देकर पवित्र हुए। हृदय सुख-सागर में डुबकियाँ लगाने लगा। अब तो चित्त संसार के विषय-भोग से हटकर मात्र चैतन्य की ओर झुक रहा था।

जब माताजी का विहार हुआ तब स्वत: ही मेरे पैर घर को छोड़कर माताजी के साथ-साथ चलने लगे। और कुछ ही समय में मन्दिर के शिखर भी दृष्टि से ओझल हो गये। एक स्थान से दूसरे स्थान और दूसरे से तीसरे स्थान पर चलते रहते। चलते समय ऐसा लगता जैसे मैं भी भव-समुद्र से पार होने के लिये सत्समागमरूपी नौका पर बैठ कर तिर रही हूँ। जब भी चर्चा होती है तब अपने ज्ञायकस्वभावी आत्मा की, चैतन्य की, वीतरागता की, वस्तु-स्वरूप आदि की अत्यन्त ही मीठी मधुर व रसीली चर्चा होती है।

अहा! जब चैतन्य की चर्चा में ही इतना आनन्द आता है, तब उसकी अनुभूति होने पर और उसे प्राप्त करने पर कितना आनन्द आयेगा, उसकी कल्पना से भी मन भर जाता है। इस आर्यिका संघ में मुझे जो सुख का आभास होता है उसे किसी कीमत पर छोड़ने को जी नहीं चाहता। जब माताजी अपने संघ के साथ चलती हैं तब ऐसा दिखाई देता है कि कई टिमटिमाते तारों के मध्य में चन्द्रमा सुशोभित होता हुआ अपने लक्ष्यबिन्दु पर चला जा रहा है। जब आत्मा की चर्चा होहती है तब मुझे रोमाञ्च हो आता है। हृदय में आनन्द की तरङ्ग चलने लगती है।

वैराग्यपूर्वक माताजी के साथ रहते हुए मुझे किसी भी प्रकार की सांसारिक बात की चिन्ता या दु:ख नहीं सताता है। कौन कहाँ है, किसका क्या हो रहा है, सब लोग मेरे प्रति कैसे भाव रखते हैं आदि किसी भी बात का यहाँ तो विकल्प ही नहीं है। हाँ कभी-कभी न जाने कहाँ खो जाती हूँ वैराग्य भावना के चिन्तन में और माताजी की वैय्यावृत्ति करने में! माताजी की सेवा करना मुझे बड़ा भला लगता है। और ऐसा यह महा-सौभाग्य से प्राप्त हुआ सुनहर अवसर कितना सुन्दर है, कितना सुखकर है, कितना मधुर है, कितना मीठा है, कितना रसीला है। अहा.....

माताजी का संयमित जीवन देखकर मुझे भी संयम धारण करने की हलचल मचा करती और कई बार तो मैं उनके समीप ध्यान में एकाग्रता लाने का अभ्यास करती। आरम्भ में कभी डांस-मच्छर काटते थे तो मेरा उपयोग टूट जाता था। और तब मुझे ख्याल आता कि जब मुनियों ने बड़े से बड़े उपसर्गों पर विजय

प्राप्त की है तो क्या मैं इन मच्छरों के आगे हार मानूँ? नहीं... और फिर ध्यान में एकाग्रता लाने का प्रयास करती। माताजी के साथ-साथ चलने पर मैं भी जीव-रक्षा का ख्याल रखा करती और कभी-कभी शक्ति अनुसार एकासन या उपवास भी करती। हालांकि इन सब बातों की मुझे कोई प्रतिज्ञा नहीं है, किन्तु अभ्यासरूप में बहुत सी क्रियाएं माताजी के सदृश करती हूँ। इतना सब होने पर भी मन में मात्र एक यही भावना प्रबल हो उठती है कि कब मुझे सम्यग्दर्शन हो और कब संसार बन्धन से छूटूं। माताजी भी जानती हैं मेरे हृदय की भावना! और इसलिए निरन्तर स्वच्छ और निर्मल अमृत जल की बूँदों को उछालती रहती हैं और कभी-कभी तो चैतन्यरस का फब्बारा भी छोड़ देती हैं, जिसमें मैं अच्छी तरह स्नान करके अपनी आत्मा को स्वच्छ करती रहती हूँ। कैसी-कैसी बूँदे उछलती हैं, देखिये...

आत्मा ज्ञानमूर्ति है। ज्ञान-आनन्द ही उसका स्वभाव है। आत्मा में अभेद हो वही सच्चा ज्ञान है।

राग और ज्ञान भिन्न-भिन्न है। स्व और पर को भिन्न जानकर स्व का आश्रय करना, वह भेदविज्ञान का सार है। भेदविज्ञान से ही मुक्ति होती है। सच्चे देव-गुरु-शास्त्र आत्मा के स्वाश्रय से ही मुक्ति होना कहते हैं। पर का ग्रहण-त्याग किसी के नहीं है। सत्यस्वरूप को समझना ही वीतरागता का कारण है।

और मैं भी माताजी से प्रश्न करती रहती हूँ। कैसे प्रश्न? - माताजी! सम्यक्त्व होने पर ज्ञानी को कैसा आनन्द आता है? तब वे कहती - अहाहा! उस आनन्द का तो क्या कहना! ऐसा अपूर्व

और अतीन्द्रिय आनन्द आता है कि न तो उसे वचनों से प्रगट कर सकते हैं और न शब्दों से अङ्कित कर सकते हैं। उस आनन्द को तो वही जान सकता है, जिसने उसका अनुभव किया, ऐसे धर्मात्मा का चित्त अन्यत्र कहीं भी नहीं लगता है। बार-बार आत्मा की ही ओर झुकता है।

माताजी! सत्यधर्म के श्रवण के पश्चात् भी मुझे अभी तक सम्यक्त्व क्यों नहीं होता?

बहन! सत्यधर्म के मात्र श्रवण से ही सम्यक्त्व नहीं होता। श्रवण आदि के पश्चात् आगे बढ़ने के लिये ग्रहण, धारणा और निर्णय करके आत्मा के चिन्तन का अभ्यास करना चाहिए और स्वानुभव प्रगट करके मोक्ष का दरवाजा खोल देना चाहिए। जीव का मात्र यही महान कर्तव्य है।

इस प्रकार माताजी के साथ प्रसन्नचित्त से स्वानुभव की चर्चा करना मुझे अत्यन्त प्रिय लगता है, अब मेरा जीवन निरन्तर तत्त्व की चर्चा में मग्न हो, शान्तिपूर्वक व्यतीत हो रहा है। माताजी की ध्यानस्थ शान्त मुद्रा और सामायिक की अवस्था से मुझे बहुत प्रेरणा मिलती रहती है। चैतन्य तत्त्व की कोई अद्भुत महिमा दिखती है।

इस प्रकार आर्यिका माताजी के साथ चलते-चलते मैंने अनेक तीर्थों की यात्रा भी की। माताजी तीर्थस्थलों में बार-बार मुझे आत्महित की विशेष प्रेरणा देती हुई मेरा उल्लास बढ़ाती थीं और स्वानुभूति का मार्ग दिखाती थीं। माताजी के साथ-साथ रहने पर मेरे ज्ञान में भी बहुत कुछ निर्मलता होने लगी। माताजी की वैराग्य

उत्पन्न करनेवाली शान्त मुद्रा को देखकर ही मुझे वैराग्य हुआ था और उन्हीं के सत्समागम से तत्त्व निर्णय करने का पुरुषार्थ प्रबल हो उठा। इसके पश्चात् एक विशेष घटना घटी।

एक दिन मुझे शुद्धात्मा का ध्यान करते-करते रोमाञ्च हो आया। आत्मा के प्रदेश-प्रदेश में आनन्द की झंकार बज उठी। अन्तस्तल में सुख का सागर लहरा गया। कोई ऐसी अपूर्व अनुभूति हुई कि जिसकी शान्ति का वेदन वाणी में नहीं आ सकता। आत्मा का जीवन ही पलट गया।

अहा! मोक्षसाधिका माताजी के प्रताप से मेरा भी मोक्ष का द्वार खुल गया, मेरी आत्मा धन्य हो गई। बस, तभी से मैं आर्यिका माताजी के साथ में ही रहती हूँ और आर्यिका बनने की भावना भा रही हूँ। धन्य माताजी! पूर्ण रसगुल्ला तो प्राप्त नहीं हुआ, किन्तु उसके एक अंश का स्वाद चख ही लिया। अहा! मोक्ष का द्वार खुल गया। अब तो शीघ्र ही उसमें प्रवेश कर मैं अनन्त सुख को प्राप्त करूँगी।

(जैनधर्म की कहानियाँ, भाग-11 से साभार)